ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला हिन्दी-ग्रन्थाङ्क-१११

सांस्कृतिक निबन्ध

•

भगवतशरण उपाध्याय

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

श्री भागीरथ कानोड़िया को

प्रस्तुत सग्रह मेरे निवन्धोका है ।

काशी,
१६-२-६०

—लेखक

• विषय-क्रम •

सांस्कृतिक निबन्ध

ऋग्वेदके रोमैण्टिक ऋषि : ? :

ऋग्वेद प्रौढ साहित्य होता हुआ भी मनुष्यके आदिम उल्लासकी कृति है। उसे पढते हुए जैसे हम उसमे घटित जीवनको छूने लगते है, उसके देवी-देवताओ तकको, क्योकि उनका लेवास इन्सानी है, उनकी सूरत-शक्ल इन्सानी है, उनके भाव-विलास, प्रेम-द्वेष मानवीय है। और ऋग्वेदके मानव ? सर्वथा जीवित चलते-फिरते व्यक्ति, जिनके हर्ष-विषादकी पुकार हम सुन लें, जिनकी मानवीय दुर्वलताएँ सतहपर ही देख लें।

ऋग्वेदका जीवन कविका काता हुआ सूत नही, मानवका जिया हुआ जीवन है। उसमें उसके हास्यमें आँसू मिले है। जागल जीवन वैसे भी रोमैण्टिक वातावरण पैदा करता है और जव उसके साथ प्रणयकी स्वच्छन्दता भी मिली हो तव समाजमें ऐसे व्यक्तियोकी कमी न होगी जो शकुन्तला और वासवदत्ताको वरें।

गरज़ कि मानवजातिके उस महान् और तथाकथित धर्म-ग्रन्थमे रोमैण्टिक ऋषियो अथवा अन्य कवियोकी कमी नही। प्रस्तुत लेखमे इन रोमैण्टिक ऋषियोमेसे केवल कुछका उल्लेख करेंगे। श्यावाश्व, कक्षीवान् और विमदका। सहितामें उनका वार-वार उल्लेख हुआ है, वार-वार उनके कार्योके प्रति सकेत हुआ है, साधारण स्पष्ट वर्णन, प्रच्छन्न सकेत, प्रगट उदाहरण, उपमा आदिमे सर्वत्र उनकी कथा अनायास टपक पडती है।

श्यावाश्व कवि था। वैसे तीनो आभिजात्य थे, ऋषियोके वेटे। पौरोहित्य विशवृत्तिसे वैसे ही पृथक् हो चुका था जैसे राजन्य-शक्ति कृषि-कार्यसे। सो श्यावाश्व कवि था, ऋषि-पुत्र कवि। परन्तु सदासे स्वभावसे

कवि वह न रहा था, हृदयकी दुर्वलताने, आकाक्षाकी उपेक्षाने, विफल प्रणयकी कष्टानुभूतिने उसे कवि वना दिया। उसका हृदय तव पिघलकर तरल धाराओमें वह चला।

श्यावाश्वकी कहानी प्राचीन साहित्यके रोमासोमे-से है। वह ऋग्वैदिक कालकी जनताके लिए आदर्श वन गया जो तवके प्रेमियोके लिए अनुकरणीय प्रतीक वन गया। वह जव जन्मा तव तक समाजमे धनी-निर्धनकी दीवारें खिच चुकी थी, राजाओकी दाय पुश्तैनी हो चुकी थी, राजाका वेटा ही राजा होने लगा था, पुरोहितका वेटा ही ऋषि। परन्तु राजन्यो और पुरोहितोमे विवाह स्वाभाविक रीतिसे होते थे और उनमे कोई सामाजिक-धार्मिक अवरोध न था। श्यावाश्व राजपुरोहितका पुत्र था।

तव राजा दर्भका पुत्र रथवीति गद्दीपर था और श्यावाश्वका पिता उसी रथवीतिका पुरोहित था। राजाकी एक कन्या थी, अभिराम सुन्दर। थी भी वह ऋषिपुत्र श्यावाश्वके प्रति अनुरक्त और श्यावाश्व तो उसके रूप-ज्योतिका शलभ था ही। समनमें, यज्ञमे, उत्सव-त्योहारोपर सदा दोनो प्रणयी एक दूसरेसे मिलते और परस्पर रूप-गुणसे आकृष्ट होते। जो वक्तव्य शक्ति न कह पाती वह प्रणय-चेष्टा और भावभगिमा चुपचाप स्पष्ट कर देती। आकर्षण अनुराग वना, अनुराग भाववन्धन प्रेम। खुले प्रेममे दुराव नही होता। श्यावाश्वने प्रेयसीको पत्नी वनाकर चिर सानिध्य और गार्हस्थ्यका सुख भोगना चाहा। कुछ काल उसने अवसरकी प्रतीक्षामे प्रणयकी घनी चोटें भी सही, फिर एक दिन प्रेमाविष्ट वह रथवीतिके समीप पहुँचा और उससे उसने उसकी कन्या, अपनी प्रणयिनी, पत्नी-रूपमें माँगी, विवाहका प्रस्ताव किया। पिताको वह सम्वन्ध स्वीकार था पर रानीने ऋषिपुत्रकी वह प्रार्थना अस्वीकार कर दी। उसे श्यावाश्वके गुणोमें कमी जान पड़ी। उसके दामादका आदर्श धनवान् कवि था। श्यावाश्व न धनवान् था, न कवि। रानीने अपनी राजसी समृद्धि देखी। कन्याकी अल्हड़ सुकुमार भावुकता और भावी जामाताका कठिन दारिद्र्य,

उसकी कविप्रतिभाहीन शिष्टता देखी। रानीको वह अभाव खला। कौन उसकी कन्याकी बहुमूल्य आवश्यकताएँ पूरी करेगा? कौन उसके मर्मसे उठती साधोंको सार्थक करेगा? कौन उसके कवि-हृदयकी काम्य अमूर्त भावनाएँ साकार करेगा? रानीका भय सार्थक था।

आश्चर्य और अभाग्य कि श्यावाश्वका पिता धनी न था क्योंकि तब का पुरोहित उस परम्परामे था जिसमें मिस्रके पिरामिडो और ऊरकी कब्रोंके पुरोहित थे, धन-वैभव जिसका दास था, शक्ति जिसका वैतालिक। ऋषियो, विशेषकर, ऋषि-पुरोहितोको जैसे दानमें मिली वधुओंकी कमी न थी, द्वार पर खडे घोडो-रथोंकी भी कमी न थी, बखारमे भरे अन्नकी भी सीमा न थी, घरमें सोनेकी चमककी भी कमी न थी। पर दुर्भाग्य कि पिताके पास धन न था। श्यावाश्व उस कवि-परम्परामें भी जन्मा था जिसके ऋषिने उषाके ललित गानकर काव्य-जगत्मे अपना साका चलाया था। पर अभाग्य कि स्वय उसकी जिह्वासे भारती मुखरित न हुई थी। विवाह रुक गया, युगल प्रणयी विलग हो गये।

श्यावाश्व कवि न था, पर नि सन्देह कवि-हृदय था। अटूट कवि-परम्पराकी अव्यक्त दाय उसकी थी। और अब जो मर्मको ठेस लगी तो राग-रस चू पडा। राजकन्याका मादक सौन्दर्य, उसका मदिर भाव-विन्यास श्यावाश्वके कन-कनमे रम गया। उन्हें वह भुला न सका। नीरव एकान्त उसके प्रणयको शक्ति और शालीनता देने लगा, स्मृति टीसने लगी। प्रणयकी चेतना कष्टकी चेतना है, चोटकी अनुभूति। ऋषिपुत्र विलख उठा। यह प्रणयकी परिणति थी, नये रसका सचार, जो निर्जनतामे उसका सहायक हुआ। श्यावाश्व गुनगुना पडा। हृदय उसका सुकुमार था, मानस विमुग्ध, चित्त चिन्ताकुल। व्यक्तकी आकृति और सीमा होती है, अव्यक्त अप्राप्तकी न आकृति न सीमा। एकाकीका माधुर्य गरिम प्रणयकी अनन्त अभिराम आकृतियाँ सिरजता जाता, स्वप्नकी साधें अविकल भाव-नाएँ जनती जाती, रूप-आकर्षणकी काम्य कल्पना सम्मोहक चित्र मानस-पट

पर लिखती जाती। भावबन्धकी गाँठें खुल पडी, सोतेका निर्मल रस अन्तरसे उमड आया, कविकी वाणी फूट पडी। उपेक्षित प्रणय आर्त स्वरमे चीत्कार कर उठा। कविका करुण विलाप छन्दके परोपर दिशाओ मे तिर चला, उसने आकाशकी परिधि नाप दी। श्यावाश्व अब कवि था, व्यापक यशका धनी।

श्यावाश्वकी ही भाँति प्रेममे असफल एक और जन था—राजकुमारी शशीयसी। उसका आभिजात्य उसके द्वारे उत्सुक विवाहार्थियोकी भीड़ लगाये रखता। परन्तु उसने उन सबको अस्वीकृत कर दिया। उसका उपास्य कोई और था, सुन्दर राजन्य कुमार, राजा पुरुमिल्हका तनय। पर उसका प्रियपात्र उसे न मिला। राहमे कुछ कठिनाइयाँ उठ खडी हुई। सम्भवत राजकुमार जानता न था कि शशीयसी उससे प्रेम करती है, शायद वह किसी कारण विवाहके लिए तैयार न था। राजकुमारी प्रणयके दाहसे घुलने लगी।

तभी उसने श्यावाश्वकी करुण कहानी सुनी। उसके काव्य और प्रणय-पीडाने समानधर्मिणी शशीयसीका मर्म छू लिया। उसने सोचा उसका सखित्व कल्याणकर होगा। वह समान व्यथासे व्यथित है। प्रेमके मारे व्यक्तियोका उसका हृदय उचित दौत्य कर सकता है, कुमारीने जाना, और उसे बुला भेजा। उससे अन्तरका मधुर रहस्य कहा और पुरुमिल्ह-तनयके प्रति प्रणय-सन्देश वहन करनेकी प्रार्थना की। स्वाभाविक ही इस हेतु श्यावाश्वसे अधिक समर्थ दूत नही मिल सकता था। उसने उस रागकी ध्वनि अपने भीतर सुनी थी, उसका कष्ट उसके रोम-रोममें व्यापा, सन्देश लेकर वह चल पड़ा। वह कवि था, साथ ही प्रेमका मारा। उसका दौत्य सफल हुआ। शशीयसीने अनुरक्त पुरुमिल्ह-पुत्रको वरा। उपकृत दम्पतिने दूतको अपनी उदारतासे गद्गद कर दिया, गौओ, घोडो और रथोंनि कविका घर भर दिया।

उपकृत कविने गाया—"शशीयसीने मुझे गायोंके ढोर दिये, घोडोके

झुण्ड दिये, सैंकडो रथोंके दल । श्यावाश्वके दिये उस पतिके वदले जिसकी वह शक्ति वनी (१०, ६१, ५) । अन्य नारियोंसे कितनी भिन्न है यह शशीयसी, उन पुरुषोंसे कितनी भिन्न, अमित उदार, जो देवहीन हैं लाभ-चिन्तनमें निमग्न हैं ! (वही, ६) देवताओमे भी वह उसीको खोजती है जो विश्रान्त है, तृषित और उत्सुक है । उसीको वह अपना मानस समर्पित करती है ।" (वही, ७)

दौत्यकी सफलता स्वयं श्यावाश्वकी असफलतापर भयानक व्यग्य थी । शशीयसीके प्रति उसका गान स्वय उसके उपेक्षित प्रणयका उपहास कर उठता । पीडित अन्तर फिर वह चलता, उसका स्वर रातके सन्नाटे और उसकी हवाको चीर चलता । उसकी विकम्पित वाणी पुकार उठी । ससारके पहले यक्षने गाया—

"रात्रि, मेरा सन्देश दर्भतनयके समीप पहुँचा । देवि, तू मेरी गिराका रथ वनकर जा !" (वही, १७,)

"जव रथवीति अग्निमें आहुति डालता हो, तव तू उससे मेरा सन्देश कह । कह कि तेरी सुताके प्रति मेरा मोह कम नही हुआ, आज भी जाग्रत है ।" (वही १८)

यक्षकी आर्त पुकार रथवीतिने सुनी । उसकी रानीने सुनी । शशीयसी-की उदारताने उसे सम्पन्न कर दिया था, प्रणय-तपने उसे अप्रतिम कवि । राजकन्याने श्यावाश्वको वरा, उसके माता-पिताने आतुरतासे व्याहकी अनु-मति दी । कवि आनन्दविभोर गाता रहा । ऋग्वेदके प्रायः दस सूक्त उसके हैं । अनेक सन्दर्भोंसे उसकी लोकप्रियता सिद्ध है ।

कक्षीवान् ऋग्वेदके महान् द्रष्टा ऋषियोमे हैं । दो राजाओंके वे दामाद थे, परन्तु स्वय थे वे दासी-पुत्र (१, ११८, १, ११२, १) । तव अनेक राजा और ऋषि शूद्राओ अथवा अनार्य दासियोसे विवाह करने लगे थे । उनसे उत्पन्न पुत्र भी औरस माने जाते थे । कक्षीवान्के पिता महर्षि,

पज्रीने भी दासीको रख लिया था जिससे कक्षीवान् उत्पन्न हुए। औरस तो वे थे ही, ऋपियोने उनको वडा माना था।

कक्षीवान् वहुपत्नीक थे। उन्होने कमसे कम दो विवाह किये थे। दोनो पत्नियाँ अभिजात क्षत्रिया थी, राजाओकी दुहिता (१, १२६, ३; १, ५१, १३)। पहली रोमगा राजा भाव्यकी पौत्री और स्वनय भावयव्यकी पुत्री थी, घोपाके पिताके नामका ऋग्वेदसे स्पष्ट परिचय तो नही मिलता परन्तु कही वह भी 'राज्ञ- दुहिता' (१०, ४०, ५) गई है जिससे उसका राजघरानेकी कन्या होना प्रगट है।

कक्षीवान् विद्याध्ययन समाप्तकर गुरुके गृहसे पिताके घर लौट रहे थे जब थककर पेडोकी घनी छायामे राहमे ही वह सो गये। राजा भाव्यका पुत्र स्वनय तभी उधरसे रथपर निकला। ब्रह्मचारीको भूमिपर सोया देख उसने उसे जगाकर रथपर चढा लिया। कक्षीवान्की वातचीतसे स्वनय वडा प्रभावित हुआ। नयी आयुमे इतना ज्ञान देख ब्रह्मचारीपर वह मुग्ध हो गया। उसकी रोमगा नामकी वडी सुन्दरी कन्या थी। उसके लिए कक्षीवान्को उसने समुचित वर माना और उसे पिताके पास ले गया। कक्षीवान्का अध्ययन समाप्त हो चुका था, अव उसे गार्हस्थ्यमे प्रवेश करना ही था, उधर जो उसने राजकन्याकी विनय और प्रतिभा देखी तो उसके पिता-पितामहका अनुरोध मान रोमगासे विवाह कर लिया। पत्नीके अतिरिक्त विवाहमे उसे अमित धन-धान्य, हिरण्य, अनेक वधुएँ (विवाह करने योग्य दास-कन्याएँ), मवेशियोंके ढोर, घोडे और रथ मिले।

सारी धन-सम्पत्ति और जाया लिये कक्षीवान् पिताके घर पहुँचा और वहाँ उसने अपने इस रोमैण्टिक विवाहकी कथा कही। तव उसकी नववधू रोमगाने सविनय अपने ससुरके समीप जा अत्यन्त आत्मीयतासे कहा—

"इन्होने मुझे पत्नी रूपमें ग्रहण किया है, और मैं इनके प्रति वैसे ही अनुरक्त हूँ जैसे अश्वारोहीके करमें चिपकी हुई कशा। मेरे पति मुझे हज़ार यत्नोंसे सुखी करते है।" (१,१२६,३–६)

"मुझे समीप आनेकी अनुमति दे। मुझ अवलापर प्रसन्न हो। मैं सदा रोमशा रहूँगी, गन्धारके मेमनोकी भाँति सर्वदा रोमशा, विनीता।" (वही, ७)

पीछे कक्षीवान्‌ने एक और विवाह किया। वह घोषा थी, राजदुहिता (१०,४०,५), और स्वाभाविक ही पतिका उसका आदर्श "अनेक अश्वोका स्वामी धनी रथी" राजन्य था। पर अभाग्यवश त्वचा रोगसे आक्रान्त हो जानेके कारण उसकी कामना पूरी न हो सकी और दीर्घकाल तक वह अविवाहिता ही रही। पिताके गृहमें ही उसके केश श्वेत हो चले। फिर अश्विनोकी स्तुतिके फलस्वरूप उसे कक्षीवान्-सा वर मिला। कक्षीवान्‌ने उसे स्वय वृद्धावस्थामे व्याहा था और इस प्रकार समानने समानको वरा। घोषाका नाम ऋग्वेदमें अनेक वार आया है। (१,११७,७,१०,३९ आदि) साथ ही संहिताके दसवें मण्डलके दो समूचे सूक्त, ३९ और ४० उसी नारी ऋषिकी कृतियाँ है।

महर्षि कक्षीवान्‌को वृद्धावस्थामें विवाह करनेका तिक्तफल भी च्यवनादिकी भाँति भोगना पडा। स्पष्ट पता तो नही चलता कि वृद्धावस्थाके कारण स्वय वे क्लीव हो गये थे या उनकी पत्नी ही वन्ध्या थी, परन्तु वे सन्ततिके लिए स्वय भी (१०,३९,७) घोषाकी ही भाँति (१,११७,२४) अश्विनीकुमारोकी स्तुति करते है। कहते है, "तुम दोनो क्लीवकी पत्नी (वध्रिमत्या) की स्तुति सुन उसके पास चले आये थे और सुखी पत्नीको सुन्दर सन्तति प्रदान की थी।" उसी प्रकार घोषा भी कहती है, "वीरो, तुमने असीम उदारतापूर्वक क्लीवकी पत्नीको हिरण्यहस्त नामका पुत्र प्रदान किया था।" उनका तात्पर्य अपने लिए सन्तान माँगनेसे है। अश्विनीकुमार दिव्य वैद्य हैं जो अचूक औषधियोका वितरण करते है और ऋग्वेदमें क्लीवो और वन्ध्याओंके विशेष आराध्य है।

विमद भी ऋग्वेदका ब्राह्मण ऋषि है। उसने कमद्यु अथवा शुन्ध्युको व्याहा। वस्तुत दोनोमें परम्परया विवाह नही हुआ। दोनो प्रणय-निर्वाह-

के लिए भाग गये थे (१,९२,४)। विमद और कमद्यु ऋग्वैदिक युगके रोमियो-जूलियट थे। कमद्यु राजन्या थी, राजा पुरुमिल्हकी दुहिता, उस शशीयसीकी ननद जिसके भाईके प्रति प्रणय-दौत्यकर शशीयसीको श्यावाश्वने निहाल किया था। विमद और कमद्यु एक दूसरेसे प्रेम करते थे। परन्तु विवाहार्थ जव विमदने राजासे अनुमति माँगी तव राजाका राजत्व आडे आ गया। निर्धन ब्राह्मणसे अपनी कन्याका विवाह उसे इष्ट न था और उसने वह सम्वन्ध अस्वीकृत कर दिया। पर प्रणयियोपर स्निग्ध प्रेम छाया हुआ था, वे स्वय भी करणीयसे विमुख न हो सके। श्यावाश्व और रथवीति-कन्यासे वे सर्वथा भिन्न थे। पति-पत्नी वनना निश्चित कर दोनो अनजाने स्थानको भाग गये। अव माता-पिताने उनके निश्चयमें वाधा डालना उचित नही समझा और उनका सम्वन्ध स्वीकार कर लिया। उस काल वह घटना भी पर्याप्त लोकप्रिय हो गई थी उसका उल्लेख अनेक ऋचाओंमे हुआ है (१, ११२, १९; ११६, १; ११७, २०; १०, ३९, ७, ६५, १२)। लगता है विमद भी वादमें क्लीव हो गया था और उसे भी सपत्नीक च्यवनसे पाण्डु काल तकके क्लीवोंके सहायक अश्विनीकुमारोकी सन्ततिके लिए स्तुति करनी पडी।

ऋग्वेदके समन

ऋग्वेदमे मधुर और मनोरंजक स्थलोकी कमी नही। उसके धर्मेतर मधुर सामाजिक प्रसग कोडियोमे गिने जा सकते है। यहाँ हम केवल एक "समन" का उल्लेख करेगे।

उस प्राचीन मानव ग्रन्थमें उत्सवो और त्योहारोंसे मिलते-जुलते एक प्रकारके मेलेका उल्लेख हुआ है जिसे 'समन' कहते थे (ऋ० १, ४८, ६; १२४, ८, ४, ५८, ८, ७, २, ५, ९, ४, १०, ८६, १०)। स्त्रियाँ, विशेपकर कुमारियाँ, वरकी खोजमें वहाँ जाती हैं। उसमे घुडदौर और रथधावन (वही, १०, १६८, २) बडी तत्परतासे होते थे। वह मेला रातमे होता था। चमकती मशालोंके उजालेमे (**सुसन्दृशा भानुना यो विभाति**, वही, ७, ९, ४) कुमारियाँ मधुर मुसकराती हुई (**स्मयमानासो**) वहाँ जाती थीं और अनेक वार खेलमे वहाँ सारी रात गुज़ार देती थी (वही, १, ४८, ६, १०, ६९, ११)। प्रेमियोंके सम्मिलन और सम्भाव्य वर-वधूकी खोज (वही, ७, २, ५) की सुविधा समन विशेप रूपसे प्रदान करते थे। कुछ अजव नही कि इस प्रकारकी स्वतन्त्रता जव तव आचरणमें दोप उत्पन्न कर देती रही हो। आखिर सहितासे समाजकी अनुमति न मिलनेसे प्रणय-साधनके निमित्त प्रणयियोके भाग जानेके अनेक सकेत मिलते है (वही, १, ११२, १९, ११६, १, ११७, २०, १०, ३९, ७, ६५, १२)। सम्भव है अन्यत्र उस समाजमें ऐसी स्वतन्त्रता सम्भव न रही हो। परन्तु समन कुमारियाँ प्रमाणत अपने प्रेमियोके साथ घूमती थी (७, २, ५, ४, ५८, ८, अथर्ववेद, २, ३६, १)। अनेक प्रणयी-युगलके लिए समन सकेत-स्थानका कार्य करते होगे। अनेक वार तो कुमारियोकी माताएँ स्वय वर

आकृष्ट करने योग्य उनका प्रसाधन करती थी (**सुमकाशा मातृमृष्टेव योषा**)। अनेक अवाछित वरोकी साव वही पूरी होती थी (अ० ४, ५८, ८, ७, २, ५)।

वस्तुत विवाहका कार्य और गुरुजनोका दायित्व अधिकतर समनकी संस्था द्वारा पर्याप्त हल्का हो जाता होगा। अनेक विचारो, भिन्न रुचियोंके कुमार-कुमारी वहाँ वडी संख्यामे मिलते होगे जिससे चुनावके कार्यमे प्रचुर सुविधा हो जाती होगी। सम्भाव्य वर-वधू सर्वदा पूर्ण नही होते। सवमे कोई न कोई कमी होती ही है, किसीमें रूपकी, किसीमें गुणकी, किसीमे शौर्यकी, किसीमे धनकी। किन्तु यदि सभी प्रकारके लोग एकत्र कर दिये जायँ तो रुचिवैचित्र्यकी अनेक खामियाँ अपने आप व्यवस्थित हो जायँ। कुछ आश्चर्य नही कि समनोमे सूर्य-रश्मियोकी-सी प्रसाधनसे दमकती नारियाँ झुण्डकी झुण्ड चल पडती हो (**व्युच्छन्ती रश्मिभि सूर्य्यस्यांज्यङ्क्ते समनगा इव व्रा** —वही, १, १२४, ८)। इसी प्रकार अन्यत्र भी समनको जानेवाली कुमारियोका उल्लेख हुआ है—"**पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन्**"(७, २, ५)। इस प्रकार एक उपमामे वायुप्रेरित व्यक्तिकी भाँति नारियोके समनकी ओर जानेकी बात कही गई है, "**सम्प्रेरते अनुवातस्य विष्टा ऐन गच्छन्ति समनं न योषा**" (१०, १६८, २)। समनमें यज्ञ होमादि भी होते थे। ऋग्वैदिक कवि अग्निके प्रकाशमें युवतियोके समुज्ज्वल वदनको स्मित हास्यसे प्रफुल्लित देखता है—"**अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्**" (४, ५८, ८)। इन समनोमें यौन-सम्वन्धिनी देवी इन्द्राणीकी विशेष पूजा प्राचीन प्रथाके अनुसार हुआ करती थी। ऋषि कहता है कि सनातन कालसे नारी (इन्द्राणी) समन और यज्ञोत्सवको जाती हैं—"**संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति**" (१०, ८६, १०)।

जर्मन पण्डित केगीने अपनी पुस्तक 'ऋग्वेद' (पृ० १९) में समनके उत्सवका सुन्दर सक्षिप्त उदाहरण दिया है—"पत्नियाँ और कुमारियाँ

प्रसन्न वसनोसे अलकृत समनकी ओर चल पडती है। जव वन प्रान्तर और खेत हरियालीसे ढक जाते हैं तव युवा और युवतियाँ सहनृत्यकी ओर हरे फैले मैदानोकी ओर दौड चलती हैं। मृदग धमक उठते हैं, तरुण-तरुणियाँ एक दूसरेका हाथ पकड नाचने लगती हैं और तवतक नाचती रहती हैं जवतक उनके साथ भूमि और दिशाएँ नही चक्कर खाने लगती और उनके नाचते समुदायोको जव तक धूलके वादल नही घेर लेते।" प्रगट है कि समनोका नृत्य—और वह सामूहिक—आवश्यक अग था। "वैदिक इण्डेक्स" के प्रणेताओने इस प्रसंगमे पिशेलको उद्धृत किया है। पिशेलका कहना है कि 'समन एक प्रकारका मेला था जहाँ आमोदके लिए नारियाँ जाती थी—युवतियाँ और प्रौढाएँ पतिकी खोजमे और वेश्याएँ मौकेसे लाभ उठाने'। यह भी अनुमान किया जाता है कि समनोमे ही सम्भवत नाटकीय रंगमच का भी उदय हुआ। पहले सम्भवत वही यम-यमी, इन्द्र-इन्द्राणी, पुरुरवा-उर्वशी आदिके सवाद होते थे जो पहले केवल डायलाग रूपमें थे फिर नाटकोंके आधार वन गये।

जाहिर है कि समन समाजके वदलते हुए आचार-नियमोमे पश्चात्कालमें नही खप सकता था। निरन्तर सकीर्ण होती जाती हिन्दू समाजकी परिधिमें उसका समा सकना कठिन था। फिर उसके स्वच्छन्द वातावरणका अनाचारतः दूपित हो जाना भी कुछ अस्वाभाविक न था। यही समन उत्तरयुगोंके मौर्य्यकालमे समाज या 'समज्जा' कहलाया। समज्जाकी स्थिति तक पहुँचते-पहुँचते समन तत्कालीन समाजको असह्य हो गया और सम्राट् अशोकको उसे कानूनन वन्द कर देना पडा। चौदह शिलालेखोकी पहली घोषणा समज्जाका इस प्रकार निपेध करती है—"न अव कोई समाज हो सकेगा क्योकि देवाना प्रिय पियदसी राजा (अशोक) इस समाजमे वहुत अनौचित्य देखता है। परन्तु उसके कुछ ऐसे प्रकार भी है जिनको पियदसी राजा मुनासिव मानता है।" 'दीघनिकाय' में अनुचित प्रकारसे समज्जाको नृत्य, गायन, सगीत, कथा, मृदग और ढोलकके

पडगोंसे युक्त कहा है। धम्मपदकी टीकामे जिस समज्जाका उल्लेख है उसके चलानेवाले ५०० अभिनेता है जो वहुमूल्य पुरस्कारके वदले राजगृहके नृपतिके सामने प्रतिवर्ष अथवा प्रति षण्मास प्रदर्शन करते हैं। इस कम्पनीके प्रदर्शन सात-सात दिन तक चलते थे। उसके प्रसिद्ध खेलोमें एक ऐसा था जिसमे अल्हड सुन्दरी खडे वँधे लट्ठेपर चलती, गाती और नाचती थी। एक वार तो ऐसा अनर्थ हुआ, जो अस्वाभाविक किसी प्रकार न था, कि अखाडेके मचपर वैठे (मचाति मचेत्यित्) दर्शकोमें-से एक धनी सेठका वेटा, उग्गसेन तरज्जु-नर्तकी-अभिनेत्रीके प्रेम-पाशमे वँध गया। इसी प्रकार विनय पिटकमे भी राजगृहकी पहाडीपर होनेवाले समाज-का उल्लेख हुआ है जिसमें नृत्य, सगीत (३, ५, २, ६) होते है। उसीमें एक और प्रकारके समाजमे प्रीतिभोजादि होनेका व्यौरा मिलता है (४, ३७, १)। महाभारतमे समाज शैव उत्सवके रूपमे व्यवहृत हुआ है। उसमें आपान (मद्य-पान), नृत्य, गान आदि होते हैं। (हापकिन्स, एपिक मिथालोजी, पृ० ६५, २२०)। कौटिल्यने अपने 'अर्थशास्त्र' (२, २५) मे 'उत्सव समाज' और यात्राका उल्लेख किया है। उसके अनुसार इनमें चार दिनोतक अविराम मद्यपान होता था। अन्यत्र (१३, ५) उसी महान् आचार्यने विजेताको सलाह दी है कि उसे अपने विजितो-को अनुकूलचेता उनके देशप्रेम, देश-दैवत-प्रेम और उनकी उत्सव, समाज, यात्रा आदि की-सी सस्थाओके आदर द्वारा वनाना चाहिए। स्पष्टत कौटिल्यकी दृष्टि समाज-शास्त्री और आचार-निर्माताकी नही नीतिज्ञ-की थी।

इस प्रकार जान पडता है कि समाज या समज्जा एक प्रकारका समन ही था। सम्भवत. उत्तरकालीन सामाजिक परम्परामे उसके आपान, नर्तन, गायन आदि सह्य न हो सके और उन्होने अपनी दूषित समाजविरोधी आजकी फिल्मोकी-सी अशिव छाया डाली। धम्मपदकी टीकावाली उद्धृत घटना समन अथवा समाजमे सामान्य हो गई होगी। इसी उपेक्षणीय प्रकारके

समाजका अशोकने विरोधकर उसे घोपणा द्वारा वन्द कर दिया था। पश्चात्कालमे अशोककालीन ममाजने और गुरुतर अपराध करना शुरू किया। उसकी परिणति कालान्तरमे एक नितान्त घृणित सस्थामें हुई जिसका सम्वन्ध वेश्याओ, गणिकाओ और गायिका-नर्तकियोंसे था। उनके दलमें रहकर सारगी आदि वाद्य-साज वजानेवाले सफरदे उत्तरप्रदेश और विहारके सूवोमे आज भी 'समाजी' कहलाते है जो अपने नाममे समन तथा समाजकी प्राचीन स्मृति जीवित रखे हुए है। सम्भव है ममनका दूरका सम्वन्ध श्रावण मासमे शिव मन्दिरोमे होनेवाले नाच-गानके प्रदर्शनो-मे भी रहा हो। पजावमे उन्हें सामन कहते है जो प्रगटत. श्रावणका अपभ्रश है।

ऋग्वेदके समाजमे, जैसा ऊपर कहा गया है, समन न केवल विनोद और खेल-कूदके उत्सव थे, वरन् वे एक सामाजिक आवश्यकताकी भी पूर्ति करते थे। परन्तु उनका सगठन इस प्रकारका था कि उनका कालान्तरमे अत्यन्त घृणास्पद हो जाना स्वाभाविक था। फिर भी यह कुछ कम महत्त्व-की वात नही है कि अपने प्रकृत अथवा परिवर्तित रूपमें वहुत कालतक वे चलते रहे और आज भी अनेक दिशाओमे अपने प्रतिनिधि छोड गये है। आजके 'कार्निवल' उनसे विशेष भिन्न नही।

ऋग्वेदका जुआरी : २ :

जो लोग ऋग्वेदको केवल धर्मकी पुस्तक मानते है उन्हे पता नही कि उस सहितामे कितना लौकिक-सामाजिक सौन्दर्य विखरा पडा है। अनेक वार तो उसमे समाजका प्रतिविम्व इतना स्पष्ट झलक पडता है कि पाठक स्तव्ध रह जाता है। दसवे मडलका ३४वाँ सूक्त एक जुआरीकी दिनचर्या और दुर्वलताका मनोहारी वर्णन करता है। उसकी मार्मिकता हृदयको छू लेती है। वर्णन वस्तुत इतना सजीव, इतना मासल हुआ है कि लगता है, तत्सामयिक समाजका एक पृष्ठ खुल पडा हो। जुआरी वार-वार जुआ खेलना छोड देनेकी शपथ लेता है, वार-वार पाँसेकी मदिर ध्वनि उसे मत्त कर देती है, और वह सव कुछ दाँवपर लगा कर फिर हार जाता है। सूक्तका देवता भी जुआ ही है, और उसका ऋषि अंशत. स्वय जुआरी। चित्रण सर्वथा मानवीय और पार्थिव है।

सूक्त कहता है कि जुआरी दिन-रात जुआ खेलनेके सार्वजनिक हालमे उसके स्तम्भकी भाँति अडा रहता है। मेजपर अक्ष (पाँसे) के गिरते ही उसकी वाछें खिल जाती हैं, उनके मदसे वह उन्मत्त हो जाता है—**'प्रावेपा मा वृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृताना'** (१०, ३४, १)। स्पष्ट है कि पाँसेका प्रभाव उसपर वैसा ही होता है जैसे शरावका पियक्कडपर। वह अपनी सारी संपत्ति जुएमें हार चुका है और वादमें अपनी पत्नी तकको दाँवपर लगाकर हार जाता है। तव उसकी आँखें खुलती हैं और वह आर्तनाद कर उठता है। उसकी प्रियतमा पत्नी 'अनुव्रता' (पतिव्रता) है, उसकी द्यूतरतिका सारा परिणाम वह चुपचाप सहती है। कभी उसपर क्रोध नही करती, सदा उसके और उसके मित्रोंके प्रति

कल्याण-भाव रखती है—'**न मा मिमेथ न जिहूल एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्**'। (१०, ३४, २)

ऐसी पत्नीको जुएमें खोकर जुआरी स्वाभाविक ही कठिन यातनाका अनुभव करता है। कहता है—अक्षके लिए मैंने पतिव्रता पत्नीको खो दिया (**अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम्**—वही)। पाँसेकी झकार उसे इतना अन्धा बना देती थी कि दाँवपर जोती जानेके पहले उसकी पत्नी उसके प्रियाचरणसे विरहित हो जाती थी। उसने चाहे अपना वह अभाग्य चुपचाप सह लिया पर उसके दाँवपर हार दिये जानेके बाद उसकी माँ, जुआरीकी सास, क्षुब्ध शत्रु हो उठी (**द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि**—वही, ३)। और अब उस अभागेका 'अपना' कोई नही रह गया (**न नाथितो विन्दते मर्डितारम्**—वही)। अपनी हीन दशापर सहसा जुआरी रो पड़ता है—'वृद्ध कमजोर घोडेसे जैसे कोई लाभ नही जुएसे मै भी कोई सुख नही पाता' (**अश्वस्येव जरतो वस्त्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्**—वही)। सपत्तिविरहित पत्नीको भी दाँवपर खोकर जब वह दूसरो द्वारा उसे दुलारे जाते देखता है तब उसकी दशा और भी दयनीय हो उठती है (**अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्ष.**—वही, ४)।

वह जुएमे घरकी सम्पत्ति हारकर ऋण लेता है, बार-बार ऋण लेनेसे वह महाजनोका शिकार हो जाता है और तब उसके सारे स्वजन—माता, पिता, भाई उसे छोड देते है। उसे पकड ले जानेवाले महाजनोंसे कहते है—'उसे बाँध लो। बाँधकर अपने साथ ले जाओ। वह हमारा कोई नही' (**पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम्**—वही)। जुआ न खेलनेका शपथ तो वह करता है पर जब उसके जुआरी मित्र उसे त्याग देते है (**यदादीध्ये न दविषाण्येभि परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्य**—वही, ५) और जब अक्ष फेंके जानेसे द्यूत-फलक पर खनखना उठते हैं तब वह बेहाल हो जाता है। वह और नही रुक पाता, 'जारिणी'की भाँति

सकेतस्थानकी ओर जैसे दौड पडता है (वही, ५)। अगले चार छन्दोमें असाधारण शक्ति और प्रौढ शैलीमें जुएका जादू खुल पडा है—

सभामेति कितव पृच्छमानो जेष्यामती तन्वाशूसुजान.।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति काम प्रातिदीन्वे दधत आ कृतानि ॥
अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तपयिष्णवः।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ता. कितवस्य वर्हणाः ॥
त्रिपञ्चाशः क्रीडति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥
नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ता शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥
(ऋ० १०, ३४, ६–९)

"जुआरी द्यूतस्थल (सभा) पर पहुँचता है, (शकाओंमे) तनमें आग लगी है।—पूछता है—क्या जीतूँगा ?
अक्ष (पाँसे) उसकी कामनाको जगा देते है, वह अपना धन विपक्षीके विपरीत दाँवपर लगा देता है।"

"अक्ष, धन आदिसे सयुक्त, धोखा देते हैं, तपाते है, सताप जनते है। जीतनेवालेको पहले थोडी जीतसे लुभाकर वे उसका सर्वस्व अपहृत कर नाश कर डालते है, जुआरीके सुन्दरतम धन द्वारा स्वय अभिषिक्त होते है।"

"सत्यधर्मा देव सविताकी भाँति तिरपनका उसका प्रसन्न दल खेलता है। वे शक्तिमान् (उग्र) के आगे भी नही झुकते, राजा स्वयं उनकी अर्चना करता है।"

"अक्ष सहसा नीचे आते है, फिर ऊपर उठ जाते है, स्वय करविहीन पर हस्तवन्तोको अपनी सेवाके लिए वे वाध्य करते हैं।
जादूके अगारोकी भाँति ढाले जाते हुए स्वय तो वे शीतल है पर दर्शकोंके हृदय जलाकर क्षार कर डालते है।"

जुआरी अपने दोषको समझता है, उसके अशिव परिणामको झेलकर वारम्वार पाँसा न छूनेकी कसमें खाता है पर जुएका मोह उसे वार-वार

घर दवाता है, उसे लाचार कर देता है। खेलता है, हारता है, फिर खेलता है, फिर हारता है। क्रोध और लालच उसे विमूढ कर देते हैं। उसकी हार ही उसे फिर खेलनेको मजवूर करती है। मधुरसे मधुर, कीमतीसे कीमती चीज़ दाँवपर उससे धरवा देती है। सब हार जाता है। कर्ज़ लेकर फिर खेलता है, फिर हार जाता है। और एक रात जुआ उसका सर्वनाश सम्पन्न कर देता है। निराशासे पागल, भयसे सत्रस्त, महाजन द्वारा अनुसृत, वह घर लौटता है, सवसे भागकर शरण लेने। घरके द्वार उसके लिए वन्द है। द्वार ठकठकाता है पर वे नही खुलते, क्योकि वे अनजाने वन्द नही किये गये हैं। हारी हुई परित्यक्ता पत्नीकी शोचनीय दशा उसे विचार करनेको मजवूर करती है। घरका द्वार वन्द होनेसे वाहर पडा वह सोच रहा है—"दूसरोकी पत्नियाँ कितनी सुखी है! औरोके परिवार कितने भाग्यवान् है!" नलका परवर्ती, युधिष्ठिरका पूर्ववर्ती, वह जुआरी रात्रिके अन्धकारमें अपने कियेपर पछताता है, परन्तु प्रभातके साथ आशा लौट पडती है और अक्षपर झुकी हुई उसकी चिरचेष्टा नवीन हो आती है। 'उषाकी ही भाँति वह भी अपने अक्षरूपी घोडोको जोत देता है' (पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे)।

अन्तमें उसे पत्नीकी साधना और तपसे समझ होती है और वह परिवारकी ओर आकृष्ट होता है। ऋषि उस प्रकृतिस्थ जुआरीका स्वागत करता है—"जुआ न खेल, न खेल जुआ। अपने खेतोको जोत। प्राप्त धनको वहुत मानते हुए उसीमें रम, उसका सुख मान। वो तेरी गौएँ हैं, और वह तेरी जाया "

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व वहुमन्यमान ।
तत्र गाव कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्य. ॥ (वही १३)

ऋषिकी यह शालीन गिरा रेस-कोर्सके शौकीनोंके लिए आज भी चिन्तनीय है।

ऋग्वेदमें अगम्यागमन : ४ :

मैंने प्रस्तुत लेखमे "इन्सेस्ट" शब्दका व्यवहार किया है, कारण कि हिन्दी या सस्कृतका कोई शब्द उस अर्थको प्रगट नही करता जो इस अग्रेज़ी शब्दमे निहित है। इन्सेस्टका अर्थ है भाई-बहिन, पिता-पुत्री, माता-पुत्रका परस्पर यौन सम्बन्ध। ऋग्वेदके कतिपय सकेतोंसे इन्सेस्टके ऋग्वैदिक समाजमें एकाशमें प्रचलित होनेकी बात कही गई है। प्रस्तुत लेखमें हम उसपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे।

विषय वस्तुत अत्यन्त विवादास्पद है। कुछका कहना है कि इस प्रकारका यौन सम्बन्ध वैदिक जीवनमें सर्वथा अनजाना था और ऋग्वेदमें उसका उल्लेख नही मिलता। कुछ पण्डितोका मत इससे भिन्न है। हम यहाँ बगैर उस वादविवादमें पडे सीधे उपलब्ध सामग्रीपर विचार करेंगे। आरम्भमे ही यह कह देना उचित है कि ऋग्वेदकी स्वल्प सामग्री पौराणिक परम्पराओ और बौद्ध जातकोंके साथ अध्ययन करनेपर जो पूर्व-मध्य-परकी एक क्रमिक सगति बैठ जाती है उससे ऐसा लगता है कि किसी-न-किसी समय किसी-न-किसी मात्रामे इस प्रथाका आर्य समाजमें प्रचार रहा होगा। ऋग्वैदिक तथा अन्य प्रमाणोंसे जान पड़ता है कि प्रथा उस समाजमे किसी प्रकार अनुचित नही मानी जाती थी। उस सम्बन्धका दो रूपमें अध्ययन समीचीन होगा—भ्राता-भगिनी सम्बन्ध और माता-पिता, पुत्र-पुत्री सम्बन्ध। हम पहिले भ्राता-भगिनी सम्बन्धपर विचार करेंगे।

भ्राता-भगिनी यौन सम्बन्धका सबसे सबल प्रमाण ऋग्वेदके दसवें मण्डलके दसवें सूक्तमें यम-यमी सवादमे मिलता है। यम-यमी जुडवें भाई-बहन है, पहले मानव जोडे (दम्पति), जिनसे मानव जातिका प्रारम्भ

होता है। दोनोका पारस्परिक सम्वन्ध वहुत कुछ उस प्राचीन इन्रानी परम्परासे है जिसमे नारी नरके ही एक अगसे प्रसूत होती है और दोनो मिलकर मानवजातिकी सृष्टि करते है, उसके आदि पितर वनते है। ये भारतीय परम्पराके आदिम मर्त्य-युगल भी उसी प्रकार जुडवे माने गये है। यह विचार स्वय यमीके वक्तव्यमे रखा गया है। "गर्भमें ही", यमी यमसे कहती है, "स्वय स्रष्टाने हम दोनोको पति-पत्नीके रूपमे रखा था।" आरम्भमें ही यह स्पष्ट कर देना उचित है कि सवाद असाधारण है जिसमें यमी अपने भाई यमको वार-वार पति वनने और उसे पत्नी वनानेका प्रस्ताव करती है, वार-वार यम क्षुब्ध होकर इस सम्वन्धको पाप वताता है, यद्यपि अनेक वार ऐसी स्थिति झलक जाती है जिससे इस प्रकारके सम्वन्धकी ओर सकेत हो जाता है। सूक्तका एक वार नीचे विश्लेषण ही वास्तविकता प्रकट करनेमे सहायक हो सकता है।

सूक्तके ऋषि और देवता दोनो ही यम और यमी है। यम और यमी विवस्वान् (सूर्य) और सरण्यूके जुडवें पुत्र-पुत्री है। आरम्भके छन्दमे ही भगिनी विकम्पित वाणीमे भाईको उससे "विवस्वान्के लिए" पुत्र उत्पन्न करनेकी प्रार्थना करती है। पर भाई मधुर शब्दोमें उसके प्रस्तावको अस्वीकृत कर देता है—

"तेरा सखा उस सख्यको नही मानता जिसमे निकटकी जाईको दूर का माना जाता है (सगोत्रका निषेध)।

(न भूलो कि) महान् असुरके पुत्र, वीर, आकाशको धारण करनेवाले, अपने चतुर्दिक् दूर तक देखते है।" (२)

इसमे प्रमाणित है कि इस छन्दके लिखे जाने तक असगोत्र विवाहकी परम्परा आर्योमे प्रतिष्ठित हो चुकी थी और सगोत्र सम्वन्ध अनुचित माना जाने लगा था। दूसरी पक्ति भाई-वहिनके सम्वन्धको नाजायज़ करार देती है क्योकि महान् असुर (वरुण) जो पापपर दृष्टि रखता है, अपने चरो द्वारा इस सम्वन्धके

पापियोको जैसे सावधान करता है। परन्तु क्या यही पंक्ति प्राचीन कालमे इस प्रथाके प्रचलित होनेका प्रमाण नही वन जाती ? यमी इसके अतिरिक्त एक और युक्ति प्रस्तुत करती है। वह कहती है कि "ऋत (कानूनी व्यवस्था) का सिद्धान्त मर्त्योके लिए है, अमरोके लिए नही, और यह अमर है जो अपने भ्राताको सम्वन्धके लिए पुकारती है" (३)। परन्तु भाई इतिहासका उलाहना देकर उसे परास्त करना चाहता है—"क्या आज हम वह करे", यम पूछता है, "जो हमने कभी नही किया ? हम, जो सदा ऋत वोलते-करते रहे हैं, क्या अव अनृतकी उपासना करेगे ?" (४)। इस छन्दमे स्पष्टत 'कालविरुद्ध-दूषण' (अनाक्रानिज्म) आ गया है। छन्दकार सयत्न प्रमाणित करनेकी कोशिश कर रहा है कि प्रथा पुराकालमे जानी हुई न थी। इसकी अन्यत्र उपलब्ध स्वतन्त्र सामग्रीसे तुलना इसकी असत्यता घोषित कर देती है, पर उसका उल्लेख हम यथास्थान करेंगे। यहाँ तो स्वय यमी ऐतिहासिक परम्पराका सहारा लेती हुई उसके इतिहास-विरोधी आचरणको धिक्कार उठती है। अपने वक्तव्यमे वह उस साधारण जन-विश्वासकी ओर संकेत करती है जिसमें जुडवे भाई-वहनोका सम्वन्ध नितान्त स्वाभाविक माना जाता था। वह उसके विपरीत यमको धमकाती हुई सावधान भी करती है कि यदि उसने प्राचीन परम्परानुमोदित प्रथाका उल्लघन किया और उसका प्रस्ताव न माना तो उसे परम्पराका अनादर करनेके कारण देवताओंके क्रोधका भागी वनना पडेगा। वह कहती है—

"विश्वकार त्वष्टाने स्वय हम दोनोको दम्पतिके रूपमे एकत्र किया था (गर्भे नु नौ जनिता दम्पती)। (सावधान!) उसके व्रतो (नियमो) का कोई उल्लघन नहीं करता (नही तोडता)। और हम दोनो उसके है, आकाश और पृथ्वी दोनो इसे स्वीकार करते है।" (५)

अव जव यमको इतिहासका सहारा नही मिलता, और चूँकि यमी प्रचलित पद्धति और जानी हुई परम्पराकी याद दिला यमको निरुत्तर कर देती है, तव वह तर्कके वदले क्रोध प्रगट करता है—

"किसका जाना है वह प्रथम दिन जिसकी बात तू कह रही है ? उसे देखा किसने ? कौन यहाँ उसकी घोषणा करेगा ? मित्रावरुणोकी व्यवस्था महान् है। नीच पुरुषको प्रलोभित करनेके लिए भला तू क्या नही कह सकती ?" (६)

उत्तरमे यमी उसके प्रति अपने स्निग्ध प्रणयकी घोषणा करती है। शब्दोमे गजबकी गरिमा है—

"मैं, यमी, यमकी अनुरक्त हूँ। मैं उसके साथ समान शय्यापर रमण करूँ।

मैं उसे जायाकी भाँति अपने तनको पतिके प्रति समर्पित करूँ। हम दोनो रथके पहियेकी तरह परस्पर मिलनेको दौड पडें !" (७)

पर वह सावधि समाजके नये आचार-नियमोंसे अवगत और भयान्वित है। वह वरुणके चरोकी चौकसीका हवाला देकर यमीको सावधान करता है—

"वे थकते (बैठते) नही, कभी निमिष (पलक) नही मारते, देवोंके वे चर जो सदा हमारे चारो ओर विचरते रहते हैं।

मुझे नही, नीच, तू दूसरेको रथ-चक्रोकी भाँति दौडकर भेट !" (८)

तब वह समकालीन आचार-नियममे इस कार्यको अनुचित और अभ्रातोचित जानती हुई और इसी कारण भाईको डरा हुआ समझकर उसका सम्भाव्य पाप अपने सिरपर लेनेकी घोषणा करती है—

"सूर्यके नेत्र, दिन और रात्रिके रूपमे, उसके मार्गमें प्रकाश बिखेरते रहें !

आकाशमें धरापर (सर्वत्र) मिथुन (यम-यमी) की क्रीडा हो, यमीपर यमका अभ्रातोचित (**विभृयादजामि**) कर्म हो !" (९)।

यमके उत्तरमें परोक्ष रूपमे उस स्थितिकी कल्पना की गई है जिसमें भाई-बहनके बीच यह सम्बन्ध सामाजिक नियमके रूपमे ध्वनित है। वह चाहे यमकी जानकारीमे रही हो चाहे उसकी स्मृति-परम्परामें बनी रही हो। उत्तर इस प्रकार है—

"निश्चय ऐसे युग (उत्तरा युगानि) आयेंगे जब भ्राता और भगिनी अभ्रातोचित कर्ममे प्रवृत्त होगे।

मुझे नही, सुभगे, अन्य पति खोज, और उनके लिए अपनी भुजाओ की तकिया बना।" (१०)

वस्तुत. ऋचामे उल्लिखित 'उत्तर युग' पूर्व ही बीत चुके है या उनकी स्मृति अथवा शेषाश सममामयिक समाजमे बचा हुआ है। भविष्यका शाप यथार्थमे उस प्रथाकी प्रतिक्रिया है जो सम्भवत अंशत अभी बची हुई है और जिसे अनुचित करार दिया गया है। यमीके उत्तरमें उस प्रथाका सकेत है जिसमे भाई भगिनीका स्वाभाविक पति माना जाता था यद्यपि उसका ऊपरी अर्थ भगिनीके लिए पति और भाईके लिए पत्नी खोजना है—

"वह कैमा भाई जब भगिनी अनाथा (पतिरहित) हो ? कैसी वह भगिनी जब निऋति (मृत्यु) उपस्थित हो ?

कामाभिभूत ये अनेक शब्द मै उद्गीरित करती हूँ। पास आकर मुझे गाढे आलिगनमे बाँध लें।" (११)

और यम इस पुरानीके विरुद्ध सावधि प्रथाका उल्लेख करता हुआ कहता है—

"मैं तेरे तनको अपनी भुजाओमें नही बाँधूँगा, भगिनीके पास जाना पाप कहा गया है।

मेरे लिए नही, किसी अन्यके लिए अपने आमोद प्रस्तुत कर। तेरा भाई तुझसे, सुभगे, इसकी कामना नही करता।" (१२)

तब प्राचीन प्रथा द्वारा अपने अधिकार जताकर भी असफल यमी क्षुब्ध हो भाईको हृदयहीन और क्लीव कहकर धिक्कारती है—

"खेद ! यम, तू निश्चय क्लीव है, तेरे न मन है न हृदय !

खेद कि वृक्षको लताकी भाँति, कटिको मेखलाकी भाँति, कोई और तुझे घेरेगी।" (१३)

भाई अपनी दृढतामें अडिग होकर भी जैसे जुडवी वहनके उस पुरागत अधिकारको समझता है परन्तु समाजके नये आचारोका अनुवन्ध मानता हुआ (वह स्वय यम है, नियमोका प्रतिष्ठाता, यह नया नियम वह स्वय वना रहा है।) भगिनीको प्रेमानुशासन द्वारा सलाह देता है—

"अन्यका आलिगन कर, यमी, अन्यको अपनेको घेरने दे, जैसे लता तरुको घेरती है।

तू उसके मनको जीत, वह तेरी इच्छा जीते, फिर उसका तेरे साथ श्रेयस्कर सख्य होगा।" (१४)

सूक्तसे प्रकट है कि कमसे कम कभी, सम्भवत निकट पूर्वमे ही, भाई-वहनके वीच इन्सेस्ट प्रथाके रूपमे प्रचलित रही थी, जिसे समाजने अव तर्क कर दिया था। इस सम्वन्वके दो उल्लेख और हैं। एक (६,५५, ४) में तो भाईको वहिनका जार (**स्वसुयो जार,—४ स्वसुर्जारः—५**) और दूसरे में उसका पति अथवा जार होना (**यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते—१०, १६२, ५**) कहा गया है।

परन्तु भ्राता-भगिनी विवाहका सवसे उत्कट और अकाट्य प्रमाण पौराणिक परम्परामें मिलते है जो ऋग्वैदिक समाजके पूर्व और पर सम्वन्वी दोनो स्थितियोको समान रूपसे प्रकट करते है। अनेकाशमे पौराणिक परम्पराएँ ऋग्वेदसे भी पूर्वगामी समाजका सकेत करती हैं, यह याद रखनेकी वात है। दृष्टान्ततः त्रसदस्यु-पुरुकुत्स और ययातिके नाम ऋग्वेदमें (८, १९, ३६, १०, ६३, १) आते है और वह भी प्राचीन वीरोके रूपमें। परन्तु पुराणोकी परम्परा और वश-तालिका उनसे कई पीढी पहले आरम्भ होती है।

पुराणोकी सूचीसे प्राय दो दर्जन भाई-वहिन-विवाह गिनाये जा सकते हैं जिनका कार्य-काल ऋग्वेद-पूर्व, समकालीन और पश्चात् रहा है। एकाधको छोड शेष सारे दृष्टान्तोमे भाई अपनी भगिनी (पितृकन्या) से

विवाह करता है (मै विस्तार-भयसे हवालोका उल्लेख नही कर रहा हूँ। वे मेरी पुस्तक 'विमेन इन ऋग्वेद' में विस्तारसे दिये हुए हैं)। और ये अपवाद भी ऐसे है जिसमे विमातासे उत्पन्न या चचेरे भाई-वहिन परस्पर विवाह करते हैं।

अव देखे कि वेणके पिताने अपनी पितृकन्या सुनीताको व्याहा, विप्र-चित्तिने अपने पिता कश्यपकी कन्या सिंहिकाको। यम-यमीकी पीढी अग-सुनीताके वाद दसवी है। विवस्वान्के पुत्र मनुने विवस्वान्की पुत्री श्रद्धासे विवाह किया, नहुष ऐलने पितृकन्या (ऋग्वैदिक ययातिकी माता) विरजासे, अमावसु ऐलने पितृकन्या अच्छोदासे, शुक्र-उशनम् (जो पश्चात् ययाति-का ससुर हुआ) ने अपनी पितृकन्या गो से। देवयानी (शुक्र-उशनस्की पुत्री) की वडी वहन देवीने वरुणको वरा जो शुक्र-उशनस्का अगला वशधर होनेके कारण उसका भ्राता, अर्ध-भ्राता या चचेरा भाई रहा होगा। अगिरसोंके भरतने अपनी तीनो वहनोंसे व्याह किया। संहताश्वकी दुहिता हैमवती दृषद्वतीने पिताके दो पुत्रो कृशाश्व और अक्षयाश्वको वरा। ऋग्वैदिक पुरुकुत्सके पुत्र मान्धातृने पितृकन्या नर्मदासे विवाह किया, सगर के पौत्र अंशुमतने पितृकन्या यशोदासे, दशरथने सगोत्रा कोशल्यासे। दशरथ जातक, जो सम्भवत रामायणसे प्राचीन है, राम और सीता दोनोको भाई-वहन वताता है। कुछ अजव नही जो 'जनकतनया' पितृकन्या-का पर्याय रहा हो। ये ऊपर गिनाये व्यक्ति या तो ऋग्वेदसे प्राचीन है या उसके समकालीन। उसी काल, लगता है, समाजने सगोत्र, विशेषत. सगी वहनसे विवाहके विरुद्ध विद्रोह किया जिससे कमसे कम कुछ कालके लिए यह विवाह सम्वन्ध रुक गया। रामके वाद प्राय. २७ पीढियो तक पौराणिक परम्परामें ऐसे विवाह नही मिलते। परन्तु प्रथा कुछ साधारण न थी और पश्चात् फिर चल पडी। महाभारतकालमें ही प्राय. उसका नये सिरेसे फिर प्रारम्भ हो गया। कृष्णद्वैपायन व्यासके पुत्र शुकने पितृ-कन्या पीवरीको व्याहा, उसी प्रकार राजा द्रुपदने अपनी पितृकन्याको।

सत्राजितने अपनी दस वहनोंसे एक साथ व्याह किया। शृजयीके पुत्रने शृजयकी दो कन्याओको व्याहा। उसके पितामहने किसी ऐक्ष्वाकीसे व्याह किया था, उनसे उत्पन्न पुत्र ने भी (दूसरी) ऐक्ष्वाकी (कौशल्या) से ही विवाह किया।

वौद्ध परम्पराके प्रमाणोसे सिद्ध है कि यह भ्राता-भगिनी-विवाहकी प्रथा पौराणिक परम्पराके पीछे भी कायम रही थी। जातकमे राम-सीताको भाई-वहन माना जाना ऊपर लिखा जा चुका है। एक दूसरे जातकमें कृष्णके जुडवें भाईका अन्य पतिसे उत्पन्न अपनी माताकी पुत्रीसे विवाह करना लिखा है। काशीके उदयभद्रने अपनी अर्द्ध-भगिनी उदयभद्राको व्याहा। शाक्योमें (जिनमें वुद्ध हुए थे) वहिनसे विवाह प्राय साधारण वात थी। कोसलके राजा पसेनदि (प्रसेनजित्) के पिता महाकोसलकी पुत्री कोसलदेवीका विवाह राजगृहके राजा विंविसारसे हुआ था। विंविसारके पुत्र अजातशत्रुने पसेनदिकी कन्या वजिराको व्याहा जो इस प्रकार उसकी चचेरी वहन हुई। चचेरे भाई-वहनोके वीच विवाह वौद्ध परम्परामें सर्वथा आम था।

इन उदाहरणोंसे प्रमाणित है कि भ्राता-भगिनी-विवाह ऋग्वैदिक-कालके पूर्वसे लेकर वौद्धकाल तक भारतीय समाजमे सर्वत्र रहा है। सगोत्र विवाह वहुत पीछे स्मार्तयुगमें वर्जित हुआ यद्यपि उस विवाहकी परम्परा दीर्घकालतक पीछे भी चलती रही। मातुल-कन्या आदि विवाहोका फिर उसने रूप धारण किया।

अत्यन्त आदिकालमे जव पिता परिवारका सर्वथा स्वामी था और नारियोकी सख्या कम थी तव पिता और कन्याके वीच यौन सम्वन्ध-का होना वर्जित न था। उसके एकाध उदाहरण ऋग्वेदमें भी स्वीकारात्मक रूपमें मिलते हैं। कमसे कम उस प्रकारके उदाहरण लोगोको सह्य थे और कवि अपनी उपमाओंमें उन्हे व्यक्त करते थे। प्रजापति और उसकी कन्याका सम्वन्ध (ऋ० १०, ६१, ५–७) उसी प्रकारका है। वैसे ही

माता-पुत्रका सम्बन्ध भी ६, ५५, ५ में ध्वनित है जहाँ पूषन अपनी माता-का प्रेमार्थी (विवाहार्थी, दिधिषु) कहा गया है। पिता और कन्याका सम्बन्ध पौराणिक परम्परामें भी यदा-कदा उपलब्ध है। प्रवृत्ति, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, पितृसत्ताक स्थितिकी अवशेष है, जैसे माता-पुत्रका सम्बन्ध मातृसत्ताककी। माता-पुत्र सम्बन्धका उदाहरण अस्पष्ट रूपसे स्वय ऋग्वेदसे भी दिया जा सकता है। उषाको सूर्यकी माताके रूपमें जनयित्री कहा गया है (७, ७८, ३), जो देदीप्यमान पुत्र जनती है (१, ११३, १ २)। उसे अपने जार (सूर्य–१, ९२, ११) के तेजसे चमत्कृत होना भी कहा गया है। वह सूर्यकी पत्नी (७, ७५, ५) का अनुसरण करता है (१, ११५, २, १, १२३, १०)। इस प्रकार उषा सूर्यकी पुत्री (दुहि-तर्दिव —१, ३०, २२ आदि) कही गई है परन्तु एक स्थलपर कवि उसे उसकी 'प्रिया' बनानेसे भी नही चुका (१, ४६, १)। इस प्रकारके माता-पुत्र सम्बन्धका उदाहरण हमें पुराणोमे नही मिलता।

ऋग्वेदमें विधवा, सती और नियोग : ५ :

कहते है कि ऋग्वेदका साहित्य, जैसा उसका समाज भी, पूर्ण विकसित स्थितिमें हमारे सामने खुलता है। इसमे सन्देह नही कि आजके हमारे समाजकी अनेक विभिन्न परिस्थितियाँ ऋग्वैदिक समाजमे जीवित थी, अनेक तभी जन्मी भी, परन्तु साथ ही कुछ ऐसी भी थी जिनका अस्तित्व आज नही है और यदि हैं भी तो अशत ।

ऋग्वेदमे विधवाओंके अस्तित्वके कुछ उदाहरण मिलते हैं, उनसे भी अधिक विधवा-विवाहके, कुछ सतीके भी और अनेक नियोगके, जिसका अन्त हिन्दू समाजमें आजसे पर्याप्त पूर्व हो गया था। हम यहाँ इन तीनोकी स्थितिपर सक्षेप विचार करेंगे।

नि सन्देह विधवा सम्बन्धी उल्लेख ऋग्वेदमें बहुत नही हैं और जो हैं वे भी अस्पष्ट हैं। जो भी हो, इतना सन्देह सच है कि समाजमें उसका स्थान था। सभवतः ऐसी विधवाएँ भी थी जो आमरण विधवाएँ बनी रहती थी यद्यपि स्वाभाविक ही लडाके पुरुषोवाले उस युगमे विधवाओकी सख्या अधिक नही रह सकती थी। एक स्थलपर स्पष्ट उल्लेख है—

"अश्विन्, तुम कृश और शयुकी रक्षा करो, तुम दोनो विधवा और अर्थककी सहायता करो" (ऋ० १०, ४०, ८)। यह सकेत उन विधवाओंके प्रति हैं जो फिर विवाह नही करती थी। "कस्ते मातर विधवा मचकृच्छयु" (४, १८, १२) में भी उसी स्थितिका उल्लेख है। ऋषि जैसे इन्द्रसे पूछता है—मेरी माँको किसने विधवा बना दिया? दसवें मण्डलके मृत्यु-सूक्त (१८, ७) मे समाजमें अविवाहिता विधवाओंके प्रति परोक्ष सकेत उपलब्ध है। स्थिति विशेष और अनुष्ठान सम्पन्न करनेके

लिए इसमें अविधवा नारियो (नारीरविधवा·) का उल्लेख हुआ है। इसमें अविधवा सपत्नियोंके जलूसका वर्णन है। लगता है कि आजकी ही भाँति, चाहे इस मात्रामे न सही, तब भी विधवाएँ अकल्याणी मानी जाती और अनुष्ठानोंसे पृथक् रखी जाती थी। प्रसग विवाहका है जिससे विधवाओंके दूर रखनेका दूरस्थ संकेत मिलता है। इन जलूसमें अविधवा नारियाँ ही भाग ले सकती थीं। प्रकट है कि समाजमे तब अविवाहिता विधवाएँ वर्तमान थी।

ऋग्वेदमे विधवा सम्बन्धी सामग्री, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, थोड़ी है। आर्य शत्रुओंके बीच रहते थे, उनकी अपनी जनसंख्या अपेक्षाकृत कम थी और अपनी रक्षाके लिए, विजयके लिए भी, उन्हें पुरुषोंकी आवश्यकता थी। इससे यह सम्भव न था कि शिशुजननकी आयु वाली नारियाँ उपेक्षित छोड दी जायँ और आमरण विधवा बनी रहें। जो अपने मृत पतिके प्रति आमरण सख्य निभाना चाहती थी, और उनकी संख्या नितान्त कम थी, उन्हें छोड़ शेष सभी विधवाएँ अपना विवाह फिर कर लेती थी। इसी कारण समाजमें उनकी सख्या अत्यन्त कम थी। लगता है कि विधवाएँ विधवा होते ही प्राय' सर्वदा शीघ्र अपने देवर अथवा पतिके निकटतम सम्बन्धीसे ब्याह दी जाती थी। ऊपर उद्धृत मृत्यु-सूक्त से यह स्पष्ट है। पतिकी मृत्युके बाद जब उसका शव जलाने या दफनानेके लिए श्मशान अथवा कब्रगाहमें ले जाया जाता था तब उसकी विधवा भी शवके साथ-साथ जाती थी। साथ ही उसके पतिके परिवारके पुरुष और पतिवती (अविधवा) नारियाँ भी जाती थी। सस्कारार्थ उसे पतिके शवकी बगलमे लेटना पडता था। यह प्राचीनकालसे चले आते मृत्यु-सस्कारका एक अग था। उसका विवेचन हम फिर करेंगे। कालके मारे (१०, १८, २–३) उस वीरके पास जब तक वह पडी रहती थी तब तक उसके सम्बन्धी अन्त्येष्टिकर्म (३) करते थे। इसी बीच पतिवती नारियाँ (नारीरविधवाः), अंजनयुक्त निरश्रु नेत्रोवाली सपत्नियाँ, वस्त्राभूषण और

सुगन्धसे युक्त प्रसन्न वदन धधकती चिताके समीप जा उस नयी विधवाको नये जीवनके लिए सजाने लगती थी (७)। उसी समय कृत्योके बीच ही उसका विवाह हो जाया करता था। चिता प्रज्वलित होनेसे पहले पुरोहित शवके पास लेटी विधवाका सबोधन कर कहता था—"उठ नारी, जीवलोकको लौट। वह, जिसके समक्ष तू पडी है, अब मर चुका है। तेरा पत्नीत्व अब तेरे इस पतिके साथ है जिसने तेरा कर पकडा है और प्रणयी-सा तुझे वरा है।" (८) मूल अत्यन्त शालीन है—

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोक गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेद पत्युर्जनित्वमभि सबभूथ॥

उसके पतिका भाई (देवर), जो उसे व्याहता था, उस अवसरपर मृतकके हाथसे धनुष लेता हुआ कहता था—"मैं उसके मृत करसे धनुष लेकर धारण करता हूँ जिससे वह हमारी शक्ति और गौरव बने। तू वहाँ है वहाँ, और यहाँ हम वीर सारे विश्व और शत्रुओकी विजय करें"। (९) इस प्रकार मृत आर्य वीरका छोटा भाई न केवल धनुके प्रतीकसे 'जन' का नेतृत्व ग्रहण करता था वरन् मृतककी विधवासे विवाह भी कर लेता था। उदाहरण प्रमाणत अभिजात राजन्यका है। यह महत्त्वका प्रसग है कि धनुष लेते हुए वीर सावधि युद्ध और शत्रुओका उल्लेख करता है। विधवा-का तत्काल मृतक सामीप्यसे जीवलोकको लौट आना विशेष अर्थ रखता है। युद्धकी उस आपद्ग्रस्त दुनियामें पुरुषोकी संख्या द्वारा ही रक्षा सभव थी। सख्या वीरजननी नारियोंसे ही सभव थी। शिशुजनन-आयुकी विधवाएँ समाजको नि सन्देह बडी मँहगी पडती। इसमे आर्य विधवा होते ही उनसे विवाहकर प्रजनन-कार्यमे लग जाता था। कुछ आश्चर्य नही कि वधूको आशीर्वाद देता हुआ पुरोहित उससे "दश पुत्रो" की आशा करे, पतिको कुटुम्बका "ग्यारहवाँ" बनाये।

इस प्रकार देवर विधवासे तत्काल, सभवत मृतककी अन्त्येष्टिसे भी पहले, विवाह कर लेता था। पता नही इस विधवा-विवाहके अवसर-

पर विवाहकी पूरी रीतियाँ सम्पन्न होती थी या नहीं पर कमसे कम इतना तो सच है कि विधवा शीघ्र चितासे उठ देवरका हाथ पकड लेती, और उसकी औरस पत्नी तत्काल वन जाती थी। लगता है, जैसे यह विवाह स्वय मृतक-सस्कारका ही अग रहा हो। इसमे सन्देह नही कि यह प्रथा साधारणत क्रूर जान पडेगी कि विधवा मृतपतिके दग्ध होते ही दाम्पत्य सुख-भोगमे लीन हो जाय। विवाहकी यह कल्पना कुछ अजव नही कि जव-तव नारीको जघन्य अपराध करनेपर भी उतारू कर देती है। कुछ असम्भव न था कि पतिताएँ उससे विवाह करनेके लिए राहके काँटे पतिको महसा हटा दें जिसके साथ पतिके जीवनकालमे प्रच्छन्न रूपसे वे रमण करती रही हो। उस स्वच्छन्द समाजमें, जव वधूका विशेषण विवाहके समय भी 'देवृकामा' (देवरकी कामना करनेवाली) था, ऐसा होजाना कुछ असम्भव न था। वस्तुत. इस प्रकारकी दुर्वलताएँ सव कालके समाजमें होती आई है। वाकी रही वह भावुकता कि पतिकी मृत्युके शीघ्र वाद विधवासे विवाह निष्ठुरता है तो उसका समाधान केवल यह कहकर किया जा सकता है कि ऋग्वैदिक आर्य जितना ही आपदाओंसे घिरा था उतना ही उनके तिरस्कारमें वह आमोदशील भी था। साथ ही उत्तर-कालीन वशजोंसे वह कही कम धर्मवादी था, कही अधिक लोकवादी। मृत्युपर वह प्रसन्न हँसता था, वह उसके जीवनमे सामान्य घटना थी। मृत्युका उपहास किये वगैर आर्यका जीना उस क्रूर ससारमे कठिन था। इसीसे शव-सस्कारके समय ऋषि कहता है—"हम नृत्य और हास्यके लिए यहाँ आये हैं।" (**प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधाना —१०, १८, ३**)। नित्य शत्रुओंसे घिरे वे उन्हें मारते उनसे मरते रहते थे, कुछ अजव नही कि अपने मृतकोकी सख्या कम करने और जीवित लडाके वीरोकी संख्या वढानेके लिए सद्योजाता विधवाको पत्नी वना वे प्रजनन कार्यमें जागरूक हो जाते हो। विपद् थी पर उनकी आवश्यकता उससे वड़ी थी।

विधवा विवाहका एक और प्रमाण दसवें मण्डलके ४० वे सूक्त (२) मे मिलता है। ऋचा इस प्रकार है—

"अश्विन्, तुम सन्ध्या समय कहाँ रहते हो ? कहाँ प्रात:काल रहते हो ? तुम्हारा निवास रात्रिमे कहाँ है ? तुम्हें घरकी ओर कौन लाता है ? कौन लाता है तुम्हे इस प्रकार जिस प्रकार विधवा देवरकी शय्याका आरोहण करती है, जिस प्रकार वधू वरकी ओर आकृष्ट होती है ?"

इस छन्दका सकेत उस सामान्य रीतिकी ओर है जिसमे देवर साधारणतः भाईके मरनेपर उसकी विधवासे विवाह कर लेता था। प्रमाण असदिग्ध है। उपमा घरेलू है, नित्यकी घटनाकी परिचायक। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, पत्नी अपनी अविधवावस्थामे भी 'देवृकामा' कहलाती थी जिससे पतिविहीन होनेपर उसकी ओर उसके भावोका प्रवाह स्वाभाविक था।

विवाहार्थ ले जायी जाती (गर्तारु—१, १२४, ७,) अन्य विधवाओका उल्लेख मिलता है। ऐसी विवाहिताओको 'पुनर्भू' अर्थात् पुनर्जात कहा गया है। पतिके कही चले जानेपर भी पत्नी अपनेको विधवा मानकर फिरसे अपना विवाह कर सकती थी (ऋ० ६, ४९, ८)।

इसका प्रमाण स्पष्ट उपलब्ध नही कि विधवा-विवाहमें भी आवश्यक विधियाँ सम्पन्न होती थी या देवरकी स्वीकृति मात्र विधवाको पत्नी बनानेके लिए पर्याप्त थी। प्रस्तुत प्रमाणमे तो वह सीधी चितासे उठा ली गई है। और उसका देवर उसे पत्नी रूपमें ग्रहण कर लेता है। उसी सिलसिलेमें उससे पुत्र उत्पन्न करनेकी बात भी कही गई है। जान पडता है कि विधवा-विवाहमें जनके लोगोके सामने देवरका उसे स्वीकार मात्र कर लेना पर्याप्त था और उपस्थित लोग उसके साक्षी माने जाते थे।

साधारणत विधवा-विवाह सती प्रथाका प्रश्न हल कर देता है। यह बडे महत्त्वकी बात है कि ऋग्वेदके-से वृहद् ग्रन्थमे विधवाके चितारोहणका एक भी प्रमाण नही है। विधवाओंके तत्काल पत्नी बनकर समाजमे

दोवारा समा जानेके कारण ऐसा होना स्वाभाविक ही है। ऋग्वेद १०, १८, ९ से फिर भी, कुछ लोगोंकी रायमे, ऐसी ध्वनि निकलती है कि एक समय कभी रहा होगा जव मृतकके साथ ही उसका धनुप, जो उसके हाथ-से ले लिया जाता है, और उसकी विधवा जो उसकी वगलसे चितासे उठा ली जाती है, जला दी जाती थी। अथर्ववेदमें तो नि.सन्देह विधवाके पतिके शवके साथ जलनेकी वात स्पष्टत लिखी है। नृशास्त्रसे प्रमाणित है कि विधवा-दहन प्राचीन योद्धाओंके अन्त्येष्टि कर्मका एक आवश्यक अग था। हाँ, उस स्थितिमें सती प्रथा ऋग्वैदिक समाजमें समसामयिक न मानी जाकर हिन्द-यूरोपीय कालकी सामाजिक रीति माननी होगी। अथर्ववेदके जिस मन्त्रका ऊपर हवाला दिया गया है वह इस प्रकार है (१८, ३, १)—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणं अनुपालयन्ती तस्यै प्रजा द्रविणं चेह धेहि॥

इससे एक वात तो वडी स्पष्टतया प्रमाणित है। वह यह कि सती प्रथा इसमे 'धर्म पुराणम्' कही गई है। इससे सिद्ध है कि एक ज़माना था जव विधवा मृत पतिके शवके साथ चितापर जल मरती थी। अथर्ववेद उसी प्राचीन कालके 'धर्म पुराण' का संकेत करता है, परन्तु जान पड़ता है ऋग्वेदके समाजने कालान्तरमें (अथर्ववेदका वह सकेत ऋग्वैदिक समाजसे भी पूर्वकालकी ओर इशारा करता है) उस प्राचीन धर्मके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जो सुपत्नियाँ सजकर चितारोहणके लिए विधवाका अन्त्य मण्डन करने आया करती थी वही अव नवविवाहके लिए उसे सजाने लगी जिससे वह परलोकसे लौटकर नये सिरेसे जीवलोकमे प्रवेशकर 'पुनर्भू' कहलाई।

'आरोहन्तु योनिमग्रे'के सम्वन्धमें केगीका कहना है कि ज़रा-सी वे-ईमानीसे इसीका पाठान्तर (**'आरोहन्तु योनिमग्ने'**) सती प्रथाको वैदिक प्रतिष्ठा दे सकता था। परन्तु जैसा हमने ऊपर सकेत किया है, पुत्र उत्पन्न

करनेकी आयुवाली विधवाओकी समाजमे आवश्यकता थी और यह सम्भव न था कि उनका अन्त कर दिया जाय। फिर उनका जलाना जीवनशक्ति की बड़ी हानि भी थी क्योकि राजाओ और पुरोहितो अथवा श्रीमानोकी कुछ एक ही पत्नी नही, आर्य-अनार्य अनेको होती थी, और पतिकी मृत्युपर विधवाओंके जलानेका अर्थ था एक समूचे हरममें आग लगा देना, जब राष्ट्रको वीर प्रदान करनेवाली माताओकी इतनी आवश्यकता थी। सती-दाह वस्तुत एकपत्नी-स्थिति (ऐसा नही कि प्राचीनकालमें पत्नियोके दलके दल अन्य समाजोमें जलाये न गये हो), पतिकी प्रेमगत ईर्ष्या और नारीके अधिकारोकी पतितावस्थाका परिणाम था। भारतीय इतिहासके पिछले स्तरोमे समाजमें इन तीनो स्त्रियोका बोलबाला हुआ। परन्तु ऋग्वेदकालीन समाजमे स्थिति दूसरी थी, बहुपत्नीत्व साधारणत उसमें प्रचलित था, पतिकी ईर्ष्याके स्थानपर उस पौरोहित्य युगमे स्वच्छन्द प्रणयका बाहुल्य था। (जार-जारिणियोके उल्लेख उस वेदमें भरे पडे है), नियोगकी प्रथा सदाचरणको खोखला और पतिकी ईर्ष्याका अन्त करनेको पर्याप्त थी (महाभारतकाल जो ऋग्वेदका ही उत्तर युग है नियोग और दुराचरणसे भरा था), और नारीके अधिकार अपेक्षाकृत सुरक्षित थे। अविवाहित विधवाएँ समाजमें वही रह जाती थी जिनकी पुत्र प्रसव करने-की आयु बीत चुकी थी।

विवाहका लक्ष्य पुत्रोत्पत्ति द्वारा वश कायम रखना और राष्ट्रको शक्तिशाली बनाना होनेके कारण नारी मातृ रूपमें ही विशेष महत्त्व रखती थी। उसके नारीत्वका चरम गौरव मातृत्वका था। पुत्रोत्पत्ति इतना आवश्यक, इतना महत्त्वपूर्ण, माना जाता था कि पतिकी क्लीवता, उसका चिरकालके लिए दूर चला जाना, लोप, अभाव या मृत्यु उस प्रजनन-कार्यमे किसी प्रकारका बाधक नही माना जाता था। जिस विधिसे इन विषम परिस्थितियोमें भी वह पुत्रोत्पत्तिका कार्य जारी रखा जाता था उसे 'नियोग' कहते थे। इसका अर्थ था पुत्रोत्पत्तिके हेतु परपत्नी गमन अथवा

पत्नीका पतिसे भिन्न व्यक्ति द्वारा सन्तानोत्पादन। नियोग शब्दका प्रयोग उत्तरकालीन साहित्यमे हुआ है और वह ऋग्वेदमे सम्भवत नही मिलता, परन्तु उस समाजमे उस प्रथाका प्रचलन प्रमाणत. पर्याप्त रूपसे जारी था। पुरुकुत्सानीने पतिके अन्यत्र बन्दी रहते समय पुत्र पाया था (ऋ० ४, ४२, ८-९)। उस संहितामें क्लीव पतियोकी पत्नियोके पतिभिन्न व्यक्तियो द्वारा सन्तान उत्पन्न करनेका उल्लेख अनेक बार हुआ है (वही, १, ११६, १३, ११७, २४, ६, ६२, ७, १०, ३९, ७, ६५, १२)। पुरंधि वध्रिमतीने पतिकी क्लीवावस्थामें दूसरे द्वारा पुत्र उत्पन्न कराया। अश्विनीकुमारोंके प्रति एक ही स्तुति इस प्रकार है—"तुम रथपर चढकर विमदके समीप गये और उसे पुरुमित्रकी कन्या प्रदान की। तुमने क्लीव की पत्नीके समीप जा उसे पुत्र प्रदान कर सुखी किया (१०, ३९, ७)। इसी प्रकार उन्होंने एक अन्य क्लीवकी पत्नीको हिरण्यहस्त नामका पुत्र दिया (१, ११७, २४)।

यद्यपि पतिका कोई बन्धु उसकी पत्नीके साथ नियोग कर सकता था, साधारणत देवर ही इस कार्यके लिए उपयुक्त समझा जाता था। जैसा हम ऊपर लिख चुके है, विधवाका विवाह भी अधिकतर उसीसे होता था। पत्नी अथवा वधू अपने विवाहके अवसरपर भी देवृकामा कही गई है। देवर वस्तुत दूसरा पति है जिससे, उत्तर कालमे स्खलनोंके कारण उसका भाभीसे सम्बन्ध पुत्रवत् कर देनेपर भी, आज तक दोनोमें उत्तर भारतमे एक संदिग्ध सम्बन्ध बना रहा। दोनोमें आज भी खुले मजाक चलते है और कुछ क़ौमोमें तो भाभीके विधवा होनेपर देवरके साथ उसका सामान्यत. विवाह भी हो जाता है।

ऋग्वैदिक युगमें बहुपत्नी-बहुपति विवाह

आभिजात्य, सामन्ती और सामरिक व्यवस्थामे वहुपत्नीकता सामान्य धर्म है। ऋग्वैदिक युग तीनोका मम्मिलित रूप प्रस्तुत करता है। ऋद्ध राजन्य, अभिजात श्रीमान् और उनके समीपवर्ती ऋषि-पुरोहित सावारणत. वहुपत्नीक होते थे। एक स्थलपर (ऋ० १,६२,११) उत्कठित पतिसे उत्कण्ठिता पत्नियोके (**पत्नीरुशती**) चिमट जानेकी उपमा दी गई है। महिताने सपत्नियोंके स्पर्धाजनित कष्टसे लाचार पतिका सुन्दर चित्र खीचा है—'सव ओरसे सपत्नियोकी तरह कुचलते हुए मुझे पीडित करते हैं' (**सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिद पर्शव.**—वही, १,१०५,८,१०,३३,२)। दोनो ओरसे सपत्नियो द्वारा पीडित पतिकी यह दुर्दशा कष्टकर व्यग प्रस्तुत करती है।

अनेक पति वहुपत्नियोंके सहवाससे उल्लसित होते थे। इन्द्र उन्हींमें था। अपनी अनेक पत्नियोंसे (**जनिभिः**) वह वडा सुख लाभ करता था। राजाओका वहुपत्नीक (**राजेव हि जनिभि.**—वही ७,१८,२) होना तो मानो अनिवार्य था। अन्यत्र अनेक पत्नियोका समान पतिको प्यार करना लिखा है (वही १,७१,१)। सहिताके १,६२,१० का वक्तव्य इम प्रकार है—"सहस्रो पवित्र कार्यो के लिए वहने उसका वैसे मुँह जोहती हैं जैसे पत्नियाँ (**पत्नी**) और नारियाँ (**जनय**)।" इसी प्रकार इन्द्रके सम्बन्धमें कहा गया है कि उसने "सारे पुरो पर वैसे ही अविकार कर लिया है जैसे एक ही समान पति (**पतिरेक· समानो**) सारी पत्नियोपर (**जनीरिव**) अविकार कर लेता है (वही, ७,२६,३)। एक स्थलपर (१०,४३,१) पतिका पत्नियो द्वारा आलिगन (**परिष्वजन्ते जनयो यथा**

पतिम्) किये जानेकी उपमा दी गई है। एक सुन्दर उपमा दो पत्नियो वाले पतिकी रथके दोनो वमोके बीच दवे अश्वसे दी गई है। दोनोकी स्थिति कठिन होती है, डडोके वीच दवे घोडेकी भी, पत्नियोके बीच सत्रस्त पतिकी भी (१०,१०१,११)। इसी प्रकार **'पतिर्जनीनाम्'** (१०,८६,३२) पदमें भी उसी वहुपत्नीक पतिकी ओर सकेत है। ऐसा ही स्पष्ट उल्लेख ३,१,१० मे भी है। सपत्नियोका उल्लेख ३,६,४ मे भी हुआ है। इसी प्रकार १,५९,४ में वैश्वानरकी अनेक पत्नियोका जिक्र है। दिवाके पथ मे अनेक 'मोदमाना' वधुओका इन्द्रके लिए उडना स्पष्टतः लिखा है—**उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ** (५,४७,६)। सुन्दर वेणियो वाली अनेक कुमारियाँ देवताका आलिगन करती हैं (१,१४०,८)। 'सपत्नी' (सौत) शव्दका प्रयोग सहिताके अनेक छन्दोमे (३,१,१०,६,४,१, १०५,८,१०, १४५,१२५, १५९,५) हुआ है।

वहुपत्नीकका सवसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण दसवें मण्डलके १४५ वें और १५९ वें सूक्तोमें हुआ है। इनमे पहलेका नाम ही है उपनिपत्सपत्नी-वाधनम्, जो सौतको नीचा दिखानेका मन्तर है। इन्द्राणी स्वयं इस सूक्तकी ऋपि है और मत्र द्वारा इन्द्रके ऊपर सपत्नियोका प्रभाव नण्ट कर अपना प्रतिष्ठित करना चाहती है। उसका वक्तव्य इस प्रकार है—

"अत्यन्त शक्तिशाली इस पौधको भूमिसे खोदती हूँ। इससे सपत्नी वाँधी जाती है, पत्नीपर अधिकार किया जाता है। (१)

"देवताओके भेजे, वडे पत्तो वाले कल्याणकर विजयी पौध, तू सपत्नी-को दूर कर, मेरे पतिको सर्वथा मेरा वना। (२)

"हे सवल, मै सवला हूँ, सवलासे सवला, और वह मेरी सपत्नी अवलासे अवला है, सर्वथा निम्नगा। (३)

"मै उसका नाम नही लेती, वह इस जनमे निष्ठा करे, हम सपत्नीसे दूर सुदूर भागते है। (४)

"मैं विजयिनी हूँ, और तू भी विजयी है, विजय हम दोनोंके पक्षमे है, दोनो सपत्नीको परास्त करेंगे। (५)

"मैंने तुझ विजयीको (सभवत इन्द्रको) जीत लिया है, तुझे शक्ति-मत्र द्वारा जकड लिया है। जैसे गाय वछडेकी ओर दौडती है, तेरा मन भी वैसे ही मेरी ओर दौडे। नीचे दौडते हुए जलकी भाँति तू मेरी ओर दौड।"(६)

दूसरे सूक्तमे, जिसका हवाला ऊपर दिया जा चुका है, इन्द्राणी शची पौलोमी नामसे उस डाले मन्त्रका प्रभाव प्रकाशित करती है। प्रमाणतः सपत्नियोका नाश हो चुका है और इन्द्रपर उसका एकाधिराज स्थापित है। सूक्त इस प्रकार है—

"इधर सूर्य आकाशकी मूर्धापर उठा इधर मेरा भाग्य चोटीपर चढा। मैंने अपने स्वामीको जीत लिया है। (१)

"मै केतु हूँ, मै मूर्धा हूँ, शक्तिमती स्वामिनी मै हूँ। मै विजयिनी हूँ, मेरा स्वामी मेरे वशमें है। (२)

"मेरे पुत्र शत्रुघ्न है, मेरी कन्या अधिरानी है, मैं विजयिनी हूँ। स्वामीके ऊपर मेरा मन्त्र अधिष्ठित है।(३)

"देवो, जिस हविसे इद्र शक्ति धारण करता है, विजयी होता है, मैंने ही प्रस्तुत की है। मुझे प्रत्येक सपत्नीसे मुक्त करो।(४)

"सपत्नियोका नाश करने वाली मात्र पत्नी, विजयिनी, उन अन्य अवला नारियोका तेज मैंने छीन लिया है।(५)

"मैंने अपनी इन सपत्नियोको परास्त कर दिया है जिससे मैं इस वीर (इद्र) और जनोपर अधिकार रख सकूँ।"(६)

प्रकट है कि वहुपत्नीक व्यवस्थामे परिवार प्राय· मत्सर और कलह-की क्रीडाभूमि हो जाता होगा। सपत्नीको नष्ट करने और पतिपर उसका

प्रभाव कम करनेके लिए जन्तर-मन्तर, झाड-फूंकका महारा लिया जाता होगा। ऊपरके दोनो मूक्तोमे इन्द्राणीने जमीनमे मपत्नी नष्ट करने वाली औपधि (पौधा) निकालकर उसके नाशके लिए मन्त्रका अनुष्ठान किया है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि राजा, श्रीमान् और आढय पुरोहित वहुपत्नीक होते थे। सहितामें अनार्योके भी वहुपत्नीक होनेके उल्लेख मिलते है (१,६२, ११,७१,१,१०४, ३;६,१०५,८, ११२, १९, १८६, ७,७, १८, २,२६, ३,१०,४१, १,१०१, ११)। राजाओका तो जैसे वाकायदा हरम होता था जिसमें उनकी विवाहिता पत्नियोंके साथ अविवाहिता वधुएँ (जिनसे वे जव चाहते विवाह कर सकते थे) और रखैले भी रहती थी। ७, १८, २, की उपमासे प्रकट है कि इद्र अपनी पत्नियोमे वैसे ही रहता था जैसे राजा (**राजेव हि जानिभिः**)। उत्तरवैदिक साहित्यसे प्रकट है कि राजाके हरममें कमसे कम चार प्रकारकी रानियाँ होती थी—महिषी (पटरानी), परिव्रक्ती (पड्यत्रादिसे शक्ति धारण करने वाली), वावाता (राजाकी प्रिया) और पालागली (राजनीतिक कारणोसे विवाहिता, सभासदो व रानियो आदिकी संवधिनी जिन्हें राजा महलमें डाल लेता था)। इन चारोंके द्वारा धार्मिक अनुष्ठानोका हवाला ब्राह्मणोमे मिलता है। जाहिर है कि इनमें परस्पर द्वेष चलता रहता होगा, जैसा इन्द्राणीके सूक्त भी प्रमाणित करते हैं, और पत्नियाँ अपने पुत्रको राज्याधिकार दिलानेके भी प्रयत्न और पड्यन्त्र करती रहती होगी।

महितासे प्रमाणित है कि राजा पुरुरवाके उर्वशीके अतिरिक्त अन्य पत्नियाँ (**क्षोणिभिः**) भी थी (१०,९५,९)। पुराणोंसे भी इसकी पुष्टि होती है। कालिदासने भी अपनी 'विक्रमोर्वशी' में उस राजाको अनेक पत्नियोका पति वताया है। इसी 'क्षोणि' शब्दका प्रयोग उस इन्द्रके लिए भी हुआ है (२,१६,३) जिसकी अभितृप्ति नारियोंसे नही हो पाती। ऊपर महिपीका उल्लेख हो चुका है। उसका अर्थ है प्रधान रानी, जिससे

अन्य रानियोका होना स्वाभाविक है। महिषी शब्दका प्रयोग भी संहितामे अनेक बार (५,२,२,३७, ३ आदि) हुआ है।

राजाओके अतिरिक्त ऋषियोमें भी बहुविवाहकी प्रथा थी। कक्षीवान्ने रोमशा और घोषा दो राजकुमारियोको व्याहा था (१,१२६, ३, १, ५१, १३)। इसी प्रकार प्राचीन ऋषि च्यवन अथवा च्यवानने भी वृद्धावस्थामे अनेक पत्नियो (१, ११६, १०, ५, ७४, ५, १, ११७, १३, ११८, ६, ७ ६८, ६,७१, ५, १०, ३९, ४) को व्याह कर दुर्दशा झेली थी। कक्षीवान्, औशिज, कवष अथवा वत्स दासी-माताओंसे जन्मे थे। ये निश्चय औरस पत्नीके अतिरिक्त रखैलोकी भाँति उनके ऋषि-पिताओ के पास रही होगी क्योकि एकपत्नी ऋषिके अनार्या व्याहनेका एक प्रमाण भी ऋग्वेदमें नही है। अनार्या भार्याएँ सदा आर्या पत्नीसे अतिरिक्त होती थी जो या तो विवाहके साथ ही द्वितीया वधूके रूपमे आती थी अथवा ऋषियोको उदार दाताओ द्वारा दानमे मिलती थी।

यहाँ विवाहार्थ प्रस्तुत दास-कन्याओपर दो शब्द लिख देना समीचीन होगा। यह तो स्पष्ट है कि उनके आर्योंके साथ विधिवत् विवाहका प्रमाण ऋग्वेदमें नही मिलता। आर्योंके सारे कार्य मत्रानुष्ठान द्वारा सम्पन्न होते थे, इससे विधिवत् धर्माचरणके योग्य दासी-पत्नियाँ न समझी जानेके कारण निश्चय परिवारमें उनका स्थान रखेलिनो (उपपत्नियो) का रहा होगा। लगता है, पिछले रजवाडोकी भाँति विवाहके ही समय प्रमाणत पत्नीकी आमरण मैत्राके लिए पत्नीके साथ ही वे आर्यवरको प्रदान कर दी जाती थी और उनकी सज्ञा भी पत्नीकी ही तरह 'वधू' होती थी (१, १२६, ३,५, ४७, ६, ६, २७, ८, ८, १९, ३६,६८, १७)। इस सज्ञाकी विवाहिता पत्नीकी ही भाँति सभवत उन्हे अनेक अधिकार मिल जाते थे। उनका यह नाम सार्थक तभी हो सकता था जब आवश्यकतावश उन्हें औरस पत्नी बन सकनेकी सभावना हो। आर्यवरको विवाहके अवसरपर ही 'वधू' रूपमें प्रदान की गई होनेसे उनका स्थान

पत्नीवत् हो जाता था, जिससे पति उनके साथ यथासमय नि गक पतिवत् आचरण कर सकता था और पुत्रवती होनेपर तत्काल उनका पद विवाहिता पत्नीके समकक्ष हो जाता था वरना कक्षीवान्, औशिज, कवष आदि ऋषियो-की माताओको असम्मत अथवा अनादृता माननेकी कष्टकल्पना करनी होगी। वहुपत्नी विवाहकी यह प्रथा वधू रूपमे पुरोहितो, ऋषियो आदि-को दानमें देनेकी रीतिसे पर्याप्त प्रचलित रही होगी। गाय, घोडे, ऊँटके साथ ही वधुओंके रथ भर-भर दिये जानेका उल्लेख मिलता है (६, २७, ८,८, ६८, १७)। ऋग्वेद ८, १९, ३६ (५, ४७, ६ भी) के अनुसार राजा त्रसदस्युने सोभरि काण्वको 'वधू' रूपमे ५० दास-कन्याएँ दी थी। स्वनय भावयव्यकी कन्या रोमशाके साथ विवाहमे कक्षीवान्‌को रथ भरकर वधुएँ दहेजमे मिली थी (**स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दशरथासो अस्थु** — १, २६, ३, और देखिए ७, १८, २२)। इन उदाहरणोंसे प्रकट है कि चाहे एकपत्नीत्व साधारण जनताका धर्म रहा हो, शक्तिमानो, समृद्धो और अभिजात्योमे वहुपत्नी-विवाह छाये रहा है। सामरिक जीवनमे जब अधिकाधिक सख्यामें शत्रु-नारियाँ लूटी जाती थी, उनका उपयोग पत्नियो या रखैलोके रूपमे होना स्वाभाविक और अनिवार्य था।

वहुपति विवाहपर भी विद्वानोमे कुछ कथोपकथन हुए है। यहाँ उस दिशामे प्रकाश डालना भी सार्थक होगा। इसमे सन्देह नही कि इस प्रसगमे ऋग्वेदमे पर्याप्त स्पष्ट प्रमाण नही है यद्यपि कुछ सामग्री ऐसी निश्चय है जो उस दिशामे सकेत करती है। अधिकतर तो इसी कारण निष्कर्षोंपर निर्भर करना पडता है। और ये नि.सन्देह अकाट्य नही होते। फिर भी उनसे इतना स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थ किसी-न-किसी रूपमें किसी-न-किसी मात्रामें वहुपतित्व सहन कर सकता है और ऋषि उस स्थितिका अनुमान कर सकते है। यह स्वय उस स्थितिकी आशिक रूपसे स्थापना है।

साधारणत तो विद्वानोमे यह धारणा है कि वहुपति-विवाह अनार्य

प्रथा थी परन्तु जो प्रमाण सहितासे उपलब्ध है और जिनका उल्लेख हम नीचे करेंगे उनसे प्रकट है कि वह रीति आर्योंमें भी सर्वथा अनजानी न थी। फिर भी यहाँ पाठकोको सावधान कर देना आवश्यक है कि प्रमाण अधिकतर धुँधले और परोक्ष है जिससे वे सर्वदा निश्चयात्मक नही हो पाते। उनका अधिकतर उपमाओ-अलकारोमे प्रच्छन्न रहना भी अनुसन्धाताकी कठिनाई वढा देता है। पहले तो इस प्रकारके प्रमाणोकी सख्या तीन-चार ही है यद्यपि उनका प्रयोग दो-दो तीन-तीन वार हुआ है। इनका प्रयोग तीन वर्गके देवताओके सम्वन्धमें हुआ है जिनका सम्वन्ध प्राकृतिक तत्त्वोसे है। वे है अश्विन् (अश्विनीकुमार), मरुत् और विश्वेदेवा। इनमेंसे पहले तीन तो प्रकृतिके स्पष्ट अवयव हैं और उनका परस्पर भी प्राय घना सम्वन्ध है। दिव्य चिकित्सक अश्विन् प्रात सायकी गोधूलि अथवा तत्सम्वन्धी नक्षत्र हैं। वे युगल प्राणी है और उनका सम्वन्ध स्वाभाविक ही सूर्य और चन्द्रमासे है। वे चन्द्रमा (सोम) के सहवाल है और उसकी ओरसे सूर्यकी दुहिता सूर्याको जीत लेते है। अनेक वार सूर्याके वरोंके रूपमें, उसे रथपर विठा ले जाते हुए, और स्वयवरमें उसके जीतनेके लिए—सभवत सोमकी ओरसे—रथ-धावन प्रतियोगितामे भाग लेते हुए उनका वर्णन हुआ है। सूर्यकी दुहिता उनसे आकृष्ट उनके रथमे चढती हुई (१, ११८, ५) वताई गई है। अन्यत्र उसका उन्हे पतिके रूपमे वरण करना लिखा है (**पतित्व योषा वृणीत युवा पतीम्—१, ११९, ५**)। यहाँ कुमारीका दो पति एक साथ वरण करना स्पष्ट है। परन्तु यह याद रखनेकी वात है कि अश्विन् जुडवे देवता हैं जिनकी स्थिति सर्वथा एक व्यक्तिकी है। सूर्यकी दुहिता सूर्या सोमको व्याही है जो वस्तुत चन्द्रमामें आश्रय करनेवाली सूर्यकी प्रभा है जो प्रात साय गोधूलि (अथवा उसके देवता अश्विन्) द्वारा अपने आश्रय (सोम-चन्द्र) तक पहुँचती है। वर वस्तुत सोम है। इसे १०, ८५, ९ और स्पष्ट कर देता है। यह मन्त्र सूर्या-विवाहका है जिसमे पति अथवा वर सोम कहा गया

है और अश्विन् केवल उसके सहवाल है । विवाह सूर्याका वहाँ सोमके साथ ही होता है, अश्विनोके साथ नही ।

मरुत् इन्द्रके सैनिक है । उनके सम्वन्धमे ऋग्वेदका एक वक्तव्य इस प्रकार है—"शालीना युवतीको युवाओने अपने रथपर विठा लिया" (**आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम्** (१, १६७, ६) । इससे पहलेकी ऋचामे एक (साधारणी) पत्नीका मरुतो द्वारा मुक्त होनेका संकेत है—

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षु ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवा ॥ (४)

वैसे ही ऋचा ५ में रोदसीका मरुतोके प्रति और सूर्याका अश्विनोके प्रति अनुरक्त होना लिखा है । इसी प्रकार मरुतोंके प्रति ऋषिका उद्‌गार है—"दूर जाओ, वीरो, अकेली पत्नीके वर, दूर जाओ" (**परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः—५, ६१, ४**) । जैसे कवि अश्विनोमेंसे एकको नही सोच सकता, मरुतोको भी अकेला नही सोच सकता और उनमे अकेली वसनेवाली (वादलोकी प्रिया) रोदसी (विजली) को उनकी भार्या मान लेना स्वाभाविक ही है ।

विश्वेदेवा स्पष्ट ही अनेक देवताओंके दल है । उनके सवधका वक्तव्य प्राय निश्चयात्मक है—"एक ही नारीके साथ पक्षधर अश्वोपर चढे हुए दोनो मार्गमे यात्रीकी भाँति जाते हैं (**विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसत—८, २९, ८**) । इसमे एकके वाद एक, पाण्डवोकी भाँति, पत्नीके साथ रहनेकी ध्वनि है । महत्त्वकी वात यह है कि समयके विचार से महाभारत और इस मन्त्रके कालमे वहुत अन्तर नही है । सहितामे एक ही नारीके अनेक पतियो और ससुरोके सवधका उल्लेख निम्नलिखित प्रसगोमें हुआ है यद्यपि सदर्भ सदिग्ध और अस्पष्ट है—७,३३, १३, ८, १७,७, १०,८५,३७-३८, १०, ९५, १२ ।

कुछ अजव नही कि वास्तविक विवाहके पूर्व मानव पतिसे पहलेके जिन सोम, अग्नि और गन्धर्व नामक अपार्थिव पतियोका ऋग्वेदमे (१०, ८५, ४०) उल्लेख हैं वे दूर प्राचीन कालमें वहुपतित्व (पोलियाड्री) के ही प्रतीक रहे हो। नियोगकी प्रथा भी प्रवल रूपमे एक समय जो ऋग्वैदिक समाजमे प्रचलित थी उससे भी वहुपति सवधका एक अप्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। नि सन्देह नियोग और वहुपतिमे मात्र मात्राका अन्तर है। वस्तुत दोनो एक ही है। एकको स्वीकार कर दूसरेको प्रसिद्ध करना कठिन है। फिर पितृनामोके वजाय प्राचीन कालमे मातृ नामका व्यवहार भी उसी स्थितिकी ओर दूरका सकेत करता है। मातृसज्ञक नाम शायद इसलिए कि पिताका निश्चयात्मक वोध नही, पर मातृत्वमें तो खैर सन्देह हो ही नही सकता। इसी प्रकार 'देवृकामा' शब्दका वधूके सवधमे प्रयोग भी इसी दिशामे सकेत करता है। इसका अर्थ है—'देवरकी कामना करने वाली।' यदि यह उल्लेख मृत्युके प्रसगमें हुआ होता तो इससे विधवानन्तर दशाका सकेत माना जा सकता, परन्तु यह तो विवाह-के अवसर पर ही प्रयुक्त हुआ है। हाँ, इतना जरूर है कि सूर्याविवाह सवधी सूक्त, जिसमें इस शब्दका प्रयोग हुआ है, अनेक कालकी ऋचाओ-का सग्रह है और कुछ अजव नही कि, यद्यपि सहिताकालमे नही, अत्यन्त प्राचीनकालमे, जिसके प्रति उनका सकेत है, ऐसी व्यवस्था रही हो जव वधूका व्याह घरके सारे भाइयोंसे होता रहा हो। तव उसका देवरमे रति रखना कुछ अजव न रहा होगा। आखिर आजके समाजमे भी देवरका भाभीसे दिल्लगी करना और अनेक जातियोमें पतिके मरते ही विधवाका उसके भाई (देवर) से विवाह (जैसा ऋग्वेद-कालमें साधारणत होता था) कुछ सार्थकता रखते है।

निश्चय, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, प्रमाण अस्पष्ट, कुछ दुर्वल और सदेहात्मक हैं पर वे नितान्त हेय भी नही है और उनकी सर्वथा अव-हेलना भी नही की जा सकती। उनकी पूर्व-परकी स्थितियोपर विचार

करना होगा। हमे प्राय तभीके कुछ उदाहरण मालूम है। कुन्ती और माद्रीने अपने प्रकृत पति पाण्डुके रहते सूर्य, धर्म, वायु, अश्विनीकुमार आदिसे पुत्र जने थे, कुछ पहले शान्तनुकी पुत्रवधुओने भी। निश्चय ये उदाहरण नियोगके है, परन्तु नियोग द्वारा चाहे जितने कम समयके लिए पुरुप पत्याचरण करता हो स्थान उनका पतिका ही है। फिर पाँच पाण्डवो का एक द्रोपदीसे विवाह उसीको पुष्ट करता है। महाभारतमें इसे समान्य वनानेका काफी प्रयत्न हुआ है परन्तु उससे समाधान हो नही पाता, विशेप-कर जव हम पाण्डुके हिमालयवासको देखते है जहाँ तिव्वतमें सदासे वहुपति विवाहकी प्रथा प्रचलित रही है, जिसका उल्लेख वात्स्यायनने अपने 'गोयूथिकम्' सूत्रमे किया है, और जो आज भी अनेकाशमे वहाँ कायम है। हाँ, यह माननेमे कोई हठधर्मी नहीं होनी चाहिए कि वहुपति-प्रथाकी ओर सम्भवत ऋग्वेदका सकेत समसामयिक समाजके प्रति न होकर अति प्राचीनके प्रति है, यद्यपि उससे स्थितिमे कोई विशेप अन्तर नही पडता।

संस्कृतके नाटक

कालिदासने नाटकको 'शान्त चाक्षुप यज्ञ' (शान्तं क्रतुं चाक्षुष) कहा है। इस 'प्रयोगप्रधान' (प्रयोगप्रधान हि नाट्यशास्त्र—मालविका० पृ० १७) कलामे भारत कबसे प्रवीण रहा है यह कहना तो निश्चय कठिन है पर इसे स्वीकार करना प्राय प्रकृत है कि अभिनयकी परम्परा सहस्राब्दियो प्राचीन है।

भरतके 'नाटयशास्त्र' मे नाटकके आरम्भका परम्परागत दृष्टिकोण दिया हुआ है—

> जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
> यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ (१, १७)

"ऋग्वेदसे पाठ्य, सामवेदसे गान, यजुर्वेदसे अभिनय और अथर्व-वेदसे रस लेकर" ब्रह्माने पाँचवे—नाटय-वेद—की रचना की। नाटय-शास्त्रके पहले अध्यायमें इस परम्परासे सम्बन्धित कथा इसी प्रकार दी हुई है—मानवोको दुखी देख इन्द्रादि देवताओने ब्रह्मासे चारो वेदोंसे भिन्न किसी ऐसे वेदका निर्माण करनेकी प्रार्थना की जिससे संहिताओके साधारण अनधिकारी स्त्री, शूद्रादिकोका मनोरजन हो। परिणामस्वरूप इस प्रकार वेदकी रचनाकर ब्रह्माने उसके प्रयोगका कार्य पुत्रो सहित भरत मुनिको सौंपा। पहले यह प्रयोग 'भारती', 'सरस्वती' और 'आर-भटी' वृत्तिमे शुरू हुआ, फिर ब्रह्माने भरत मुनिसे 'कौशिकी' वृत्तिका प्रयोग करनेको कहा। परन्तु चूँकि उसके लिए स्त्री पात्रोका होना अनि-वार्य था इससे ब्रह्माने मंजुकेशी, सुकेशी आदि अप्सराओको सिरज नारदादि

गन्धर्वोके साथ भरत मुनिको सौंपा। मुनिने नाटकका पहला प्रयोग इन्द्रके ध्वजोत्सवमे किया। इन्द्रकी आज्ञासे विश्वकर्माने नाट्यगृह वनाया। फिर तो एकके वाद एक अनेक नाटक खेले गये। 'अमृतमन्थन' (समवकार), 'त्रिपुर-दाह' (डिम) उनमें विशिष्ट थे। कालिदासने भी उस परम्पराको भरतमुनि और उनके 'अष्टरसाश्रय' तथा 'ललिताभिनय' (नाट्य-शास्त्र, अध्याय ६-१०) के प्रसगोका उल्लेख कर ध्वनित किया है—

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो
भवतीष्वष्टरसाश्रयो निवद्ध.।
ललिताभिनयं तदद्य भर्ता
मरुतां द्रष्टुमना सलोकपाल.॥ (विक्र० २,१७)

स्वय भरतके नाट्यशास्त्रका रचनाकाल तीसरी सदी ईसवीसे पीछे नही रखा जा सकता। पाँचवी सदीके कालिदासने उनका उल्लेख अत्यन्त श्रद्धापूर्वक किया है जिससे उसकी प्राचीनता प्रकट होती है। कुछ अजव नही कि यह शास्त्र और भी प्राचीन हो, क्योंकि साहित्यिक परम्परा यह भी है कि भरतका शास्त्र उनके सूत्रोपर अवलम्बित है, और सूत्र निश्चय और प्राचीन थे।

कालिदासने अपने पहलेके नाट्यकारोमे महान् भास, सौमिल्ल और कविपुत्रका उल्लेख किया है, पर निश्चय उनकी शक्ति मानते हुए भी महाकविने विशेष आदर और महिमा भरतको 'मुनि' कह कर दी है। प्रकट है कि कालिदास भरतको इन नाट्यकारोसे पूर्वका मानते है। इनमे सौमिल्ल और कविपुत्रका काल तो जाना हुआ नही है पर भासका समय सन्दिग्ध होकर भी साधारणत तीसरी सदी ईसवी माना जाता है, वैसे वह काल भरत मुनिकी भाँति ही ई० पू० तीसरी सदी तक अनेक लोग मानते हैं। कुछ अजव नही जो भरतके नाट्यशास्त्रके कमसे कम कुछ अंग अश्वघोष और भाससे प्राचीन हो। उस स्थितिमें उन्हें हमें पहली सदी ईसवीसे पूर्व ही रखना होगा। फिर स्वय भास और अश्वघोषकी रचनाएँ

शैली और सौन्दर्यमे इतनी प्रौढ और निखरी हुई है कि उनको सस्कृत साहित्यकी प्रारम्भिक नाटयकृतियाँ किसी प्रकार नही कहा जा सकता। इससे उनका विकासकाल भारतीय नाटकके प्रारम्भका समय और पूर्व फेंक देगा। साथ ही नाटयशास्त्र स्वय प्रस्तुत कृतियोको सामने रख कर ही रचा गया होगा। सिद्धान्त (आलोचना आदि सभी) सदा प्रयोगके वाद आविष्कृत होता है। उस दशामे नि सन्देह नाटयकृतियोकी नाटयशास्त्रसे पूर्व स्थिति माननी होगी। और प्राचीन साहित्यमे इस ओर पर्याप्त सकेत विद्यमान है।

ई० पू० पाँचवी सदीके वैयाकरण पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायी (४, ३, ११०) में शिलाली और कृशाश्वके नटसूत्रोका उल्लेख किया है। कौटिल्यके 'अर्थशास्त्र'मे 'कुशीलव' शब्दका प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ अभिनेता होता है। इस शब्दका प्रयोग मनुने भी अपनी स्मृतिमें किया है, अभिनेताके ही अर्थमे, जिससे नट, नर्तक आदिका भी अर्थ लगाया जा सकता है। मनुस्मृतिका रचनाकाल शुंग-युग (ई० पू० दूसरी सदी) माना जाता है जिससे वह कृति और पतञ्जलिका 'महाभाष्य' पुष्यमित्र शुगके समकालीन ठहरते है। इस महाभाष्यमे दो नाटको—कसवध और वलिवन्ध—का उल्लेख हुआ है। साथ ही भाष्यकारने अभिनेताओके वर्ण-लेखन और तीन प्रकारके अभिनेताओका उल्लेख किया है। रामायण और महाभारतके स्पष्ट सकेत भी उस दिशामे हुए है। रामायणने तो 'नाटक' शब्दका ही प्रयोग किया है और महाभारत (३, ३०, २३) काष्ठमयी नारीपात्रका उल्लेख करता है। हरिवशमे तो कृष्णके वशधरो द्वारा नाटक खेले जानेका स्पष्ट वर्णन मिलता है।

यह प्रसग हमें भारतीय (सस्कृत) नाटकके मूलके सम्बन्धमे भी विचार करनेको वाध्य करता है, विशेपकर इस कारण कि देशी-विदेशी विद्वानोमे इस दिशामे पर्याप्त चर्चा हुई है। कुछ लोगोने नाटकका आरम्भ विष्णु-पूजाके आधारसे माना है, कुछने पुतलियोंके नाचसे। कुछ उसका

मूल वेदोमे देखते हैं, कुछ सर्वथा ग्रीक रग-व्यवस्थामे। ऐसे भी विद्वान् है जो नाटकका आरम्भ मृत पूर्वजोकी पूजा और छाया-नाटकोसे सम्बन्धित मानते हैं। ये सारे दृष्टिकोण समान महत्त्वके नही हैं। सही है कि छाया-नाटकका प्रभाव असाधारण रहा है और भारतसे चीन तक, तिब्वतसे हिंदेशिया तक वह प्रचलित रहा है, अनेकागमे आज भी है। पर प्रकट है कि उसे नाटकका आरम्भ नही माना जा सकता क्योकि वह स्वय एक प्रकार-का नाटक है और उसे मूल मानकर फिर उसके मूलकी भी खोज करनी होगी। इनमे और दृष्टिकोण तो गौण है और उनका सकेत वस्तुत नाटकीय परम्पराके विकासमें उनके सहायक होनेकी ओर है, नाटकका मूल होनेकी ओर कदापि नही। विचारणीय दृष्टिकोण केवल दो है—ग्रीक रग-व्यवस्था और पुतलियोका नाच।

सस्कृतके नाटकोका आरम्भ, अन्त, रग-निर्देश, यवनिका, विदूपक, प्रतिनायक आदिका प्रयोग और सीनावेंगा गुफाके ग्रीक मचानुकृतिके आधारपर ग्रीक नाटक-शैलीके प्रति उनका ऋणी होना कहा जाता है। निश्चय विचार आधारहीन है, ऐसा नही कहा जा सकता, पर इस दृष्टि-कोणको लेकर काफी हठधर्मीका परिचय दिया गया है। विदेशी पण्डितोने इस दिशामें तर्कसे कम और जिद्दसे अधिक काम लिया है। इसके विप-रीत भारतीय पण्डितोने भी हठका आचरण किया है जो भारतीय नाटको पर किसी प्रकारका विदेशी प्रभाव नही मानते। पर जैसे आज भी हमारे साहित्य और रगमचको समारके साहित्य और रंगमच प्रभावित कर रहे हैं वैसे ही सवन्ध होने पर एकको सदा दूसरेका लाभ हुआ है, इससे इनकार नही किया जा सकता। सही तो यह है कि भारतीय नाटको और ग्रीक नाटकोमे अन्तर अधिक है, समानता कम। 'देश-कालकी एकता'में, रगमचके रूप-विधानमे, नाटकोके 'कामिक' और 'ट्रैजिक' रूपमे इतना अन्तर है कि सस्कृतके नाटकोका उद्गम ग्रीक नाटकोको बताना सर्वथा अनुचित होगा। यह भी सही है कि सन्त क्रिसोस्तमने सन् ११७ ई०

में ही लिखा और हाल ही वादके प्लूतार्क और ईलियनने इसका समर्थन किया, कि 'भारतीयोने होमरकी कविताएँ अपनी भाषामें अनूदित कर ली हैं और उन्हे वे गाया करते हैं', परन्तु नि सन्देह यह भ्राति 'ईलियद' और 'रामायण'की कथा-वस्तुकी आकस्मिक समानताके कारण ही हुई होगी। फिर भी हमे यह बात न भूलनी चाहिए कि ग्रीक भारतमें दीर्घकाल तक—सदियो—घर वनाकर, नगर वसाकर, रहे थे। उनके पत्तल, युथिदेमिया, दिमित्री, तक्षशिला, शाकल आदि नगर प्राय पूर्णत ग्रीकोके थे। इनके अतिरिक्त ऐसे भी अनेक नगर थे जहाँ ग्रीकोके अपने अलग मुहल्ले थे, जहाँ सदा वे अपने नाटक खेला करते थे, अपने प्रसिद्ध 'औलिपिक' खेल खेला करते थे। कोई कारण नही कि उनका प्रभाव हमारे नाटकोपर न पडा हो। विशेषकर जव हमने उनसे अपनी गान्धारकला पायी, रोमक और पोलिश सिद्धान्त (वराहमिहिरकी पचसिद्धान्तिका देखिये, गार्गी-सहिता—'यवन म्लेच्छ है, पर ज्योतिषशास्त्रके आरभयिता होनेके कारण वे देववत् पूजनीय है।') पाये, तो कोई आश्चर्य नही कि हमारे नाटकोपर भी जिस क्षेत्रमे उनकी विलक्षणता सराहनीय थी, उनका प्रभाव पडा हो। कहाँ पडा है, यह विचारणीय और अनुसधानके योग्य है। इसका विशेष अध्ययन होना चाहिए। इसमे भी शायद सन्देह नही हो सकता कि रगमचपर परदोका विशेष प्रयोग ग्रीक रगमचके सपर्कसे ही शुरू हुआ। 'यवनिका'का अर्थ ग्रीक रगमचके परदेसे भिन्न करना अनर्थ ही करना है।

लगता है कि भारतीय नाटकका आरम्भ पुतलीके नाचसे हुआ। साधारणत विद्वानोका मत है कि नाचका प्रारम्भ अति प्राचीन कालमें भारतवर्षमें ही हुआ। उसमें सूतसे नचानेवालेका नाम भी नाटकोंके सूत्रधारकी ही भाँति 'सूत्रधार' ही था। उसका सहकारी भी नाटकोंके स्थापककी भाँति 'स्थापक' ही कहलाता था। पुत्तलिकाओंके अनेक वर्णन साहित्यमे आते है। राजशेखरने सीताका नाट्य करती वोलती

पुत्तलिकाका वर्णन किया है। इतना फिर भी है कि केवल इसीके आधार पर नाटकका आरम्भ मानना भी उचित नही होगा। इससे इतना निश्चय सिद्ध हो जाता है कि नाटकके प्राय सभी प्रारम्भिक साधन पुतली के नाचने प्रस्तुत कर दिये थे। उसे ऋग्वेदके सवादात्मक अनेक स्थलोंसे विशेष सहायता मिली होगी। यम-यमी, सरमा-पणियाँ, पुरुरवा-उर्वशी, शची-वृषाकपि आदिके अनेक स्थल उस वेदमे है जो प्रौढ 'डायलाग'का कार्य कर सकते थे। साथ ही इन्हे अनेक प्रकारकी लीलाओ, विष्णुपूजन आदिसे भी सहायता मिली होगी। रगमच खडा हो गया।

२

संस्कृत नाटकका स्वरूप

संस्कृतके नाटकको भी काव्यका अग माना गया है। काव्यके दो भेद हैं—श्रव्य और दृश्य। श्रव्य काव्य केवल कर्णसुखद होता है, दृश्यकाव्य नाटक है जिससे कानो और नेत्रो दोनोको सुख होता है। उसीसे उसकी विशिष्टता भी घोषित की गई है—**काव्येषु नाटकं रम्यम्**।

सगीत, नर्तन, गायन और वादन तीनोके समाहारको कहते हैं। पर सगीतके साथ अभिनयका सबध कर नाटक अथवा दृश्य-काव्यने दर्शकोको मुग्ध कर लिया। इसकी सर्वग्राहिताको ही लक्ष्य कर भरत मुनिने नाट्य-शास्त्रमें कहा है कि ऐसा कोई ज्ञान नही, शिल्प, विद्या, कला नही, योग और कर्म नही जो नाटकमें न हो।

न तज्ज्ञान न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥१,११४॥

सस्कृतके नाटकोमे सबसे अधिक ज़ोर रसबोध और रसात्मकता पर दिया गया है। नाट्य नियमो-उपनियमोंसे वे पर्याप्त बँधे रहे

है। उनका दु:खान्त होना अनुचित माना गया है। जन-कल्याण उनका इष्ट है इससे सावधि दु:खमय यथार्थसे दूर हट वे देखनेवालोका कल्पित सुखी संसारमे साक्षात् कराते है। यथार्थ संभवत कष्टकर है जिसका यथास्थित रूप देखनेवालोंमें केवल अवसाद और मायूसी पैदा करेगा। इससे उस आदर्श 'यूटोपियन' संसारको ही रूपायित करना उन्हें इष्ट है जिसे देखकर मनको ढाढस बँधे। इसीसे शुद्ध ग्रीक नाटकोके रूपमें भारतीय नाटक-क्षेत्रमे 'ट्रैजेडी' भी नही है। हाँ, 'विप्रलभ-शृंगार' मे इतनी करुणा संचित हो जाती है कि स्वतन्त्र 'ट्रैजेडी' की सारी कमी एक साथ पूरी हो जाय। इससे शोकपर्यवसायी न होकर भी उनमे गहरी वेदनाकी अनुभूति रहती है। इस प्रकार 'कामेडी' या सुखपर्यवसायीका शुद्धरूप भी हमारे यहाँ नही मिलता। केवल अन्त निश्चय इस प्रकारके नाटकोंका कल्याणकर अथवा सुखद होता है। इससे उनमें युद्ध, रक्तपात, मृत्यु आदि रंगमंचपर नही दिखाये जाते। हास्य होता है पर घटिया किस्मका, अधिकतर भोजन सम्बन्धी हास्यकी स्थितियाँ उत्पन्न करके एक ही प्रकारका व्यक्ति—विदूषक जो सदा ब्राह्मण होता है—सारे नाटकोंमें समान रूपसे पेटूपन द्वारा दर्शकोको हँसानेका प्रयत्न करता है। संस्कृतका केवल एक नाटक—मृच्छकटिक—सही दृष्टिसे 'कामेडी' कहा जा सकता है। वैसे संस्कृत नाटकका परिहास असफल है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, नाटकका प्रत्येक अंग नियमो द्वारा बाँध दिया गया है जिनका उल्लंघन नही किया जा सकता। नायक, उपनायक, विदूषक, नायिका आदि सबका स्वरूप निश्चित होता है। कौन किस प्रकारकी भाषाका प्रयोग करेगा, किस वर्णका व्यक्ति कौन-सी 'भूमिका' कर सकता है—सब कुछ पहलेसे स्थिर किया जा चुका है। नारी, शूद्र, विदूषक आदि सदा प्राकृतका प्रयोग करते हैं। यह भी अधिकतर निश्चित होता है कि कौन किस प्राकृतका प्रयोग करे। उच्चकोटिकी ललनाएँ ललितपदीय महाराष्ट्री प्राकृत बोलती है। साधारणत: वे, बच्चे और

उच्चपदीय नौकर आदि शौरसेनी बोलते है। इसी प्रकार राजप्रासादके अनुचर अधिकतर मागधी, शठ-जुआरी आदि अवन्ती, गोप-आभीर अभीरी, मशालची पैशाची, और बर्बर, म्लेच्छ, नीच वर्णवाले अधिकतर अपभ्रंश बोलते है। राजा, पुरोहित, मन्त्री, उच्चपदस्थ राजपुरुष, परिव्राजक-परिव्राजिका सस्कृत बोलते है। आश्चर्य होता है कि जहाँ दुष्यन्त और राम सस्कृत बोलते है, शकुन्तला और सीता तक उनका उत्तर प्राकृतमे ही देती है! यह सही है कि प्राकृते भी एक रूपसे सस्कृत होकर अपना स्थायी 'स्टाइलाइज्ड' (शैलीगत) रूप धारण कर चुकी है, पर नि सन्देह है वे गाँवकी ही बोलियाँ, और पीछे चाहे ऐसा परम्परागत हो जानेसे भाव न रहा हो, कभी वे बोलनेवालेकी मर्यादाकी द्योतक भी रही होगी।

सस्कृत नाटककी कथावस्तुकी पाँच सधियाँ होती है—१ मुख (प्रवेशक), २ प्रतिमुख (उदय-विस्तार), ३ गर्भ (अन्तरग-विकास), ४ विमर्श (विराम), और ५ निर्वहण (अन्त)। प्रत्येक नाटक परिचयात्मक भूमिकाके साथ आरम्भ होता है। मगलात्मक 'नान्दी' श्लोकसे आरम्भ होकर नाटकका पहला 'डायलाग' सूत्रधार और नटी आदि पात्रोके बीच होता है। साथ ही उनमे नाट्यकार, नाटकके वस्तु आदिके प्रति भी सकेत होता है और उसी सवादमें नाटकका पात्र भी शामिल हो लेता है। दृश्य और अक फिर खुल पडते है। दृश्योका प्रकाशन पात्रोके 'प्रवेश', 'प्रस्थान' आदिसे होता है, अकोका तो नाटकमे ही स्पष्ट उल्लेख रहता है। अकके अन्त तक कभी रगमच खाली नही रहने पाता। अकके बीचमे स्थान-परिवर्तनका भी निर्देश साधारणत नही होता। नये अकके आरम्भके पहले परिचयात्मक रूपसे कोई डायलाग (सवाद) या किसी अकेले पात्रका वक्तव्य प्रस्तुत होता है। उसे 'विष्कम्भक' अथवा 'प्रवेशक' कहते है। उसमें बीचमे घटी घटनाओ और आगे घटनेवाली परिस्थितियोकी ओर सकेत होता है। अन्तमे मगल श्लोकके साथ सबके हितकी कामना करता नाटक समाप्त होता है।

सस्कृतमें नाटकका शास्त्रीय नाम 'रूपक' है, नाटक तो रूपकके ही एक भेदका नाम है। साधारणत उसके दो प्रधान भेद है, मुख्य (रूपक) और गौण (उपरूपक), और इनके शास्त्रकारके अनुसार भिन्न-भिन्न उप-भेद है। अपने 'साहित्यदर्पण' मे विश्वनाथने रूपकके दस और उपरूपकके अठारह भेद गिनाये है, जो इस प्रकार है—

रूपक—१–नाटक (जैसे कालिदासका अभिज्ञानशाकुन्तल), २–प्रकरण (भवभूतिका मालतीमाधव), ३–भाण (वत्सराजका कर्पूर-चरित), ४–व्यायोग (भासका मध्यमव्यायोग), ५–समवकार (वत्स-राजका समुद्रमथन), ६–डिम (वत्सराजका त्रिपुरदाह), ७–ईहामृग (वत्सराजका रुक्मिणीहरण), ८–अग अथवा उत्सृष्टिकाश (शर्मिष्ठा-ययाति), ९–वीथी (मालविका), और १०–प्रहसन (महेन्द्रविक्रम वर्मन्का मत्तविलास)।

उपरूपक—१–नाटिका (श्रीहर्षकी रत्नावली), २–त्रोटक (कालि-दासकी विक्रमोर्वशीय), ३–गोष्ठी (रैवतमदनिका), ४–सट्टक (राज-शेखरकी कर्पूरमजरी), ५–नाट्यरासक (विलासवती), ६–प्रस्थान (शृगारतिलक), ७–उल्लाप्य (देवीमहादेव), ८–काव्य (यादवोदय), ९–प्रेंखण (वालिवध), १०–रासक (मेनकाहित), ११–सपाक (माया-कापालिक), १२–श्रीगदित (क्रीडारसातल), १३–शिल्पक (कनकवती-माधव), १४–विलासिका (उदाहरण· अनुपलब्ध), १५–दुर्मल्लिका (विन्दुमती), १६–प्रकरणिका (उदाहरण अनुपलब्ध), १७–हल्लीश (केलिरैवतक), और १८–भणिका (कामदत्ता)। (जिन कृतियोंके रचयिताओंके नाम कोष्ठकोमे दिये हुए है वे प्रकाशित और उपलब्ध है, जिनके नाट्यकारके नाम नही दिये हुए है वे कृतियाँ आज उपलब्ध नही। जिन उपरूपकोंके उदाहरण नही दिये गये है उनके उदाहरण विश्वनाथने भी नही दिये।)

यहाँ इन भेदोकी सक्षिप्त व्याख्या कर देना उचित होगा। नाटकमे पाँचसे दस तक अक होते है और इसका कथा-प्रवन्ध (सविवानक) कोई इतिहास-प्रसिद्ध कथानक रहता है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इसमें पाँच सवियाँ होती हैं, जिनकी प्रधान कथाका उन्नयन सहायक कथाग करते हैं। इसका नायक धीरोदात्त विख्यात पराक्रमी राजर्पि होता है, कभी-कभी दिव्य भी। इसका प्रधान रस वीर या शृगारका होता है। दस अकोंके नाटकको 'महानाटक' कहते है, जैसे 'हनुमन्नाटक'। प्रकरणका कथानक लौकिक होता है। कल्पित नायकका प्रख्यात होना आवश्यक नही। अक सख्याका वन्धन नहीं है पर प्राय प्रकरणमे दस अक तक होते है। भाण एक ही अकमें धूर्त-चरित प्रस्तुत करता है। व्यायोगमें भी एक ही अक होता है। समवकारमें अक तीन होते हैं और उसका आमुख नाटकका-सा होता है। डिममे चार अक होते है और वह व्यायोगकी ही भाँति हास्य-शृङ्गार प्रवान होता है। ईहामृगमे भी चार अक होते हैं और उसका कथानक दिव्य-लौकिक मिश्रित होता है। अक एकाकी होना हैं। उसका स्थायी रस करुण है। वीथी भी भाणवत् एकाकी होता है। उसका प्रधान रस शृङ्गार है। प्रहसन भी हास्य प्रवान एकाकी है।

नाटिका स्त्रीपात्र वहुल चार अकोकी होती है। नायक धीर-ललित राजा होता है। त्रोटक पाँचसे नौ अको तकका होता है और उसके प्रत्येक अकमें विदूपकका प्रवेश होता है। गोष्ठी एकाकी होती है जिसमे नौ-दस पुरुप पात्र और पाँच-छः स्त्री पात्र रहते हैं। सट्टक केवल प्राकृत भापाका उपरूपक है। उसकी एक विशेषता यह भी है कि उसमे अकके स्थानमे 'जवनिका' होती है। जवनिका प्रमाणत अककी ही परिमाण है और इसमे प्रत्येक जवनिका (अक) के वाद पर्दा गिरता है। जवनिका (यवनिका) ग्रीक पर्देकी याद दिलाती हैं। नाट्यरासक उदात्त नायक और हास्य प्रधान एकाकी है। प्रस्थान नायक-नायिका दास-दासियो वाला दो अकोका उप-

रूपक है। उल्लाप्यमे एक या तीन अक होते है। इसमे एक दिव्य उदात्त नायक और चार नायिकाएँ रहती है। काव्य एक अकका हास्यप्रधान उप-रूपक है। इसमे स्त्री ही नायकका कार्य करती है। प्रेखण सूत्रधार रहित हीन नायक युक्त एकाकी है। रासक मूर्ख नायक युक्त एकाकी है। सलापक तीन-चार अकोका होता है। उसका नायक पाखण्डी होता है। श्रीगदित प्रसिद्ध सविधानक वाला एकाकी है। नायक उसका उदात्त होता है। शिल्पकका नायक ब्राह्मण होता है। अक उसमे चार होते है, रस शान्त और हास्य नही होते। विलासिका शृङ्गार प्रधान एकाकी है। इसमे नायिका नही होती, जिससे इसकी सज्ञा 'विनायिका' भी है। नायक इसका हीन होता है। दुर्मल्लिकाका नायक भी हीन होता है। इसमे अक चार होते हैं। प्रकरणिका या प्रकरणीका नायक सार्थवाह और नायिका भी सदृश कुलकी होती है। अक इसमे भी चार होते है। हल्लीश एकाकी उपरूपक है। इसमे सात-आठ या दस स्त्री पात्र होते है। भणिका भी एकाकी है। उनकी नायिका उदात्त होती है।

२

नाटयकार और उनके नाटक

सस्कृतके नाटयकारो और उनकी कृतियोकी समीक्षा तो यहाँ सभव नही पर उनमेसे प्रधानका सक्षिप्त परिचय दे देना शायद उपादेय होगा। यहाँ हम केवल तेरह-चौदह नाटककारो और उनकी रचनाओका उल्लेख करेंगे। वे है, अश्वघोष, भास, शूद्रक, कालिदास, विशाखदत्त, हर्ष, महेन्द्र-विक्रम, भवभूति, भट्टनारायण, मुरारि, राजशेखर, क्षेमीश्वर, दामोदरमिश्र और कृष्णमिश्र।

यदि भासका समय निश्चय पूर्वक पहली सदी ईसवीके बाद रखा

जा सके तो सस्कृतका पहला जाना हुआ नाटयकार वौद्ध महाकवि और दार्शनिक अश्वघोप था। वह अभी तक केवल दार्शनिक और काव्यकारके रूपमे जाना जाता था। पर कुछ साल हुए जव सर आरेल स्टाइनने मध्य-एशियामे तुर्फानकी रेतसे उसकी रचना 'सारिपुत्र प्रकरण' खोद निकाली तवसे उसकी ख्याति नाटयकारके रूपमे भी हुई। यह प्रकरण सारिपुत्र और मौद्गलायनके वौद्धधर्ममे दीक्षित होनेका प्रसग नौ अकोमे प्रस्तुत करता ह। अभाग्यवश इसके अन्तिम अश ही प्राप्त हो सके। यह ताडपत्रो पर लिखा है और साधारणत अन्य कृतियोके विपरीत इसपर रचयिताका नाम भी लिखा था जिसे लूडर्सने पढा। यह प्रकरण रचना-कौशलकी दृष्टिसे पर्याप्त प्रौढ है। अश्वघोपके काव्य 'वुद्धचरित,' 'सौन्दरनन्द' और गाथा-ग्रन्थ 'सूत्रालकार' प्रसिद्ध है।

अश्वघोप ब्राह्मण था जो वौद्ध हो गया था। उसकी माताका नाम सुवर्णाक्षी था। वह कुषाणराज कनिष्कका समकालीन था। कहते है कि कनिष्कने पाटलिपुत्र (पटना) पर धावा कर उसका वलपूर्वक हरण कर लिया और उसे कश्मीर-पुरुषपुर ले गया। कश्मीरमे पहली सदी ईसवीमे होनेवाली वौद्ध सगीतिमे उसने भी भाग लिया। उसका स्वर वडा मधुर था। काव्य और नाटक दोनो रूपमे वह सम्भवत कालिदासका प्रेरक था।

भास सस्कृतके प्रख्यात नाटककारोमे गिना जाता है। कालिदास सौमिल्ल और कविपुत्रके साथ उसे भी अपने मालविकाग्निमित्रमे 'प्रथित-यशस्' कहकर सराहा है। अलकारशास्त्रो और सुभाषितोमे भी वार-वार उसका उल्लेख हुआ है पर अभी हाल तक उसकी कोई रचना उपलब्ध न थी। एकाएक सन् १९१२ ई० मे महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीके हाथ तेरह नाटकोका सग्रह लगा जिसे उन्होने भासके नामसे प्रकाशित किया। वस भास सस्कृत साहित्यके जिज्ञासुओके लिए उलझी समस्या वन गया। कारण कि कुछ विद्वानोने तो उन नाटकोको सर्वथा भासका मान लिया,

कुछने उन्हे उसका माननेसे सर्वथा इनकार कर दिया। कुछ ऐसे भी है जो उन्हे भासका ही मानते है पर सम्पादित और सरक्षित रूपमे। जो भी हो, दो बातें उस सम्बन्धमे सही जान पडती है—एक तो यह कि उनका रचयिता एक ही जन है, दूसरी यह कि वे नाटक कालिदासके नाटकोंसे प्राचीन है।

भासके नाटक सुललित वैदर्भी शैलीमें लिखे हुए है और सरल होते हुए भी उनमें अद्भुत गति और शक्ति है। उनकी नाटकीयता इतना साहित्यिक टेकनीककी परवाह नही करती। इन तेरहोंके नाम ये हैं—१–प्रतिमा, २–अभिषेक, ३–मध्यम-व्यायोग, ४–दूत-घटोत्कच, ५–कर्ण-भार, ६–ऊरुभग, ७–दूतवाक्य, ८–पचरात्र, ९–बालचरित, १०–स्वप्न-वासवदत्ता, ११–प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १२–चारुदत्त, १३–अविमारक।

इन नाटकोकी कथावस्तु रामायण, महाभारत, हरिवश और पुराणो तथा गुणाढ्यकी बृहत्कथासे ली गई है। इस प्रकार ये तीन वर्गके है। पहले दो रामायण-वर्गके है, अगले सात महाभारत, हरिवश और पुराण-वर्गके और शेष चार बृहत्कथा-वर्गके। उनकी सक्षिप्त कथा इस प्रकार है—प्रतिमा सात अकोमे लिखा नाटक है। उसका कथानक दशरथकी मृत्युमे शुरू होकर रामके वनसे लौटने पर समाप्त होती है। अभिषेक भी ६ अकोका नाटक ही है जिसका विषय रामका राज्याभिषेक है।

मध्यम-व्यायोग एकांकी व्यायोग है जो चरित्र-चित्रणके लिए पर्याप्त सराहा गया है। उसमे मध्य पाण्डव (भीम) के प्रति हिडिम्बाका प्रेम निरू-पित हुआ है। दूत-घटोत्कच भी एकाकी व्यायोग ही है। उसमे अभिमन्यु-वधके बाद घटोत्कच दूत बनकर कौरवोको बताता है कि अर्जुन उनके दण्डके लिए उद्यत है। व्यायोग कर्णभारमे इन्द्र द्वारा कर्णके कवच और कुण्डल चुरानेकी घटना है। ऊरुभग एकाकी अग है जिसमें भीम और दुर्योधनका गदायुद्ध और दुर्योधनकी जाँघका तोडा जाना अकित है। दूत-

वाक्य भी व्यायोग है। उसमे कृष्ण पाण्डवोका दूत बनकर दुर्योधनके पास जाते है। वह उन्हे भूमि देनेसे इनकार करता और कृष्णको वन्दी करने-का असफल प्रयत्न करता है। पञ्चरात्र तीन अंकोका समवकार है। उसमे द्रोणाचार्य दुर्योधनका यज्ञ कराते और दक्षिणामे पाडवोके लिए आधा राज्य माँगते है। दुर्योधन देनेके लिए इस शर्त पर राजी होता है कि अज्ञातवासी पाण्डव पाँच रातोके भीतर प्रकट हो जायँ। बालचरितमे कंस-को मारने तककी कृष्णके बालपनकी अनेक कथाएँ है। यह पाँच अंकोमे प्रस्तुत नाटक है और इसकी कथाएँ हरिवंश तथा पुराणोसे ली गई है।

स्वप्नवासवदत्ता ६ अंकोमें समाप्त नाटक है। कथा उसकी ऐति-हासिक है और गुणाढ्यकी वृहत्कथासे ली गई है। कौशाम्बीके वत्सराज उदयनका विवाह उसका मंत्री यौगन्धरायण राजनीतिक अर्थसाधनके लिए मगधराज दर्शककी भगिनी पद्मावतीसे कराता है। इस अर्थ वह झूठ प्रकाशित कर देता है कि उदयनकी पहली पत्नी वासवदत्ता आगमे जल-कर मर गई है। वस्तुत वह छिपे वेशमे उसे पद्मावतीके पास ही रख देता है। नाटकीयता और चरित्रचित्रणकी दृष्टिसे स्वप्नवासवदत्ता सुन्दर कृति है और भासकी रचनाओमें सर्वश्रेष्ठ। प्रतिज्ञायौगन्धरायण भी नाटक ही है। उसकी कथा स्वप्नवासवदत्ताकी कथासे पहले की है। उसमे उदयन कृत्रिम गजके धोखेसे पकडकर उज्जैनी ले जाया जाता है पर यौगन्धरायणकी बुद्धिसे अवन्तीके राजा चण्डप्रद्योत महासेनकी कन्या वासव-दत्ताको लेकर वत्स भाग आता है। यौगन्धरायण द्वारा उदयनकी मातासे की हुई राजाको बन्धमुक्त कराने वाली प्रतिज्ञा पूरी होती है। हाथीपर उदयन और वासवदत्ताका भागना शुगकाल (दूसरी सदी ईसवी पूर्व) के मिट्टीके एक ठीकरेपर अंकित है, जो कौशाम्बीमे मिला है। चारुदत्त चार अंकोमें प्राप्त असमाप्त प्रकरण है जिसमें ब्राह्मण चारुदत्त और वारांगना वसन्तसेनाका प्रेम निरूपित है। शूद्रकका मृच्छकटिक इसी

प्रकरणपर आधारित है। अविमारक ६ अंकोका नाटक है। उसमे राजकुमारी कुरगी और राजकुमार विष्णुसेण (अविमारक) का प्रेम और सयोग अकित है। पिछली चारो कृतियोकी कथाएँ कथासरित्सागरमे मिलती है।

भास कौन था, कहाँका रहने वाला था, कव हुआ—यह निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता। वैदर्भी शैली प्रयोग करनेके कारण उसे कुछ लोगोने मालवा, कुछने दक्षिणका रहने वाला माना है। साधारणत उसे कालिदासका पूर्ववर्ती तीसरी सदी ईसवीका माना जाता है, पर वह और पूर्वका भी हो सकता है।

शूद्रकका काल निश्चित करना और भी कठिन है यद्यपि उसका उल्लेख सस्कृत साहित्यमे अनेक स्थलोपर हुआ है। साधारणत उसे प्रसिद्ध प्रकरण मृच्छकटिकका रचयिता मानते हैं। कुछ लोगोने काव्यादर्शमे उद्धृत एक श्लोकके आधारपर दण्डीको ही इस प्रकरणका नाटककार माना है। पर वह श्लोक चूँकि अव हालके मिले भासकी कृतियाँ चारुदत्त और वालचरितमे भी है, स्पष्ट है कि उसका कर्ता कोई और है। मृच्छकटिकका कथानक वही है जो चारुदत्तका है। कालिदासने भास आदिका नाम तो लिया है पर शूद्रकका नही यद्यपि यह आवश्यक नही था कि वे सवका ही नाम लें। पर उनके इस मौनने निश्चय शूद्रकके समयके सवधमें सन्देह वढा दिया है। ठीक कहा नही जा सकता कि शूद्रक कालिदासके पहलेका था या पीछेका। यदि पहिलेका हो तो उससे थोडा ही पहलेका होना चाहिए क्योकि उसकी कृति भासकी कृतिपर आधारित है। मृच्छकटिकके आरम्भमें उसे राजा और अनेक शास्त्रोका पण्डित कहा गया है। उसने अश्वमेध किया और एकसौ दस वर्षकी आयुमे पुत्रको राज सौंप चितारोहण किया। उसका नाम कादम्वरी, राजतरगिणी, कथासरित्सागर और स्कन्द पुराणमे भी मिलता है। कुछ हस्तलिपियोमें उसे शालिवाहनका मन्त्री कहा गया है जिसने उसे पीछे

प्रतिष्ठानका राजा बना दिया। स्टेन कोनो उसे आभीरराज शिवदत्त मानते है। डा० फ्लीटकी रायमे उसीके पुत्र ईश्वरसेनने आन्ध्रोको हरा कर २४८–४९ ई० का चेदि सवत् चलाया। प्रकरण दस अकोमे अद्भुत सफलताके साथ चारुदत्त और वसन्तसेनाका प्रेम प्रकाशित करता है। इस प्रकरणने अनेक नाट्यशास्त्रीय अनुबन्धोको तोड़ दिया है। यह हास्यरस प्रधान है और उस दृष्टिसे भारतीय नाटकोमे ग्रीक 'कामेडी'के निकटतम है। इनमे समकालीन समाजका अच्छा रूपायन हुआ है।

कालिदासका समय पाँचवी सदी ईसवी है। उस महाकविकी रचनाओ-का सविस्तर उल्लेख पृथक् करेंगे। इससे उसके परवर्ती नाटकोकी चर्चा यहाँ समीचीन होगी। उसके बादके नाटककारोमें प्रधान है विशाखदत्त, हर्ष, महेन्द्रविक्रम, भवभूति, कृष्ण मिश्र। पहले विशाखदत्त।

विशाखदत्तका काल कुछ लोगोने उसकी रचना 'मुद्राराक्षस' मे उल्लिखित चन्द्रग्रहण (१,६) के आधारपर दिसम्बर २,८६ ई० माना है, जब वह ग्रहण लगा था। परन्तु पाटलिपुत्रके वर्णन, बौद्धोके प्रति निर्देश और नान्दी श्लोक, प्रयुक्त श्लेप (पृथ्वीकी वराह द्वारा रक्षा—उदयगिरिकी गुफामे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके अभिलेखके साथ ही पृथ्वीकी रक्षा करते वराहकी मूर्ति उत्कीर्ण है—चन्द्रगुप्त भी कहीसे मालवाका उद्धार कर वहाँ गया था) आदिसे वह चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यके वादका निकटवर्ती ही जान पडता है। नाटककी भूमिकामें उसे वटेश्वरदत्तका पौत्र और महाराज पृथुका पुत्र कहा गया है। कुछ आश्चर्य नही जो वह चन्द्रगुप्तका कोई सामन्त राजा रहा हो। जो भी हो, प्रस्तुत सामग्रीसे उसका समय निश्चित रूपसे नही स्थापित किया जा सकता। उसका मुद्रा-राक्षस सात अकोमें समाप्त नाटक है। कथावस्तु उसकी राजनीतिक है। स्पष्ट है कि नाटककार कूटनीतिका आचार्य था। इस प्रकारकी रचनाओमे मुद्राराक्षस ससारके साहित्यमे वेजोड है। उसकी घटनाओका पहलेसे

अटकल नही लगाया जा सकता। षड्यत्र और कूटनीति जैसे कृतिकारकी उँगलियोपर नाचते है। षड्यत्रके दाँव-पेच नन्दोके मन्त्री राक्षस और चन्द्रगुप्त मौर्यके मत्री और अर्थशास्त्रके रचयिता चाणक्यके वीच चलते है। अन्तमे नन्दोका विध्वंस कर चाणक्य राक्षसको चन्द्रगुप्तके प्रति अनुरक्त कर लेता है। कालिदास और भवभूतिकी शैली और शालीनता तो विशाखदत्तमे नही है पर उसीकी मेधा थी जिसने सस्कृतको इतना अद्भुत राजनीतिक नाटक प्रदान किया।

हर्ष (६०६ ई०–६४७ ई०) थानेश्वर और कन्नौजका राजा था। नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका उसीकी कृतियाँ मानी जाती है। वाणभट्टने उसका 'हर्षचरित' नामसे चरित लिखा है। कुछ लोगोका तो विश्वास है कि हर्ष नामसे प्रसिद्ध नाटकोका रचयिता भी वाण ही है। पर वाणकी रचनाओ—हर्षचरित और कादम्वरी—और इनकी शैलीमे असाधारण विरोध है। रचनाएँ हर्षकी ही है। हर्ष समुद्रगुप्त और भोजके-से विद्याव्यसनी राजाओके वर्गका था। वह वौद्ध था और पाँच अङ्कोमे समाप्त उसका नाटक नागानन्द विद्याधरोके राजा जीमूतवाहनका सर्पके स्थानपर गरुडके प्रति आत्मवलिदान निरूपित करता है। रत्नावली चार अङ्ककी नाटिका है जिसमें वत्सराज उदयन और सिंहलकी राजदुहिता रत्नावलीका प्रेम रूपायित है। प्रियदर्शिका भी चार अङ्कोकी नाटिका ही है। उसका कथानक भी उदयनसे सम्बन्ध रखता है। उसमे राजा दृढवर्मन्‌की कन्या प्रियदर्शिका और उदयनका प्रेम सम्वन्ध निरूपित हुआ है। रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनोपर कालिदासके मालविकाग्निमित्रका प्रभाव स्पष्ट लक्षित है।

सातवी सदीके पहले चरणमे महेन्द्रविक्रम वर्माने अपना प्रसिद्ध प्रहसन 'मत्तविलास' लिखा। वह काची नरेश सिंहविष्णुवर्माका पुत्र और स्वय पल्लव नृपति था। 'मत्तविलास' उसका विरुद भी था। उसका प्रहसन प्रहसनोमे सवसे प्राचीन है। उसके कुछ पात्र सस्कृत भी वोलते है

और उसमे कापालिक, पाशुपत, बौद्ध भिक्षुओ आदिकी अच्छी हँसी उडाई गई है।

भवभूतिका नाम सस्कृत साहित्यमे बडे आदरसे लिया जाता है। नाटकके क्षेत्रमें उसका स्थान कालिदासके बाद ही है। कुछ लोगोने तो भावों और वर्णनकी शालीनतामे उसे कालिदाससे भी बढकर माना है। कल्हणने अपनी राजतरगिणीमे उसे कन्नौजके राजा यशोवर्मन्का सभा-कवि माना है। यशोवर्मन् ७३६ ई० के लगभग हुआ। गौड़वहोके रचयिता वाक्पतिराज ने भी भवभूतिका उल्लेख किया है। मालतीमाधवके एक श्लोकसे लगता है कि अपने जीवनकालमे उसे आदर नही मिला और उसने अपने समकालीनोको चुनौती दी कि 'मेरा यह प्रयत्न तुम्हारे लिए नही, उन समानधर्मा मनीषियोके लिए है जो भविष्यमे जन्मेगे, क्योकि काल और पृथ्वीकी कोई सीमा नही। भवभूतिकी आशा फली और आनेवाले ससारने उसकी कृतियोको सराहा। उसकी भाषा और शैली बडी प्रौढ और शक्तिमती है, चरित्रचित्रण उसका अपूर्व है। करुणरसका विशेष उद्घाटयिता होता हुआ भी उसने वीर और अद्भुत रसोके प्रवाहमे अपने महान् पूर्ववर्तियोको नगण्य कर दिया। उसकी रीति गौडी है। सस्कृत साहित्यमे उसकी रचनाएँ अमर है।

उसकी तीन रचनाए हैं—महावीरचरित, उत्तररामचरित और मालतीमाधव। इनमेसे पहली दो सात-सात अकोके नाटक है और तीसरी रचना मालतीमाधव दस अकोका प्रकरण है। महावीरचरित सम्भवत. उसने सबसे पहले लिखा। इसका कथानक रामायणसे लिया गया है और रामका वीर चरित प्रस्तुत करता है। इसमे कविने अनेक नई भावनाओका सृजन किया है। उत्तररामचरित उसकी कृतियोंमें सर्वश्रेष्ठ है और सस्कृत साहित्यके अमर रत्नोमें गिना जाता है। इसमे रामके सीतात्याग और अन्तमे दोनोंके मिलनकी कथा बडे करुण और शालीन रीतिसे रूपायित

हुई है। मालतीमाधव भवभूतिकी सबसे पीछेकी रचना है। उसमें मालती और माधवकी प्रेम-कथा है।

भट्टनारायण सम्भवत आठवी सदी ईसवीका है। उसका ६ अकोका नाटक 'वेणीसहार' महाभारतकी कथापर आश्रित है। भीम उसमे दु शासनको मारकर द्रोपदीकी वेणी बाँधता है। निरूपण और नाट्य टेकनीकसे पिछले नाट्यकारोमे भट्टनारायण अद्वितीय है। वीररस प्रकट करनेमे वह विशेष समर्थ है। उसकी कृतिके पहले तीन अकोमे बडी गतिशीलता है, उत्साह उनका प्रधान भाव है।

मुरारिने अपने सात अकोंके नाटक अनर्घराघवमे रामकी उत्तरकथा फिर निरूपित की पर भवभूतिकी ऊँचाइयाँ औरोकी ही भाँति उससे भी परे रह गईं। वह नवी सदीके आरम्भमे हुआ।

राजशेखर कन्नौजके राजा महेन्द्रपाल (८९३–९०७ ई०) का गुरु और सभाश्रयी था। उसकी 'काव्यमीमासा' आज भी आलोचना शास्त्रकी 'टेक्स्ट-बुक' बनी हुई है। उसने दो नाटक 'बालरामायण' और 'बालभारत' लिखे, एक सट्टक कर्पूरमजरी और एक नाटिका विद्धशालभजिका। इनमे पहला दस अकोमे प्रस्तुत रामकथा है। दूसरा, जिसके केवल दो अक आज उपलब्ध है, असमाप्त है। कर्पूरमजरी चार अकोमे प्राकृतमे लिखी है। विद्धशालभजिका भी चार अकोमे है। राजशेखरकी शैली बोझिल और कृत्रिम है।

क्षेमीश्वर दसवी सदीके आरम्भमें हुआ। उसने कन्नौजके राजा महीपालके लिए पाँच अकोमे अपना चडकौशिक नामका नाटक लिखा। कथानक सत्य-हरिश्चन्द्र और ऋषि विश्वामित्रकी प्रसिद्ध कथा है। नाटककारकी शैली कृत्रिम है।

दामोदरमिश्रने अपना हनुमन्नाटक (महानाटक) ग्यारहवी सदीमे लिखा। उस नाटकके तीन पाठ मिलते है। एकमे नौ, दूसरेमे दस और

५

तीसरेमे चौदह अंक हैं । कथानक, जैसा नामसे प्रकट है, रामायणसे लिया हुआ है । कवि छन्दकारितामे कुशल है ।

कृष्णमिश्र चौदहवी सदीमे हुआ । उसका प्रबोधचन्द्रोदय छ अंकोमे प्रस्तुत नाटक है । सम्भवत यही एक नाटक संस्कृत साहित्यमे है जिसमे शान्तरसका निर्वाह हुआ है । यह लाक्षणिक रूपक है और इसके पात्र विवेक, मनस्, बुद्धि आदि हैं । शैली इसकी सरल है ।

नाटकोकी यह तालिका प्रमाणत यही समाप्त नही होती । पिछले युगमे भी सस्कृतमें नाटक लिखे जाते रहे जो आज भी हमें उपलब्ध है, पर कुछ तो स्थानाभावसे कुछ उनकी सामान्यताके कारण हम यहाँ उनको उद्‍वृत नही कर रहे है । प्रधान नाटक वही हैं जो ऊपर दिये गये है ।

४

कालिदास

कालिदास सस्कृत साहित्यकी श्री और शालीनता है । उसका यश स्वदेशकी सीमाओको लाँघकर विश्वव्यापी हुआ । वह महाकवि केवल भारतका नही संसारका है । उसकी भारती पिछले डेढ हज़ार वर्षोंसे साधारण पाठको, रसिको और आलोचकोको समान रूपसे आह्लादित करती रही है । जैसे उसका काव्य बेजोड़ है वैसे ही उसके नाटक भी अनुपम है । उसकी रचनाएँ अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र (नाटक), और रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत और ऋतुसंहार (काव्य) है । कुछ लोग काव्यो और नाटकोको दो कालिदासोकी कृतियाँ मानते है, पर नि सन्देह ये काव्य और नाटक दोनो ही एक ही हाथके सँवारे है ।

कालिदास कहाँ हुए, कब हुए, सभी सन्दिग्ध हैं । इसकी महानता और लोकप्रियताका परिणाम यह हुआ कि अनेक पिछले कालके सस्कृत कवियोने भी 'कालिदास' नाम ग्रहण कर लिये जिसमे यह कठिनाई और बढ गई है । छ छ कालिदासोके नाम मिलते हैं । परन्तु कठिनाई चाहे जितनी हो एक बात प्रमाणित होते देर नही लगती, वह यह कि, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, चारो काव्यो और तीनो नाटकोके कर्ता एक ही कालिदास हैं । यह कौन है, कब हुआ, इसकी चर्चा उसकी कृतियोपर विचार करनेसे पूर्व करेगे । पहले कालिदासका जन्मस्थान ।

इस महाकविकी लोकप्रियताके कारण विविध प्रान्तवासियोने उसे विभिन्न प्रान्तोका रहनेवाला बताया है । बगाल, मालवा और कश्मीर तीनोको महाकविका जन्मस्थान बनानेका प्रयत्न किया गया है । इसमे बगालका दावा तो नि सन्देह अकारण है, पर मालवा और कश्मीर दोनोके प्रति कालिदासने नि सन्देह विशेष आत्मीयता दिखाई है । मेघदूतमे मेघको उत्तर भेजते हुए भी उसने बरबस राह मोड उज्जैनीकी ओर भेज दिया है और महाकाल तथा नगरका विमुग्ध वर्णन किया है । मेघदूतका प्रवासी यक्ष रहता भी कही उधर ही है, यद्यपि प्रकृत निवासी वह कश्मीरका है । परन्तु कश्मीरके प्रति कविकी आत्मीयता मालवासे कही अधिक है । कुमार-सम्भवकी सारी कथा और मेघदूतका उत्तर भाग हिमालयसे सम्बन्ध रखते है । विक्रमोर्वशीयके चौथे और अभिज्ञान शाकुन्तलके सातवे अंककी भूमि हिमालयमे ही है । इसी प्रकार रघुवशके पहले, दूसरे और चौथे सर्गोके अनेकाश हिमालयसे ही सम्बन्वित है । उस पर्वतका वर्णन करते कालिदास थकते नही । अधिक सम्भव यही है कि कालिदास कश्मीरमें जन्मे थे और किसी कारण उनको अपनी मातृभूमि छोड़नी पडी थी । फिर वह लौट पाये या नही, कहना कठिन है, यद्यपि मेघदूतके कुछ प्रक्षिप्त श्लोको द्वारा उनके स्वदेश लौटनेकी ओर सकेत किया गया है, पर वस्तुत उनके पिछले दिनो-

मे उनकी ख्याति इतनी हुई होगी कि अपने और अन्य प्रान्तोकी सीमाएँ टूट गई होगी ।

यदि हम कालिदासको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका समकालीन और उसकी सभाके रत्नोमेसे एक मानें तब मालवामे कविके रहनेवाला प्रश्न सदिग्ध नही रह जाता । चन्द्रगुप्त द्वितीयकी दूसरी राजधानी, मालवा और सौराष्ट्र गुजरातसे शकोको निकाल देनेसे, उज्जैनी हो गई थी । फिर तो उज्जैनीमे कालिदासका चन्द्रगुप्तकी सभामे रहना स्वाभाविक हो जाता है । लगता है कि इस प्रकार महाकविके दो प्रिय स्थान थे—जन्मसे कश्मीर और विशेप निवाससे मालवा ।

कालिदास आरम्भमे मूर्ख थे और पत्नीके सम्मुख हास्यास्पद होकर अन्यत्र चले गये, फिर कालीके वरदानसे व्युत्पन्न होकर लौटे और काव्यो और नाटकोकी रचना की—इस प्रकारकी दन्तकथाएँ और जनश्रुतियाँ विशेप महत्त्व नही रखती । उनपर विचार करना भी अनावश्यक है ।

अब कालिदासका काल । इस विपयपर मैंने अपनी पुस्तक 'इण्डिया इन कालिदास', परिशिष्ट ए मे विशेप विस्तारसे विचार किया है । यहाँ हम केवल संक्षेपमे महाकविकी सम्भावित तिथिके प्रमाण प्रस्तुत करेंगे । हम केवल उन प्रमाणोको लेते हैं जिनका, एकाधको छोड, कभी उपयोग नही किया गया है । ये कालिदासकी चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य और कुमारगुप्तके साथ समकालीनता स्थापित कर लेते है । नीचेके दो पहले प्रमाण औरोंने भी प्रयुक्त किये है ।

गुप्त सम्राटोंके अभिलेखो और कालिदासकी भापामे अमित समानता है । कई बार तो दोनोमें समान पद तक व्यवहृत हुए है । कुछ विद्वानोने इस दिशामें पर्याप्त परिश्रम करके एकता प्रतिष्ठित कर दी है । डा० एफ० डब्ल्यू० टामसने उन अनन्त पदोकी ओर सकेत किया है जो गुप् धातुसे बनते है । सभवत गुप्तोकी सरक्षताके कारण ये शब्द कविको विशेप

प्रिय हो गये। गुप्तकालीन सामाजिक, धार्मिक, रसात्मक, कलात्मक स्थितिका कवि द्वारा वर्णित दशासे अद्भुत साम्य है। सिक्कोकी भाषा सम्बन्धी एक समानता इस प्रकार है। गुप्तोंके सिक्कोके पद—**समरशत-विततविजयो जितरिपुर् अजितो दिवं जयति, राजाधिराज. पृथिवी वि-जित्वा दिव जयत्याहृतवाजिमेधः, क्षितिमवजित्य चुरितैर्दिवं जयति विक्रमादित्य**—कविके '**पुरा सप्तद्वीपं जयति वसुधामप्रतिरथ.**' से कितना मिलते हैं ? गुप्तोंके सिक्कोपर बने मयूराश्रयी कार्तिकेय सभवत उनके कुलदेवता थे। कालिदासने कुमार और स्कन्दका बार-बार उल्लेख किया है और लगता है, कविने सिक्कोकी मूर्तिको ही अपने पद '**मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन**' मे उतार दिया है।

कविके ग्रन्थोका जीवन अत्यन्त शान्त और समृद्ध है। वह समृद्धि कला और साहित्यके तद्वत् व्यसन, जनताकी सामाजिक और आर्थिक सम्पन्नता उदारशासित राज्यमे ही सम्भव हो सकते थे। गुप्तोका शासन प्राय उसी ओर सकेत करता है।

गुप्त अभिलेखो और चीनी यात्री फाह्यानके भ्रमण-वृत्तान्तमे प्रमाणित गुप्त सम्राटोकी धार्मिक सहिष्णुता कालिदासके ग्रन्थोकी भी प्राण-वायु है। जिन पौराणिक आख्यानो और विश्वासोका कालिदासने इतना उपयोग किया है उनका अभिग्रथन गुप्तकालमे ही हुआ था। हिन्दू प्रतिमाओकी प्रचुरता कालिदासके ग्रन्थो और गुप्तकालकी समान विशेषता है। गुप्त युगमे (कुषाण) यक्षो और बुद्धकी प्रतिमाएँ अनन्त है। कालिदासके ग्रन्थोमे यक्षोंके उल्लेख भरे पडे है।

कालिदास वात्स्यायनके बाद ही हुआ होगा क्योकि अपने शृङ्गारिक स्थलोपर प्राय आँख मीचकर वह वात्स्यायनके कामसूत्रोका उपयोग करता है। परम्पराके अनुसार कालिदासको किसी विक्रमादित्यका सम-कालीन होना चाहिए। तीसरी सदीके बाद और स्कन्दगुप्त (अन्य विक्रमा-

दित्य) के पहले हम केवल एक ही विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीयको जानते है, जो ४०० ई० के लगभगका है।

कालिदास 'जामित्र' (लग्न) अर्थात् ग्रीक शब्द **'दायामेत्रान्'** को जानते है। इस प्रकारके शब्दोका प्रचलन पहली सदी ईसवीमे हुआ था। इनकी देशमे जानकारी होनेके लिए कुछ समय लगा होगा।

हूणोको रघु (रघु० सर्ग ४) उनके ही देश वक्षुतीरवर्ती वाख्त्री (वह्लीक) मे पराजित करता है। वे वहाँ ४२५ ई० के लगभग बसे थे, जव ईरानी नृपति वहरामगौरसे हारनेपर उनके देश और फारसके वीचकी सीमा वक्षु नदी वना ली गई थी। मेहरौली स्तभलेखके अनुसार वह्लीककी चन्द्रगुप्त द्वितीयने सचमुच ही विजय की। रघुवंश सभवत ४२५ के शीघ्र ही वादमे लिखा गया। कविका शायद वह अन्तिम ग्रन्थ था।

यहाँ कुछ भास्कर्यके प्रमाण भी दिये जाते है—

कालिदासने शाकुन्तलमे भरतकी सटी उँगलियो (**जालग्रथितागुलिः कर**) का उल्लेख किया है। सटी उँगलियोवाली प्रतिमाओकी सख्या नितान्त न्यून है। जो है वे भी केवल गुप्तकालकी है। लखनऊ म्युज़ियमके गुप्तकालीन मातकुअर बुद्ध के दोनो हाथोकी उँगलियाँ 'जालग्रथित' है। इस प्रकरकी प्राय ९ और मूर्तियाँ मुझे लखनऊ सग्रहालयमे मिली, जो सभी गुप्तकालकी है। कला और साहित्यमे समान कालमे समान अभिप्राय (मोटिफ) ही प्रयुक्त होते रहे है।

कालिदासने गगा-यमुनाकी चमरवाहिनी मूर्तियोका उल्लेख किया है। कलामें इस प्रकारकी चमरधारिणी गगा-यमुना-मूर्तियोका आरम्भ पिछले कुषाण-काल (तीसरी सदी ईसवी) और गुप्तकालके आरम्भमे हुआ। मथुरा और लखनऊके सग्रहालयोमे उस कालकी ऐसी मूर्तियाँ है। समुद्र-गुप्तके व्याघ्रलाछित सिक्कोंके पीछे गगाकी मूर्ति उत्कीर्ण है।

प्राक्कुषाण—मूर्तियोका 'छत्र' पीछे प्रतिमाओके 'प्रभामडल'के रूपमे विकसित हुआ। कुषाण-कालमे वह सर्वथा सादा था, अनुत्कीर्ण। बाद, गुप्तकालमें इसकी भूमि अनेक रूपो और रश्मिवाणोकी रेखाओंसे भर दी गई। इस विशिष्ट 'मोटिफ' का उल्लेख विकासके अनुकूल ही केवल 'प्रभामण्डल'के स्थानपर कविने 'स्फुरत्प्रभामण्डल' शव्दसे किया है। निश्चय प्रभामण्डलमें अव अन्धकारमे कौंधनेवाली प्रकाशरश्मियोका स्फुरण होने लगा था।

कालिदासने कुमारसम्भवमे शिवकी समाधिका वर्णन किया है जो कुषाण-कालीन वीरासनासीन वुद्ध-प्रतिमाओंसे मिलता है। कुषाणकालीन ये प्रतिमाएँ कविके सामने थी।

इन प्रमाणोंसे सिद्ध हो जायगा कि कालिदास गुप्तकालीन थे। कवि के ग्रथोका प्रशान्त जीवन स्कन्दगुप्तके शासन और कुमारगुप्तके अन्तिम दिनोसे पहले ही समाप्त हो जाता है। तभी पुष्यमित्र और हूणोकी विपद् साकार हुई थी। इस प्रकार चूँकि पुष्यमित्रोंके साथ युद्ध ४५० ई० मे हुआ, कालिदासके जीवनकी निचली सीमा ४४९ ई० होगी।

परन्तु यदि कविने कुमार और स्कन्दगुप्त दोनोका प्रच्छन्न रूपसे उल्लेख किया है तव संभव है उसने स्कन्दगुप्तका जन्म देखा हो। कविने वहुत लिखा है और निश्चय उसका रचना-काल पर्याप्त लम्वा रहा होगा। यदि वह अस्सी वर्ष तक जिया तो, अगर हम उसकी मृत्यु ४४५ ई० के लगभग मानें तो, उसका जन्म ३६५ ई० के लगभग ठहरता है। सभव है उसका जन्म समुद्रगुप्तके शासनकालमे हुआ हो और उसने चन्द्रगुप्त द्वितीयका समूचा शासन-काल और कुमारगुप्तके शासनकालका अधिकतर भाग देखा हो। उसने उस दशामे स्कन्दगुप्तका जन्म भी देखा होगा क्योंकि पुष्यमित्रोको हराते समय ४५० ई०मे स्कन्द कमसे कम २० वर्ष-का अवश्य रहा होगा। यदि कविने अपना रचना-काल अपने पचीसवे वर्ष मे आरम्भ किया तव ऋतुसहारकी रचना ३९० ई०मे शुरू हो गई होगी।

और तव उसका सृजनात्मक काल उस पूरे युगका समानवर्ती रहा होगा जिसे भारतीय इतिहासका स्वर्ण-युग कहते हैं ।

कालिदास स्वय अपनी नाट्यशक्तिके कायल हैं जिससे उन्होने 'पुराणमित्येव न साधु सर्व" (मालवि० १, २) द्वारा पुराणपथियो पर गहरी चोट की है । जहाँ वाल्मीकिके प्रति उनकी अतीव श्रद्धा (रघु० १, ४) है वहाँ भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदिके लिए उनमे छिपी चुनौती (मालवि० पृ० २) भी है । भासके नाटक साफ-सुथरे और खेलने योग्य निश्चय हैं पर कालिदासकी चुनौती भी रिक्त नही क्योकि उनके नाटक भासके नाटकोसे कही सुन्दर उतरते हैं । उनकी यह चुनौती उन प्राश्निको (जजो) के प्रति भी है जिनका काम नये नाटकोका मूल्याकन करना था और जिनका उल्लेख मालविकाग्निमित्रमे हुआ है ।

सस्कारपूत सस्कृत वाणीके साथ नाटकोमे प्रयुक्त होनेवाली प्राकृतोकी भी कालिदासने 'सुखग्राह्यनिवन्ध' (कुमार० ७, ९०) कहकर सराहा है । प्रकट है कि कालिदासका रंगमच भरा पुरा था और नाट्यशाला (सगीत-शाला) मे भीड खासी रहती थी । नाटक विवाह, वसन्त आदिके अवसरो-पर खेले जाते थे । मालविकाग्निमित्र वसन्तोत्सवके समय पहले पहल खेला गया था । कालिदासने नाटककी अतीव सुन्दर व्याख्या की है जिसमे सिद्धान्तका सुन्दर निरूपण हुआ है—

> देवानामिदमामनन्ति मुनय शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
> रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा ।
> त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरित नानारस दृश्यते
> नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य वहुधाप्येकं समाराधकम् ॥ (मा० १, ४)

इस सवधमे हमें पूरी सामग्री तो नही मिलती परन्तु स्वय कालिदासने नाटकसवंवी कुछ निर्देश दिये है जिनमे उस दिशामे प्रकाश पडता है । 'प्रेक्षागृह' (मा० पृ० २१) सम्भवत दर्शकोकी भूमि (पिट) था, यद्यपि

तारानाथने इसके स्थानपर 'वर्णप्रेक्षा' पाठ मानकर इसका अर्थ अभिनेताओंके सुस्ताने या रगादि करनेका कमरा (ग्रीन-रूम) किया है।

रगमचकी व्यवस्थाका भी कालिदासके नाटकोंसे कुछ पता चलता है। 'नेपथ्यपरिगता'से पर्दाका सकेत मिलता है। तिरस्करिणी शब्दका व्यवहार पर्देके अर्थमे हुआ है। 'सहर्तुम्'से एकसे अधिक, और लपेटे जाने वाले, पर्दो का निर्देश स्पष्ट है। **'प्रविशति आसनस्थो राजा'** निर्देश तभी सार्थक होगा जब पर्देके पीछे राजा पहलेमे ही आ बैठता हो और पर्दा उठाने पर **'आसनस्थ'** दिखाया जा सके।

रगमचके योग्य विविध वस्त्रो का भी प्रवन्ध रहता था जो पात्रके अनुसार बदलते रहते थे। परिव्राजिका, अभिसारिका, आखेट, यवनी, मानिनी, विरहिणी, राजा, प्रतीहार आदि सभीके अपने अपने वेश थे और उनके लिए अपने अपने वस्त्र। ऐसे रगमचपर कालिदासके नाटक खेले गये।

वे नाटक थे अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र। अभिज्ञान शाकुन्तलकी देशी-विदेशी विद्वानो और रगमचके विशेषज्ञोने भूरि-भूरि प्रशसा की है। गेटे उस नाटकमे सर्वस्व पा गया था। काव्यकी उसमे अद्भुत छटा है, प्रकृतिसे अविकल साहचर्य। भाषाकी सादगी, भावोकी कोमलता, चित्रणकी अभिरामता, कारुण्यका अकन सभी अपनी पराकाष्ठापर है। सात अकोका नाटक है। कथानक महाभारतसे लिया गया है पर महाभारतका लम्पट नायक धर्मासनका कुशल अधिष्ठाता बन जाता है। इसमे दुष्यन्त और शकुन्तलाको प्रणय-वर्णन है। शकुन्तलाका अपनी साथिनो, लताद्रुमो, मृगादिकोंसे अद्भुत स्नेह है। नाटककी चार प्रकारकी हस्तलिपियाँ है—६ बँगला, देवनागरी, कश्मीरी और दाक्षिणत्य। बँगला वाली प्रतिमे औरोंसे २०—२५ श्लोक अधिक है।

विक्रमोर्वशीय पाँच अकोका त्रोटक है। मूल कथा ऋग्वेद (१०, ९५) मे है, वैसे महाभारतमे भी मिलती है। पुरुरवा और उर्वशीके प्रेम और

विरहकी इसमे कथा है। इसकी नियामक शक्ति प्रारब्ध है। प्लाट इसका खासा गँठा हुआ है। इसमे अपभ्रंश श्लोकोका भी उपयोग हुआ है जिससे उस अकको कुछ लोग प्रक्षिप्त मानते है। इसकी हस्तलिपियाँ दो प्रकारकी हैं, दाक्षिणात्य और उत्तरी।

मालविकाग्निमित्रमे न तो अभिज्ञानशाकुन्तलकी शालीनता है न विक्रमोर्वशीयकी घटनाओका-सा स्वाभाविक प्रवाह। परन्तु ऐतिहासिक होनेसे इसका बड़ा महत्त्व है। इसमे शुग सम्राट् पुष्यमित्रके पुत्र अग्निमित्र और विदर्भ-राजकुमारी मालविकाके प्रणयका वर्णन है। यह कालिदासका पहला नाटक है।

भास

महाकवि भास सस्कृतके उन महाकवियोमेसे है जिनकी सस्कृत साहित्यपर गहरी छाप पडी है। साहित्यमे वार-वार उस नाटककारका स्मरण हुआ है और वह स्मरण असाधारण आदरका द्योतक है। स्वय कालिदासने अपने मालविकाग्निमित्र मे उसे 'प्रथितयशस्' लिखकर सराहा है। पर नि सन्देह साहित्यमे उस ख्यातनामा भासका नाम मात्र उपलब्ध था या उसके नाटकोके कुछ श्लोक या स्थल यत्र तत्र उद्धृत मिल जाते थे, उसकी कोई समस्त रचना इस शताब्दीके पहले प्रकाशित नही हुई थी।

सन् १९१२ ई० मे महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीको अचानक भासके तेरह नाटक मिल गये जिनको उन्होने 'त्रिवेन्द्रम् सीरिज़' मे पहली वार प्रकाशित किया। इनकी वास्तविकता अथवा इनके भासके लिखे होनेमे विद्वानोने सन्देह किया, पर उस सम्बन्धकी चर्चा यथास्थान की जायगी। यहाँ पहले भासके प्रति साहित्यगत निर्देशका उल्लेख करेगे।

भास भी अनेक सस्कृत कवियोकी ही भाँति कुछ ऐसा नही छोड गये, या छोडा भी तो वह आज हमे उपलब्ध नही, जिससे हम उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध, जन्म, जीवन, काल, स्थान आदिके सम्बन्धमे जान सकते। परन्तु, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, उस कविके नामसे सस्कृत साहित्य न केवल परिचित था वरन् उसपर उसकी शालीनताकी गहरी छाप थी। अनेक वार अनेकधा महाकवियोने, अलकार-शास्त्रियो और सुभाषितोने, उसके नाम या रचनाओ और उनके स्थलोका उल्लेख किया है या उद्धरण दिये है। उसके प्रति निर्देश करनेवालोमें जाने हुए निम्नलिखित है—कालिदास, भामह, वाणभट्ट, दण्डी, वामन, वाक्पतिराज, अभिनवगुप्त, भोजदेव,

राजशेखर, शारदातनय, सर्वानन्द, सागरनन्दी, रामचन्द्र और गुणचन्द्र, कौमुदीमहोत्सव और शाकुन्तलव्याख्या।

इनमे-से कुछके स्थल यहाँ उद्धृत कर देना अनुचित न होगा—

प्रथितयशसा भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य—

—कालिदास, मालविकाग्निमित्र, अंक १।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणके 'अणेण मा भादा हदो, अणेण मम पिदा, अणेण मम मुदो' का काव्यालंकार, ४, ४०–४७ मे श्लोकबद्ध उद्धरण—

हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्र पिता मम।
मातुलो भागिनेयश्च रुषा संरब्धचेतस ॥४४॥

—भामह।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

—हर्षरचित।

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥

—दण्डी, काव्यादर्श, २, २२६ (बालचरित, चारुदत्तसे)।

'यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्'

—प्रतिज्ञा० से वामन, काव्यालंकार, ५, २।

यासा बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्व।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु
बीजाञ्जलि पतति कीटमुखावलीढ ॥
शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि।
कारापुष्पल्वेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥

—वही, ४, ३, (स्वप्नवासवदत्तामे)।

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
—सूक्तिमुक्तावलीमें उद्धृत राजशेखर ।

भासम्मि जलणमित्ते कन्ती देवे अजस्स रहुआरे ।
सोवन्धवे अवन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
—गउडवहो (वैदग्ध्यवर्णनम्) ।

"क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम्"
—अभिनवभारती, गायकवाड ओ० सी० ।

तत एव विक्रमोर्वशीयस्वप्नवासवदत्ता (त्ते) नाटकमिति व्यवहरन्ति ।
—वही ५, १७ ।

महाकविना भासेनापि स्वप्नप्रबन्ध उक्तः—

त्रेतायुगं तद्धि न मैथिली सा
रामस्य रागपदवी मृदु चास्य चेत ।
लब्ध्वा जनस्य यदि रावणमस्य कायं
प्रोत्कृत्य तन्न तिलशो न वितृप्तिगामी ॥
—वही पृ० ३२० ।

स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्था द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः । पद्मावतीरहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयने सुष्वाप । वासवदत्तां च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श । स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामावभाषे । स्वप्नशब्देन चेह स्वापो वः स्वप्नदर्शनं वा स्वप्नायितं वा विवक्षितम् ।
—भोजदेव, शृंगारप्रकाश ।

शौनकमिव बन्धुमती कुमारमविमारकं कुरङ्गीव ।
अर्हति कीर्तिमतीयं कान्तं कल्याणवर्माणम् ॥
—कौमुदीमहोत्सव, २, १५, ५, ९ ।

चारुदत्ते पुनः सूत्रधारस्यापि प्राकृतम्
—शाकुन्तलव्याख्या ।

भासके एक श्लोक—नव शराव—का उल्लेख कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें भी मिलता है, पर लगता है कि वह श्लोक दोनोंने अन्यत्रसे, किसी पूर्ववर्त्ती साहित्यसे लिया है। ऐसा न माननेसे एक दिक्कत यह हो जायगी कि भासको तब कौटिल्यसे भी पूर्व प्राय ईसा पूर्व चौथी शताब्दीमे रखना पडेगा जो अन्य कई विरोधी प्रमाणोंके कारण सम्भव नही। उसका समय अश्वघोषके पश्चात् और कालिदासके पूर्व प्रायः दूसरी-तीसरी सदी ईसवीमें होना चाहिए।

भासका नाम संस्कृत साहित्यके प्रेमियो और विद्वानोमे इतना जाना हुआ होनेके कारण उसकी कृतियोको पानेकी भूख सभीको थी और जैसे ही महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीने इन तेरह नाटकोकी सम्प्राप्तिकी सूचना दी, पण्डितोने झट उन्हें भासकी कृति मानकर स्वीकार कर लिया। पर जैसे ही प्रारम्भिक उत्साह कम हुआ और आलोचनाकी पैनी आँखोंसे नाटक देखे-विचारे जाने लगे वैसे ही शकाएँ बढी और झट विद्वानोंमे इस प्रसगपर परस्परविरोधी दो दल बन गये। एक दल उनका था जो सर्वथा इन कृतियोको भासकी रचनाएँ मानने लगे, जैसे गणपति शास्त्री, डाक्टर कोथ आदि, दूसरे उनका जिन्होने उन्हें भासकी रचना माननेमे आपत्ति की, जैसे सिल्वाँ लवी, विन्टर्नित्स, मोर्गेनस्तेर्ने, सुक्थकर आदि। एक तीसरा वर्ग ऐसे विद्वानोका भी निकल आया जिसने इन्हे भासकी रचनाएँ आंशिक रूपमें ही माना।

अभाग्यवश इन नाटकोंके प्रवेशकमें अथवा हस्तलिपिके ही किसी भागमें भासका नाम लिखा नही मिला जो विशेष अस्वीकृतिका कारण बन गया। इनको भासकी कृति माननेवालोने साधारणत. नीचे लिखा तर्क प्रस्तुत किया—

(१) इन सभी नाटकोका आरम्भ 'नान्द्यन्ते तत. प्रविशति' निर्देशसे होता है। इसके विरुद्ध पीछेके "क्लासिकल" नाटकोमे पहले 'नान्दी' श्लोक होता है फिर 'नान्द्यते' आदि निर्देश। कहते है कि भासकी इसी विशि-

ष्टताका उल्लेख—कि उसके नाटक सूत्रधारके प्रवेशसे आरम्भ होते हैं—वाणने अपने इम ग्लोकमें किया है—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरपि ॥

(२) भूमिका भागको सर्वत्र इनमें 'स्थापना' कहा गया है । 'क्लासिकल' नाटकोमे इमके विरुद्ध भूमिकाके लिए 'प्रस्तावना' शव्दका प्रयोग हुआ है ।

(३) क्लासिकल नाटकोंके विपरीत इनकी 'स्थापना' मे नाटक या नाटककारका नाम नही मिलता जिमसे यह विचार उठा कि शायद ये नाटक क्लासिकल नाटकोंसे पूर्वके हैं ।

(४) भरतवाक्यका मर्वत्र इसी आशीर्वचनसे अन्त होता है कि हमारे नृपति अखिल पृथ्वीपर शासन करें ।

(५) इन नाटकोमे परस्पर वस्तु-गठनमे समानता है और अनेक प्रारम्भिक ग्लोकोमे मुद्रालकारके अनुसार प्रधान पात्रोंके नाम गिना दिये गये है जो 'क्लासिकल' परिपाटीसे भिन्न शैली है । अधिकतर इनकी वर्णन-शैली भी समान है ।

(६) इनमेसे कमसे कम एक (स्वप्नवासवदत्ता) कृतिको राजशेखरने भासका माना है । इससे इस सग्रहकी रचनाएँ भी, जो शैली, रगानुशासन, भापा, भावादिमे परस्पर समान है, उमी कविकी होगी ।

(७) अनेक अलकारशास्त्रियोने अपने ग्रन्थोमें इन कृतियोंसे उद्धरण दिये हैं, जो इस सग्रहमें है । उदाहरणार्थ वामनने स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्वरायण और चारुदत्तसे उद्धरण दिये हैं, भामहने भी प्रतिकारार्थमे प्रतिज्ञायौगन्धरायणके स्थलको चुना है, दण्डीने वालचरित्र और चारुदत्तके 'लिम्पतीव' आदिक ग्लोकका उल्लेख किया है, इसी प्रकार अभिवनगुप्तने अपनी 'नाटयवेदवृत्ति' में स्वप्नवामवदत्ताका उल्लेख किया है,

यद्यपि अपने 'ध्वन्यालोकालोचन' मे उसने स्वप्नवासवदत्ताके जिस श्लोकका उल्लेख किया है वह प्रस्तुत सग्रहमें नही है। इन प्रमाणोके अतिरिक्त छन्दोका प्रयोग भी इनका, क्लासिकलके विपरीत, अपना है। अधिकतर इनमे वीर श्लोकका व्यवहार हुआ है। साथ ही पाणिनीय व्याकरणके अनुबन्धोकी अवमानना और प्राकृतोका इनका असाधारण व्यवहार भी इन्हें क्लासिकल नाटकोंसे पूर्वकी कृतियाँ सिद्ध करते है। डा० मैक्स लिन्देनोने इस दिशामे काफी प्रकाश डाला है। इनकी प्राचीनता घोषित करते हुए उन्होने भरतके 'नाट्यशास्त्र' के प्रति इनकी अवमाननाकी ओर भी सकेत किया है।

इन प्रमाणोंके विरुद्ध गणपति शास्त्रीके इस सग्रहकी कृतियोको भासकी रचना न माननेवाले वर्णन भी अपना पर्याप्त प्रबल तर्क प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है। उसका कहना है कि नाटकोमे नाम रचयिताका इस कारण नही दिया गया कि इनके लिखनेवाले साहित्यिक चोर थे जिससे जान-बूझकर उन्होने नाटककारके नाम नही दिये। सूत्रधार सम्बन्धी बाणके श्लोकके विषयमे उसका कहना है कि वह किसी विशेषताकी ओर सकेत नही करता और उस निर्दोष साधारण कथनसे यह विशेष अर्थ निकालना अनुचित है क्योकि क्लासिकल नाटकोको भी 'सूत्रधारकृतारम्भ' कहनेमे किसी प्रकारकी आपत्ति नही हो सकती। वस्तुतः यह रगानुशासन दाक्षिणात्य पाण्डुलिपियोकी विशेषता है न कि क्लासिकल नाटकोंसे पूर्वका होनेका प्रमाण।

राम पिशारोटीने पहले वर्गके प्रमाणोके विरुद्ध एक अत्यन्त मनोरजक स्थितिकी ओर सकेत किया। उन्होने बताया कि ये नाटक केरलके परम्प-रायिक अभिनेताओके सकलन है। इन अभिनेताओ (चक्यारो) की परम्परा यह है कि ये कभी समूचा नाटक नही खेलते, बल्कि कभी वे एक नाटकसे दृश्य चुन लेते है कभी दूसरेसे, और अपने प्रत्येक खेलके लिए उनका समान परिचय होता है। कुछ आश्चर्य नही कि इनको

प्रस्तावनाएँ वादमे लिखी गई और प्रधान दृश्य मूलवत् या घटा वढाकर आवश्यकताके अनुकूल कर लिये गये, जिससे समान रूपसे सम्पादित होने-के कारण उनमें शैली, भाषा, वस्तु-गठन, रग-निर्देश आदिकी परस्पर समानता वनी रही। अलकारशास्त्रियोके उद्धरण भी अनेक वार सर्वथा इन रचनाओमें या उनके प्रासगिक स्थलोंसे नही मिलते। फिर यह भी सम्भव है कि प्राकृतोकी शैली कालिक विकाससे इतना सम्वन्ध न रखती हो जितना स्थानीय विभिन्नतासे, जिस कारण वह क्लासिकल नाटकोकी प्राकृतोंसे भिन्न हो सकती है, कुछ पूर्वकालिक होनेसे नही। प्रोफेसर विन्टरनित्स इन कारणोंसे इन रचनाओको भासका नही मानते।

डा० कीयको भास सम्वन्धी यह दृष्टिकोण मान्य नही। वे इन नाटकोंको भासकी ही कृतियाँ मानते हैं। उनका कहना है कि इस प्रश्नका इतना महत्त्व नही कि वे कृतियाँ भासकी है या नही? उत्तर इस वातका चाहिए कि ये सारी रचनाएँ एक ही व्यक्तिकी है या नही? और इसका कि वह व्यक्ति मृच्छकटिक और कालिदासका पूर्ववर्ती है या नही? 'मृच्छकटिक' का इसलिए कि शूद्रककी यह कृति भासके 'चारुदत्त'का ही सम्भवत वृहत्तर संस्करण है। और ये दोनो ही प्रश्न प्राय अनुकूलार्थमें प्रतिपादित होते हैं। इन नाटकोको भासके माननेके विरोधी स्वय मोर्गेन्स्टेर्नेने यह स्वीकार किया है कि 'चारुदत्त' 'मृच्छकटिक' का पूर्ववर्ती है।

इसमें सन्देह नही कि स्वय कालिदासके वक्तव्य—**प्रथितयशसा भास-सौमिल्लकविपुत्रादीना**—के अतिरिक्त यूरोपीय पण्डितो—मैक्स लिन्देनो, नोवल आदि—के सस्करण समीक्षणोंसे यह प्रमाणित है कि भास सम्वन्धी इन कृतियोंके प्राकृत अश्वघोप और कालिदासके वीच कालकी है और कि 'चारुदत्त' निश्चय 'मृच्छकटिक' से पुराना है (नोवल)।

यह सही है कि कुछ उद्धरण गणपति शास्त्रीवाले सस्करणमे सर्वत नहीं मिलता पर आखिर पाठभेद भी तो होते हैं। स्वय कालिदासकी कृतियोमे परस्पर सस्करण भेदसे इतने पाठभेद हैं कि अनेक वार तो वर्षों उनपर

तर्क-वितर्क हुए है। रघुवशके 'वक्षुतीरविचेष्टनै.' वाले पाठमे तो इतना अन्तर पडा है कि पजाव और वाह्लीक (वाख्त्री, आमू तीरकी भूमि) एक हो गये हैं और यह दोप मल्लिनाथ के-से असाधारण समीक्षकसे वन पडा है। (देखिए मेरी 'इण्डिया इन कालिदास' पृ० २०–२२)। भास वस्तुत इतना लोकप्रिय था कि उसके सस्करणोकी सीमा न रही हो तो कुछ आश्चर्य नही। इसी कारण पाठभेद हुए होगे और अलकारशास्त्रियो और सुभापितादिकोके उद्धरणोकी असमानता इसी कारण है। इस वातको न भूलना चाहिए कि ऐसे श्लोक या स्थल जो गणपति शास्त्रीवाले सस्करण मे नही हैं वे भी भाषा शैली और ध्वनियोमे इस सस्करणकी भाषा आदिसे सर्वथा समान है।

इस स्वीकृतिके अनुकूल ही एक प्रमाण स्वय कालिदासके 'मालविकाग्निमित्र' में है जिसकी ओर विद्वानोका ध्यान नही गया है। उस नाटकमे (पृ० १७, कालेका सस्करण) 'प्राश्निक' शब्दका व्यवहार हुआ है। प्राश्निक रगके विशेषज्ञ थे और उनका काम था कि प्रारम्भिक खेलको देखकर राजासे उसकी स्तुति या निन्दामें अपना निर्णय दें। भरतने भी अपने नाट्यशास्त्रमें इन राज-विशेषज्ञो—प्राश्निको—का वर्णन किया है। कालिदासकी अपनी पहली नाट्यकृति—मालविकाग्निमित्र—के सम्बन्धमे शका निश्चय रही होगी जो उनके वक्तव्य—ख्यातिलब्ध भास, सौमिल्ल और कविपुत्रके प्रवन्धो (नाटको) को छोड (लाँघकर, निरादृतकर) नये नाटकको खेलना कहाँ तक उचित है ?—से स्पष्ट है। परन्तु उन प्राश्निकोने 'मालविकाग्निमित्र'को प्रमाणतः पास कर दिया। इसी प्रसगमे (प्राश्निकोके) भासका नाम लेना विशेष अर्थ रखता है। राजशेखरने 'स्वप्नवासवदत्ता' की विशेप प्रशसा की है। वह नाटक (नाटक, शब्दका प्रयोग साधारण अर्थमे कर रहा हूँ), लगता है, 'प्राश्निक'-पद्धतिसे 'पास' हो चुका था और इसीसे विशेपत राजशेखर (ल० ९०० ई०) आदिकी स्तुतिका विषय वना था, इसीसे सम्भवत कालिदासने उस

प्रसगमें भासका नाम लिया। अस्तु, उपलब्ध 'स्वप्नवासवदत्ता' को ही भासका प्रसिद्ध नाटक मानना चाहिए'। हाँ, उसकी सर्वथा मूल स्थितिमे सदियोंके व्यवहारने यदि पाठ भेदकर अन्तर कर डाला हो तो कुछ अजव नही, स्वाभाविक ही है।

यह भी जव तव कहा जाता है कि सम्भव है एक ही वडे नाटकके दोनो प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्ता, पूर्व और पर भाग हो। सही, प्रतिज्ञायौगन्धरायणमे स्वप्नवासवदत्ताके पहलेकी घटना दी हुई है (उसमे छद्मगजके धोखेसे वत्सराज उदयन अवन्तीनरेश प्रद्योतका वन्दी हो जाता है और मन्त्रिवर यौगन्धरायणके प्रणके अनुकूल प्रद्योत-कन्या वासवदत्ताको कौशाम्बी ले भागता है। स्वप्नवासवदत्तामें उसके वाद मगधराज दर्शककी भगिनी पद्मावतीसे उदयनके विवाहकी कथा है और वह विवाह वासवदत्ताके जल मरनेके भ्रममे सपन्न होता है), पर इसी कारण यह अनिवार्य तर्क नही हो सकता कि दोनो कृतियाँ एकके ही योग हो। उदयनकी कथा साहित्यमे इतनी प्रसिद्ध और लोकप्रिय थी कि उस प्रसगकी अनेक रचनाएँ जानी हुई है। आजके युगमे भी एक ही साहित्यकारने दो-दो वार उदयनपर लिखा है। स्वय इन पक्तियोंके लेखक-ने अनेक वार वत्सराजके प्रसगपर कहानी, निवन्ध आदि लिखे है। इससे यह माननेमे कोई दोष नही कि स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरायण दोनो स्वतन्त्र कृतियाँ है और दोनो ही महाकवि भासकी है।

भासके ये गणपति शास्त्रीवाले तेरह नाटक निम्नलिखित है—
१—स्वप्नवासवदत्ता, २—प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ३—अविमारक, ४—चारुदत्त, ५—प्रतिमा, ६—अभिषेक, ७—पचरात्र, ८—दूतवाक्य, ९—मध्यमव्यायोग, १०—दूतघटोत्कच, ११—कर्णभार, १२—ऊरुभग और १३—वालचरित्र।

इनमेंसे पहले चारकी कथाएँ सम्भवत. 'वृहत्कथा' से ली गई है, यद्यपि प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्ताकी कथा अत्यन्त लोकप्रिय रही होगी। चारुदत्तकी तो थी ही जिससे छोटे नाटकसे तृप्त न होकर पर-

वर्ती शूद्रकने उसीके आधारपर, उसीके नायक-नायिका पात्र-कथा लेकर मृच्छकटिकका बडा नाटक लिखा। ५ और ६ की कथा रामायणसे ली गई है। ७ से १२ की महाभारतसे और १३ की कृष्णचरित सम्बन्धी किसी पुराणसे।

स्पष्ट है कि सफल कलावन्त भासने रामायण, महाभारत, पुराण और लोकप्रचलित प्रसगोको और अधिक लोकप्रिय करनेके लिए उन्हे रगमच-पर उतार दिया। इनमे स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण और चारु-दत्त मुझे बहुत प्रिय है। अविमारक अलौकिक होनेके कारण इतना आकृष्ट नही करता। रामायण और महाभारतकी कथाए अधिकतर जानी हुई है।

बौद्ध-चीनी दन्तकथाएँ : ९ :

बौद्धो और चीनियो दोनोकी अपनी-अपनी गाथाएँ, अपने-अपने पुराण और अपनी-अपनी दन्तकथाएँ हैं। पौराणिक कथाओमें ज्यादातर ऐसी घटनाओका बयान होता है जिनमें ससारकी सृष्टि और स्वर्ग तथा उसके देवताओका जिक्र होता है। ऐसी कथाओमे अनेक बार देवता स्वर्गसे उतरकर आदमियोंसे मिलते-जुलते हैं और उनके दु:ख-सुखमे शरीक होते हैं। अनेक बार तो आदमी खुद इतना महान् हो जाता है कि स्वय देवता ही स्वर्गसे उतरकर उसके इर्द-गिर्द फिरने लगते हैं और अनुचरोकी तरह उनकी सेवा करने लगते हैं। गौतम बुद्ध इसी तरहके एक व्यक्ति थे जो आदमी होकर भी देवताओंसे बढ गये और बौद्ध कथाओमें स्वय देवता उनकी पूजा करने लग गये।

दन्तकथाओमे ऐसी घटनाएँ होती है जिनके बयानमे देवता और मनुष्य, राक्षस और पशु सभी मिल-जुलकर कहानी बनाते हैं। ये दन्तकथाएँ लोककथाओका रूप धारण कर लेती हैं और इन्सानका हिया फैलकर अपने भीतर जानवरो तकको समेट लेता है। अनेक चीनी कथाओमें इस प्रकार के जीवनका बयान आज भी सुरक्षित है।

पहले हम बौद्ध पौराणिक कथाओकी बात कहेंगे फिर चीनी दन्तकथाओकी। मामूली तौरपर हिन्दू और बौद्ध-पौराणिक कथाओमें कोई खास फर्क नही है। बौद्धोने हिन्दुओंके समूचे देवी-देवता अपना लिये, भेद बस इतना रहा कि जहाँ हिन्दुओंके देवता अपनी जगहपर खुदमुख्तार और महान् रहे वहाँ बौद्ध कथाओमे जाकर वे भगवान् बुद्धके परिचर और सेवक हो गये। उनकी पूजा करना ही और उनके महान् कार्योंके

सामने सिर झुकाना ही उनका काम हो गया। देवराज इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, यक्षराज कुबेर आदि सभी बुद्धके सेवक बने और सब जगह उनकी मूर्तियाँ बुद्धकी सेवा करती हुई बनाई गईं।

बुद्धके जीवनसे सम्बन्ध रखने वाली अनेक घटनाओंका कुछ ऐसा चमत्कारी और जादूभरा बयान मिलता है कि घटनाएँ अलौकिक बन जाती हैं। बुद्धकी जन्मभूमि कपिलवस्तुके बसनेके पहले कपिल मुनिका आसमानमें जाकर घड़ेके जलसे नगरकी सीमा बनाना, शाक्योंकी उस राजधानीके सम्बन्धमें एक पुराण ही है जिसका ज़िक्र आजसे दो हज़ार साल पहले महाकवि अश्वघोषने अपने 'बुद्धचरित' में किया। इसी प्रकार बौद्ध कथाओंमें लिखा है कि गौतमकी माताने उनके जन्मसे पहले सपना देखा कि एक सफेद हाथी उनकी कोखमें प्रवेश कर रहा है। इस कहानीको इतना महत्त्व दिया गया है कि बौद्धोंकी कलामें अनेक जगह सोई हुई रानीके शरीरमें प्रवेश करते सफेद हाथीकी मूर्ति बनाई गई है। लुम्बिनीके जंगलमें शाल पेड़की डाली पकड़े खड़ी मायाकी कमरसे गौतमका पैदा होना, पैदा होते ही उनका सात कदम चलना और कदम-कदम पर कमलके फूलका उगकर उनके चरणोंको अपने ऊपर लेना, और इन्द्र, ब्रह्मा आदि देवताओंका झट नये जन्मे बालकको आकर उठा लेना पौराणिक विश्वासकी ओर ही इशारा करता है। इसी प्रकार बुद्धका तावतिंश नामक स्वर्गको आना-जाना और वहाँ अपनी माता मायाको बौद्ध धर्मका उपदेश देना, श्रावस्तीमें अपने रूपको हज़ार जगह उत्पन्न कर देना, कामदेवका प्रलोभन और अपनी सेनासे बुद्धपर हमला या बार-बार देवताओंका बुद्धकी वन्दना करना उसी पुराणके अंग हैं जिनका निर्माण सभी मजहबोंने किया है और जो आम जनताके विश्वास या अंधविश्वासकी चीज बन गये हैं। पर इनसे भी महत्त्वके बौद्ध पुराण, बुद्धके जन्मकी वे कथाएँ हैं जो जातक कहलाती हैं और जिनकी संख्या क़रीब साढ़े पाँच सौ हैं। ये कथाएँ स्वयं बुद्धके ही मुँहमें रखी गई हैं

और उन्होने ही कहानीके रूपमें उनको कहा है। जातक कथाओका कहना है कि भगवान् बुद्ध गौतम बुद्धके रूपमें प्रकट होनेके पहले करीब ५५० वार जन्म लेकर ससारकी सेवा कर चुके थे। इन जातक कथाओमे, जो बौद्ध धर्मके वास्तविक पुराण है, उनको कभी हाथी, कभी बन्दर, कभी हिरन आदिके रूपमे पैदा होकर अपने त्याग, परोपकार और वलिदानसे दुनियाका कल्याण करना वताया गया है। मिसालके लिए नीचे हम उन्ही कथाओमेसे एकका वयान देते है। उसका नाम "रोहन्तमिग" जातक है। इसमे दिखाया यह गया है कि किस तरह चित्त-मृगने आफतमे भी अपने वडे भाई सोन-मृगका साथ न छोडा, किस तरह जानवर तक कभी-कभी इन्सानसे वढकर इसानियतका काम करता है। कहानी इस प्रकार है—

शास्ता (वुद्ध) ने कहा—"पहले जमानेमे वनारसमे व्रह्मदत्त राज करता था। उसकी पटरानीका नाम खेमा था। उस समय वुद्ध हिमालयमे मृग होकर पैदा हुए। रग उनका अत्यन्त सुन्दर था, विलकुल सोने जैसा, जिससे उनका नाम ही सोन-मृग पड गया था। सोन-मृगका छोटा भाई चित-मृग भी उसीका-सा सुनहरे रगका था और उसी रगकी उसकी एक छोटी वहिन थी जिसका नाम सुतना था। सोन-मृग मृगोका राजा था, नाम उसका रोहत था। वह रोहत हिमालय पर्वतमालाकी दो मालाएँ लाँघकर तीसरीमे अपने नामके ही रोहत तालावके पास अस्सी हज़ार मृगोका राजा वनकर रहता था और अपने वूढे और अधे माता-पिताकी सेवा करता था। वनारससे थोडी ही दूरपर निपादोका एक छोटा-सा गाँव था जहाँके एक निषादके वेटेने हिमालयके उस रोहत मृगको देख लिया। मरते समय गाँव लौटकर उसने अपने वेटेसे कहा—तात, जहाँ हम शिकार करते है वही सोनेके रगका एक मृग रहता है। अगर राजा पूछे तो वता देना।

एक दिन रानी खेमाने सपना देखा कि सोनेके रगका मृग सोनेके

आमनपर वैठा मुनहरी घटियोकी आवाज़की तरह मधुर स्वरमें उसे धरमका उपदेश दे रहा था और वह साधु-साधु कहती उपदेश सुन रही थी। धर्मकी कथा वगैर खत्म किये ही सोन-मृग उठकर चला गया था और रानी 'मृगको पकडो ! मृगको पकडो !' कहती हुई जाग पडी थी। उमकी दासियाँ रानीकी चिल्लाहट सुनकर हँमती हुई वोली—"घरके दरवाज़े और खिडकियाँ अच्छी तरह वन्द हैं, हवा तकके लिए जगह नही और देवी ऐसे समय घरके भीतर मृग पकडवाती हैं।" रानीने जव जाना कि यह कोरा सपना था तव उसने यह सोचकर कि राजा उसका सपना सुनकर हँसेगा, उसने छल पूर्वक कहा कि मुझे दोहद (गर्भ) उत्पन्न हुआ है और मैं सोन-मृगका उपदेश सुनना चाहती हूँ। राजाने सोन-मृगका नाम तक न सुना था, पर रानीने जव इच्छा पूरी न होनेपर मरनेकी धमकी दी तव राजाने मन्त्रियो और ब्राह्मणोको वुलाकर पूछा। जव उन्होने उसे वताया कि हाँ सोनेका मृग होता है, और है, तव राजाने शिकारियोको वुलाकर पूछा कि किसीने सोन-मृग देखा या सुना है ? तव निषादोके गाँव वाले शिकारीके वेटेने पिताकी वात राजाके सामने दोहरा दी। तव राजाने उसे 'मित्र' कहा, खर्चके लिए धन दिया और विश्वास दिलाया कि सोन-मृग लानेपर वह उसका वडा सत्कार करेगा। शिकारी वोला, "देव अगर उसे न ला सका तो उसका चमडा लाऊँगा, जो उसे भी न ला सका तो उसके वाल लाऊँगा, चिन्ता न करो।"

फिर वह अपने घरके लोगोंसे विदा ले वहाँ जा पहुँचा जहाँ हिमालयमे रोहन्त सरके किनारे मृगराज सोन-मृग अपने भाई-वहन, माता-पिता और दूसरे मृगोंके साथ रहता था। उस मृगको देखकर शिकारी सोचने लगा कि किस जगह जाल वाँधनेसे मैं उसे फँसा सकूँगा ? फिर मृगोंके पानी पीनेकी जगहको इस लायक समझकर उसने वही चमडेकी मज़वूत रस्सी वाँट खूँटियोपर जाल ताना। अगले दिन अस्मी हज़ार मृगोंके साथ आहार लेने और पानी पीने सोन-मृग तालावके किनारे पहुँचा। पर जालमे

महसा फँसकर वँध गया । तव उसने सोचा कि अगर मैं वँध जानेकी वात कहता हूँ तो मृगोका दल विना पानी पिये ही डरकर भाग जायगा । सो अपनेको वशमें कर जाल फँसा हुआ भी वह पानी पीता-सा मुँह वनाये खड़ा रहा । जव उसके अस्सी हज़ार मृग पानी पीकर ऊपर पहुँच गये तव उसने वन्धन तोडनेकी तीन वार कोशिश की । पहली वार चमडा छिल गया, दूसरी वार मास कट गया और तीसरी वार नसोंके कट जानेसे जाल हड्डीसे जा लगा । जव वह जाल तोड न सका तव उसने पकडे जानेकी आवाज़ की और मृग तीन हिस्सोमे वँटकर भागे । उधर चित्त-मृगने जव भाईको भागते मृगोमें न देखा तव वह लौटा और जालमे फँसे रोहन्तके पास जा पहुँचा । रोहन्तने उसे अपने खतरेकी जगह वताते हुए कहा कि हे चित्तक, ये मृगोके झुण्ड मरनेके डरसे भागे जा रहे है । तू भी जा । शका मत कर । वे तेरे साथ जीते रहेंगे ।

चित्तक वोला—हे रोहन्त, मैं नही जानेका । मेरा हिया खिचा जाता है । मै तुझे नही छोडनेका । उसके वदले चाहे अपने प्राण ही छोड दूँगा ।

रोहत वोला—वे हमारे अन्धे माता-पिता सेवकके न रहनेसे निश्चय मर जाएँगे । तू जा, शका मत कर । वे तेरे साथ जिएँगे ।

पर चित्त-मृगने उसकी वात न मानी और दायी ओर उसे सहारा देता हुआ उसकी वगलमें जा खडा हुआ । उधर सुतना नामकी वहनने जव मृगोमें अपने भाइयोको न देखा तव वह भी लौटी और उसके पास जा पहुँची । उसे देख रोहतने कहा—हे भीरु, भाग जा । मै लोहेके वन्धनमें वधा हूँ । तू भी चली जा । शका मत कर । वे तेरे साथ जिएँगे ।

पर वहिनने भी भागना मजूर न किया और वह रोहतके वायी ओर सहारा देती हुई जा खडी हुई ।

शिकारी आँख-कान लगाये देख सुन रहा था । अव उसने जाना कि मृगराज वँध गया । झट कछनी काछ हथियार ले वह मृगको मारनेके लिए

चला। उसे आता देखकर भी चित्त-मृग भागा नही। हाँ, सुतनाको कुछ भय हो आया और वह कुछ झिझकी। फिर यह सोचकर कि भाइयोको छोड कहाँ जाऊँगी, वह भी प्राणोका मोह तज अपनी जगह बनी रही, मरनेके लिए रुक गई। शिकारीने जब तीनोको एक साथ खडे देखा तब दोस्ताना तौरपर उन्हें एक कोखसे जने भाइयोकी तरह मान सोचा—मृगराज तो रज्जु-बन्धनमे बँधा है पर ये दोनो लज्जा और भयके बन्धनसे बँधे है, ये भला इसके कौन लगते है? सो उसने पूछा—ये मृग तेरे कौन लगते है भला जो आज़ाद होते हुए भी बँधे हुएके पास खडे हैं, जो प्यारी ज़िन्दगीके लिए भी तुझे तजनेको तैयार नही?

रोहतने उत्तर दिया—शिकारी, ये मेरे सहोदर भाई-बहन है जो अपनी जान बचानेके लिए भी मुझे तजना नही चाहते।

शिकारीका मन वैसे ही कोमल था, अब रोहतकी बात सुनकर और भी कोमल हो गया। तब चित्त-मृगने उसके मनकी कोमलताको भाँपकर कहा—"मित्र शिकारी, तू इस मृगराजको निरा हिरन ही मत समझ। यह अस्सी हज़ार मृगोका राजा है, सदाचारी है, सब जीवोंके प्रति दयावान है, अन्धे बूढे माता-पिताको पालता है, अगर तू इस तरहके धर्मात्माको मारेगा तो इसका ही नही, इसके माता-पिता, मुझे और बहन इन पाँच जनोको मारनेवाला होगा। इससे मेरे भाईको जीवनदान दे हम पाँचोको जीवनदान देनेवाला कहलाओ।

चित्त-मृगकी बात सुन शिकारी बोला—"स्वामी डरे नही। मैं माता-पिताको पालनेवाले मृगको छोडता हूँ। इस महामृगको आज़ाद देखकर माता-पिता सुखी हो!"

फिर शिकारी सोचने लगा—"राजाका दिया ऐश्वर्य भला मेरा क्या करेगा? अगर मै इस मृगराजको मारूँ तो ज़मीन फट जायेगी, मुझपर बिजली गिर पडेगी। छोडता हूँ इसे।" और रोहतके पास पहुँच खूँटी उखाड उसने चमडेकी रस्सी काट दी। फिर उसने मृगराजको उठा पानीके

पास ले जाकर लिटा वाद कोमल चित्तसे धीरे धीरे वन्धन खोल नसोंसे नसें, माससे मास और चमडेसे चमडा उसने मिलाया। फिर पानीसे रक्तको धोकर मृगराजपर उसने दोस्तीका हाथ वार-वार फेरा। यह देख चित्त-मृगने प्रसन्न हो कहा—शिकारी, जैसे मैं आज महामृगको मुक्त देखकर सुखी हूँ वैसे ही अपने रिश्तेदारोंके साथ तू भी सुखी हो।

तव रोहतने शिकारीसे अपनेको पकडनेका कारण पूछा—शिकारी बोला—स्वामी मुझे तुमसे प्रयोजन नही है। राजाकी पटरानी खेमा तुमसे धर्मका उपदेश सुनना चाहती है। उसीके लिए राजाके हुक्मसे मैंने तुझे पकडा था।

रोहत बोला—दोस्त, अगर ऐसा है तो मुझे छोडकर वडी वातकी है। आ मुझे राजाके पास ले चल, मैं रानीको उपदेश करूँगा।

शिकारी वोला—स्वामी राजाओंका स्वभाव कठोर होता है, कौन जाने क्या हो। मुझे राजाके दिये ऐश्वर्यसे काम नही। तू जहाँ चाहे चला जा।

रोहतने सोचा, मुझे और हाथ आये ऐश्वर्यको छोडकर यह वडा त्याग कर रहा है कुछ ऐसा करूँ जिससे इसका काम भी वने और उससे बोला—'प्रिय, मेरी पीठपर हाथ तो फेर।'' शिकारीने उसपर जो हाथ फेरा तो हाथ सुनहरे वालोंसे भर गया। शिकारीने पूछा—''स्वामी, इन वालोंका क्या करूँ ?'' रोहत वोला—''राजासे जाकर कहना, ये उस सोन-मृगके वाल है, और देवीको दिखा मेरी जगहपर खडे हो मेरी गाथाओंसे तुम्ही उपदेश देना। इन्हे सुनते ही उसका दोहद शान्त हो जायगा।'' फिर उसने गाथाएँ कही, धर्माचरण सिखाया, पचशील वताया और उसे विदा किया। शिकारीने रोहतको आचार्य मान तीन वार उसकी परिक्रमा की और चार वार प्रणामकर वालोंको कमलके पत्तेमें रख प्रस्थान किया। ये तीनो जन भी थोडी दूर पीछे जाकर मुँहमे आहार और पानी लेकर माता-पिताके पास गये। माता-पिताने पूछा—तात रोहत, तू तो फँस गया था, कैसे मुक्त हुआ ?

जीवन मृत्युके समीप पहुँच जानेपर कैसे मुक्त हुआ ? वेटे तुझे शिकारीने घने वन्वनसे कैसे मुक्त किया ?

रोहतने उत्तर दिया—हियेसे निकली हुई, हियेको छूनेवाली मधुर वाणीमे इस चित्तकने मुझे छुडाया। हियेसे निकली हुई हियेको छूनेवाली इस मधुर वाणीसे इस सुतनाने मुझे छुडाया। हियेसे निकली हुई हियेको छूनेवाली मधुर वाणीको सुनकर शिकारीने मुझे छोड़ दिया। माता-पिताने यह सुनकर आशीर्वचन कहा—"इसी प्रकार शिकारी भी अपनी पत्नीके साथ सुखी हो, जिस प्रकार रोहतको पाकर हम सुखी हुए हैं !"

शिकारी भी जगलसे निकल राजदरवार पहुँचा और राजाको प्रणाम-कर एक ओर खडा हो गया। राजाने पूछा—शिकारी, क्या तूने मृगचर्म लानेको नही कहा था ? फिर विना उसके कैसे आया ?

शिकारी वोला—सोन-मृग तो मेरे हाथ आ गया था, मेरे कडे वन्धनमे फँस गया था। उस मृगराजके पास दूसरे मुक्त मृग खड़े थे। यह देख मेरे रोयें आवेगसे खडे हो गये। मुझे लगा कि अगर मैं मृगको मारता हूँ तो स्वय ही जीता न वचूँगा।

तव राजा वोला—शिकारी, तू उन मृगोकी वड़ी तारीफ करता है। वे मृग कैसे है ? वे कैसे धार्मिक हैं ? उनका रग कैसा है ? उनका शील कैसा है ?

शिकारीने उत्तर दिया—"सफेद सीग, चमकते वाल, चाँदी-सी चमडी, लाल पाँव और मनोहर रग आँखोवाले है वे मृग।" और मृगके सुनहरे वाल राजाके हाथमें रख उन मृगोका रग स्पष्ट करते हुए शिकारी फिर वोला—"हे देव, वे ऐसे मृग हैं। वे ऐसे धार्मिक मृग हैं। देव, माता-पिताका पालन करनेवाले हैं, वे माता-पिताका पोषण करनेवाले है, इसलिए मैं सोन-मृग नही लाया। मुझे उस मृगराजने अपने वाल देकर कहा है कि मेरे स्थानपर खडे होकर देवीको दस गाथाओंसे उपदेश देना।" और उसने सोनेके आसनपर वैठ उन गाथाओंसे उपदेश दिया। रानीका दोहद

शान्त हो गया। राजाने खुश होकर शिकारीको बडी दौलत देते हुए कहा—शिकारी, मै तुझे सौ तरकश देता हूँ, बडे कीमती मणिकुण्डल देता हूँ, फूलकी शोभावाला चौकोर पलग देता हूँ, दो एक-जैसी पत्नियाँ देता हूँ, सौ गाएँ और बैल देता हूँ। शिकारी, तूने मेरा बहुत उपकार किया है। अब मै धर्मके मुताबिक राज करूँगा। तू भी, शिकारी, अब हिरन पकडनेवाला यह पापका काम छोड दे, खेती, व्यापार, ऋण-दान आदिसे अपने कुनबेका पेट भर।

शिकारी बोला—देव, मुझे गृहस्थीसे क्या काम ? मुझे तो प्रव्रजित (भिक्षु) होनेकी आज्ञा दें।

और आज्ञा पाकर राजाका दिया हुआ धन बेटे और स्त्रीको सौप हिमालय जा वह ब्रह्मलोक-गामी हुआ। राजाने भी सोन-मृगके उपदेशके अनुसार चलकर स्वर्ग पाया। वह उपदेश हज़ार साल चला।

इस प्रकार कथा समाप्तकर बुद्ध बोले—उस समय शिकारी छन्न था, राजा सारिपुत्र, रानी खेमा भिक्षुणी, माता-पिता महाराज-कुल, सुतना उप्पल-वण्णा, चित्त-मृग आनन्द, अस्सी हज़ार मृगसमूह शाक्यगण और रोहत मृगराज तो मैं ही था।

चीनी पौराणिक विश्वासमें देवताओका स्थान अपौरुषेय है जिस तरह हम यूनानी या भारतीय देवताओको मनुष्योंसे मिलते-जुलते, राग-द्वेष करते, लडते-भिडते पाते है उसी तरह चीनी विश्वासमें देवताओका स्थान नही है। देवता देवता हैं, आदमी आदमी, यद्यपि बिलकुल ऐसा नही कि दोनोंके बीच कभी सपर्क होता ही न हो। मामूली तौरपर आकाश और पृथ्वी देवताओ और आदमियो या समूची सृष्टिके जनक-जननी है। आकाशका देवता सारे चीनी देवताओमें प्रधान है और उसके विशाल मदिर पीकिंग आदि नगरोमे बने हुए है। उसकी पूजाके लिए ऊँची सीढीदार बेदी बनी रहती है जिसपर बडे पुराने ज़मानेसे पूजा होती चली आयी है। चीनके सम्राट् भी अपनी राजगद्दी उसी देवताकी

कृपासे पाते थे, ऐसा जन-विश्वास था, और अभी हाल तक राजाओंका अभिषेक उसी वेदीके पास होता रहा है। चीनके राजा अपनेको आकाश देवताके ही वंशज मानते थे और उनकी उपाधियोंमे प्रधान उपाधि "आकाशका बेटा" हुआ करती थी। आज भी पीकिंगके मन्दिरो और संग्रहालयोंमे उस देवताकी पूजाके लिए हजारो वर्ष पुराने पीतल और काँसेके हडे और कलसे रखे हुए है।

चीनके जन-विश्वास और पौराणिक कथाओंमे भी जल-प्रलयकी बाबुली कहानी जीवित है। पर उससे भी अधिक महत्त्वका जन-विश्वास उस अजगरपर केंद्रित है जो कभी सारे चीनमे पूजा जाता था। बाबुली, असीरी और ऋग्वैदिक आर्योंके साहित्यमे जिस अप्सू या वृत्रका बयान आता है वह भी चीनी अजदहेकी तरह ही लम्बी पूँछ वाला साँप या अजगर है, जो अकालका राक्षस माना गया है और जो जलके सारे सोतोपर कुण्डली मारकर सूखा पैदा करता है। उसे फिर मारदुक या इन्द्र वज्रसे मारकर जलके सोत खोल देता है और खेत लहलहा उठते है। परन्तु चीनी अज़दहा अकालका देव नही कल्याणका देवता है और गणेशकी तरह शुभ माना जाता है। बर्तनो और मन्दिरोपर, भवनो और इमारतोपर, सभी चीज़ोंपर उसके एकसे एक चमत्कारी चित्र और मूरते बनी होती है।

चीनी देवताओ और इनकी कथाओंके अलावा लोकमे प्रसिद्ध ऐसी कहानियाँ भी है जो आदमी और दूसरे जीवो या प्रकृतिकी शक्तियोंके बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। इस तरहकी एक कहानी शिकारी 'ई' की है जो नीचे दी जाती है—

बहुत दिनोकी बात है चीन देशमें "ई" नामका एक शिकारी रहता था। उसका निशाना बडा अचूक था। तीर फेककर वह निशानेकी ओर घोडा तेज़ीसे दौडाता क्योकि वह जानता था कि उसका निशाना कभी चूकेगा नहीं।

एक बार चीनपर एक आफत आ गई। आसमानमे अचानक दस सूरज

एक साथ निकल आये। दसो सूरज जमीनकी छातीपर आग उगलने लगे। पेड-पौधे जल उठे, पशु-पक्षी तवाह हो गये और लगा कि आदमीकी जाति ही दुनियासे मिट जायगी। शिकारी "ई" वडी चिन्तामे पड गया। वह सोचने लगा कि चीनकी जनताको दस-दस सूर्योंसे कैसे वचाया जाय। जव कोई सूरत समझमे न आई तव उसके गुस्सेका पारा ऊँचा चढ गया। उसने एकाएक अपना धनुष चढा लिया और तरकशसे दस तीर निकाले। एकके वाद एक उसने दसो तीरोसे दसो सूरजोपर वार किया। तीरोकी सनसनाहटसे जैसे वाजेकी आवाज़ होने लगी और हवाको चीरकर तीर नौ सूरजोंके गोलोंमें जा लगे। फिर क्या था जैसे फूलके गुव्वारे वैठ जाते है वैसे ही नवो सूरज मद्धिम सितारोकी तरह धुँधले और कमजोर हो गये।

वस दसवाँ सूरज किसी तरह वच गया, क्योकि दसवाँ तीर तनिक चूक गया था। घवडाया हुआ वह सूरज डरके मारे वँसवाडीके पीछे जा छिपा, ज़मीनपर भयानक अँधेरा छा गया और गर्मी कुछ ऐसी गायव हुई कि लोग सर्दीसे ठिठुर-ठिठुरकर मरने लगे। यह एक नयी आफत आई। ससारको गर्मी और उजेला भी चाहिए और उजेला सूरज ही दिया करता है जो अव भागकर वाँसोके पीछे जा छिपा था। शिकारी "ई" वडी चिन्तामे पड गया। क्योकि वह समझता था कि उसने दसो सूरजोको वरवाद कर दिया है।

उधर छिपे हुए सूरजने यह सोचकर कि शिकारी 'ई' चला गया होगा वाँसोके पीछेसे सिर उठाकर वडी होशियारीसे झाँका। शिकारी "ई" को अव भी खडा देख सूरज घवडाकर फिर वाँसोकी ओट हो गया। पर शिकारीने अव चैनकी साँस ली क्योकि एक सूरज अभी वच रहा था, जिससे दुनियाकी रक्षा हो सकती। शिकारी "ई" खुशी-खुशी अपने घर चला गया और सूरज धीरे-धीरे डरा-डरा वाँसोके पीछेसे निकला। दुनिया-के लोगोको नई ज़िन्दगी मिली।

पर, कहते हैं, शिकारी 'ई' का डर अव भी सूरजके दिलमे वना हुआ है। इसीसे २४ घटे आसमानमे चमकते रहनेकी उसे हिम्मत नही होती। सुवह पूरवमें निकलकर वह सीधा पच्छिमकी ओर भागता है और शाम होते-होते वह फिर बँसवारीकी ओट जा छिपता है, जिससे रात होती है।

यही राज़ है रात और दिनका। पहले सदा दिन ही रहता था पर जवसे सूरजके दिलमें शिकारी 'ई' का डर समाया तवसे दिन और रात दोनो होने लगे।

हिमालयकी व्युत्पत्ति : १० :

करोडो साल हुए, दक्षिण भारत एक ओर अफ्रीका, दूसरी ओर आस्ट्रेलियासे मिला हुआ था। थलका वह अटूट विस्तार हिन्द महासागरपर छाया था, दक्खिनी अमेरिका तक। उधर उत्तरमे न केवल उत्तर भारत वल्कि प्राय सारा हिमालय और एशियाके अधिकतर भाग जलमग्न थे। उनपर सागरकी फेनिल लहरें टूटती थी। तब हिमालय न था।

एकाएक एक दिन पृथ्वीके गर्भमे कुछ हुआ, ज़लजला आया, ज़मीन सिकुडी और फैली, सिकुडी और फैली। उसकी ऊपरी सतहका महसा कायापलट हो गया। दक्खिनमे समुन्दर उठा। उसने भारत, अफ्रीका और आस्ट्रेलियाको जल द्वारा बाँट दिया। उसी भूकम्पने उत्तरको ऊपर फेंका। सहसा हिमालयकी उत्तुङ्ग शृङ्खलाएँ सागरसे उठकर नगी हो गई। उसकी वह एवरेस्ट आसमान चूमने लगी जिसकी अभीकी इसानी विजयकी गूँज आज भी हवामें भरी है। साथ ही उसके उत्तर और दक्खिनमे भी समुन्दरने मैदान उगल दिये। हिमकी श्वेत हरी धाराओसे गिरिराजने उन्हे सम्पन्न किया।

वही गिरिराज हिमालय कालान्तरमें मनुष्यकी प्रेरणा और आकर्षण-का केन्द्र बना। उसके हिमधवल शिखरोपर सूरजने सोना विखेरा, चाँदने चाँदी। मनुष्यकी कल्पना अपने वैभवसे उसे सनाथ करने लगी। वह हिमालय भय, सौन्दर्य, वैराग्यका अपने मानव-दर्शकोमे सचार करने लगा। इसानने उसे विलासमे खोजा, मृत्युमे पाया। उसकी गहरी कन्दराओ और आदिम जगलोमें उसने अभिमत सत्यके दर्शन किये। उसकी चोटियोपर अमरोकी अलका बसाई। प्रणय-विह्वल कामुक किन्नर-किन्नरियोको

रागमे ध्वनित किया, प्रेयसियोको मेघदूत भेजे। शिवके घनीभूत श्वेत अट्टहासने उसके मस्तकका तुषार-मण्डन किया, देव-वनिताएँ वर्फीली चिकनी चट्टानोके दरपनमे उसकी छवि निहारने लगी। तीसरे नयनकी आगसे जलते-जलते भी कामने जो अपना अमोघ शर फेंका तो अवधूत-राज शिवका मन डोल गया, कैलास और गंधमादनके कन-कनमे उल्लास जागा।

भारतीय विचारोंके अनुसार हिमालयका विस्तार पूरबसे पच्छिम समुद्रसे समुद्र तक है। कालिदास कहते है —**अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः। पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥** उत्तर दिशामें गिरिराज हिमालय है जो पूर्व और पच्छिम के समुद्रोमे प्रवेश करता हुआ पृथ्वीके मापदण्ड-सा स्थित है। इस प्रकार हिमालय प्राचीनोकी रायमें भारतकी उत्तरी भौगोलिक और राज-नीतिक आदर्श सीमा प्रस्तुत करता था। परन्तु साधारण तौरसे हिमालय-का यह मान ससारके भौगोलिकोको मान्य नही है। उन्होंने उसका १५०० मील लम्बा विस्तार पच्छिममे गिलगित और पूरबमे ब्रह्मपुत्र तक माना है। इस प्रकार हिन्दुकुश हिमालयकी शृङ्खलासे बाहर है। भारतीय परिभाषाके अनुसार पच्छिममे हिन्दुकुशके अलावा ईरानी पठार-का एक भाग और पूरबमे बर्माके भी कुछ हिस्से शामिल होते। इस १५०० मील लम्बे पहाडी सिलसिलेकी चौडाई करीब ४०० मील है। हिमालयकी ६ श्रेणियाँ है जो पामीरकी गाँठसे निकलकर पूरबकी ओर जजीरोकी तरह बढती गई है। ज्यो ज्यो ये श्रेणियाँ पूरबकी ओर बढती गई है त्यो-त्यो इनकी ऊँचाई भी बढती गई है। एवरेस्ट जो उसकी सबसे ऊँची चोटी है, इसी पूर्वी शृङ्खलामें है। हाँ, गाडविन आस्टिनकी दूसरी आकाशचुम्बी चोटी ज़रूर पश्चिममे है।

इन श्रेणियोका एक अन्दाज़ इस प्रकार है। इनकी सबसे उत्तरी श्रेणी क्वेनलुन पहाडोकी है जो तिब्बती पठारकी ऊँची मुण्डेर बनाती है। दूसरी

श्रेणी कर्राकोरम या मुजदाग पहाडोकी है, सिन्धुनदके उद्गमके उत्तरमें। इस शृंखलाका मध्यम भाग अत्यन्त आकर्षक है। वही वह प्रसिद्ध ज़ोरकुल झील है जिससे ससारकी चार वडी नदियाँ निकलकर सोना उगलनेवाली ज़मीनको सीचती हैं। उत्तरकी ओरसे उस आमू दरिया या वक्षुका निकास है जिसे अरव वक्षाव कहते थे, जो वख़ा, वलख, वदख्शाँको सरसब्ज़ करती मध्यएशियाके मैदानोमे रेंगती अरब सागरमे गिरती है। उसके तटवर्ती वह्लीकमें केसरके खेत है जिनकी फूली क्यारियोमें लोट-लोट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके घोडोने अपने अयाल लाल कर लिये थे। उसी झीलसे पूर्वकी ओर ब्रह्मपुत्र निकलता है जिसके वहावकी राहमें कामरूपका जादूका देश है। लोक-कल्पना वहाँ वह नारीराज स्थापित करती है जहाँकी नारियोको प्रिय पुरुपको भेडा वना रखनेका इष्ट था। पच्छिममे सिन्धु नदी कश्मीर-की ऊँचाइयोसे उत्तर पजावको उर्वर करती है और दक्खिनमें गगा मध्य-देशको अपने स्पर्शसे पावन।

हिमालयकी तीसरी शृखला लदाखका निर्माण करती है, सिन्धुके उत्तर-दक्खिन दोनो ओर जस्कर हिमालयकी प्रधान पर्वतमाला है। उसका मस्तक वर्फ़ीली चोटियोंसे चमकता रहता है। उसीकी चोटियाँ गगोत्रीसे नन्दादेवी तक शिमलाके पहाडोंसे दीखती हैं। पीर पजाल या धौलाधरकी श्रेणी वाहरी हिमालयमें पडती है जो उसकी पाँचवीं शृखला है। निचले हिमालयमें इलकी अन्तिम और छठी पर्वतमाला है जिसमे सिवालिकका विस्तार है। दौरानके ख्यालमे हम इस पन्द्रह सौ मील लम्बी पर्वतश्रेणी-को और भी अधिक सुगम तरीकेसे वाँट सकते है। अगर हम इसके चार भाग करें तो उनकी गणना इस प्रकार होगी—(१) पजाव-हिमालय ३५० मील, (२) कुमायूँ-हिमालय २०० मील, (३) नेपाल-हिमालय ५०० मील और (४) आसाम-हिमालय ४५० मील।

पजाव-हिमालयका विस्तार गिलगितसे सतलज तक है। इसमें अधिक-तर २० हज़ार फुटसे कम ही ऊँची चोटियाँ है। पर नगापर्वत इसी

विस्तारमे है। उसकी ऊँचाई २६६५६ फुट है। कमायूँ-हिमालयकी शृंखला सतलजसे काली नदी तक चली गई है। इसीमे अधिकतर तीर्थ-स्थान और धर्मपूत शिखर हैं। नन्दादेवी २५६४५ फुट ऊँची है, कामेट २५४४७ फुट, त्रिशूल २३३६० फुट, बद्रीनाथ २३१९० फुट, केदारनाथ २२२७० फुट और गगोत्री २१७०० फुट। जमनोत्री भी इसी शृंखलामे है। नेपाल-हिमालयका विस्तार सबसे बडा है। काली नदीसे सिक्किम तक इसकी चोटियाँ ससारमें सबसे ऊँची हैं। तिब्बत और नैपालकी सन्धिपर खड़ा २९००२ फुट ऊँचा एवरेस्ट इसीमे है। कचनजगा २८१४६ फुट ऊँचा है, मकालू २७८००, यासा २६,६८०, धवलागरि २६,३०५, ब्राराघोर २६, ०६९, नारायणी २५,४५६, गुरला मान्धाता २५,३६५, गौरीशकर २३,४४० फुट। आसाम-हिमालयका विस्तार सिक्किमकी तिस्ता नदीसे ब्रह्मपुत्र और चीनकी सीमा तक है। इसकी चोटियोमे प्रसिद्ध नाम चावाखा, धोनकिया, जोगसोगला, कुल्हाकागरी, चीमोल्हारी, कावरू आदि हैं जिनकी ऊँचाई २४, ४४५ और २४,०१५ फुटके बीच है।

हिमालयकी पर्वतमालाओमे छोटी-बडी अनन्त झीलें हैं। कमसे कम मानसरोवरको ओर सकेत कर देना अनिवार्य है। मानसरोवरका सौंदर्य सस्कृत और हिंदी साहित्यमें सराहा गया है। इसके रग-विरगे कमल-वनका उल्लेख अनेक यात्रियोने किया है। वर्षाके आरभमे हसोकी कतारें मैदानोको छोड उत्तर हिमालयकी शरण लेती है जहाँ उनका अतिम लक्ष्य मानसरोवर होता है। जब तक कमल दल शीतकी चोटसे जल नहीं चलते, हस-मिथुन उनमे विचरते है फिर मैदानोको लौट पडते हैं। कालिदासने इसके स्वर्ण-कमलोका उल्लेख किया है।

मानसका सरोवर कैलासकी पर्वतमालामें ही, कैलाससे लगभग २५ मील दक्खिन है। नीति नामक दर्रेसे पूर्व कैलास और मानसरोवर दोनो तिब्बतमे हैं। कैलासका तिब्बती नाम खाँग-रपोचे है। देशी-विदेशी सभी यात्रियोने उसकी शालीनता सराही है। स्ट्रैचीका तो कहना है कि

भारतीय हिमालयमें कोई गिरि-शिखर ऐसा नही जो कैलासकी सुन्दरता पा सके। कालिदामने उसे स्फटिकका बना कहा है। गौरीशकरका नाम भारतीय साहित्यमें वारवार आता है। साधारणत यह माना जाता था कि गौरीशकर हिमालयकी सबसे ऊँची चोटी है। अनेक उसीको एव-रेस्ट मानते है। परन्तु अब कैप्टेन उडके मापसे प्रमाणित हो गया है कि गोरीशकर एवरेस्टसे प्राय साढे पाँच हजार फुट नीची दूसरी चोटी है। गधमादनकी चर्चा सस्कृत साहित्यमे शंकरके विहारके सबधमे अनेक वार हुई है। पुराण तो इन विहारोके वर्णनसे भरे पडे है। हिन्दू भौगो-लिकोने उसे कैलासका ही एक भाग माना है। कालिकापुराण इसे कैलास पर्वतका दक्षिणी भाग मानता है। महाभारत और वराहपुराणमे इसी शृखलामे वदरिकाश्रमका होना भी लिखा है। मार्कण्डेय और स्कन्द-पुराण गन्धमादनको गढवालके पहाडोका वह भाग मानते हैं जिनसे होकर अलकनन्दा वहती है। कालिदासने उसे कैलासका ही एक अग माना है, जिससे होकर उनकी रायमे मन्दाकिनी और जाह्नवी वहती है।

हिमालयका वर्णन और दर्शन सदासे भारतीयोको प्रिय रहा है। महाभारतके वीर पाण्डव अन्तमें इसी पर्वतमालामे गलकर शान्तिलाभ करने गये थे। सस्कृतके कवियोमें इस पर्वतमालाके सौदर्य-गायनकी विशेष कमजोरी रही है। कालिदास तो जैसे अपने ग्रथोमे वार-वार इस शैलराजकी ओर लौट पडते है। कुमारसम्भवकी सारी कथा हिमालयमे ही घटित होती है। उत्तरमेघ भी इसी पर्वतका वर्णन करता है। विक्रमोर्वशीय का चौथा और अभिज्ञान शाकुन्तलका सातवाँ अक हिमालयसे ही तात्पर्य रखते है। रघुवशके पहले, दूसरे और चौथे सर्गोमे भी उसी गिरिराजका वखान है।

कालिदासके हिमालय वर्णनका सक्षेपमें उल्लेख अनुचित न होगा। पर्वतकी मेखलामें संचरण करते मेघोकी शीतल छायाका आनन्द

ले सिद्ध वर्षा और आँधीसे उद्वेजित ऊपरकी शिलाओंपर धूपका सेवन करते है। भोजपत्रोंसे रह-रहकर मर-मर ध्वनि उठती है। पवन बाँसके रध्रोमे सरसरा कर वशी ध्वनि उत्पन्न करता है जिससे किन्नरियोके गानेको सहायता मिलती है। गगासीकरोंसे लदी शीतल वायु यात्रियोका मार्गश्रम दूर करती है। नमेरु वृक्षकी घनी छायामे बैठे कस्तूरीमृगके नाभिके स्पर्शसे शिलाएँ गमक उठती है। सरल द्रुमोंके परस्पर घर्षणसे सहसा दावाग्नि प्रज्वलित हो उठती है। रात्रिके समय वनस्पतियाँ तेलहीन प्रदीपोका रूप धारण करती है। हिमालयकी शृखलामे एक ओर क्रौंचरन्ध्र है जिसे परशुरामने अपनी शक्तिकी परीक्षाके लिए बाणसे भेद द्वार-सा प्रस्तुत कर दिया था। उसीकी पृष्ठभूमिमे हालके कटे हाथी दाँतकी तरह तुषारमण्डित कैलास है जिसकी दर्पणकायामे देवागनाएँ अपनी छवि निहारती है। हिमालयकी शालीनता उन चमरी गायोंके गमनागमनसे बढ जाती है जिनकी पूँछ सम्राटोको उनके चमर-लाछन प्रदान करती है। हाथियोंके झुण्ड सदा सर्वत्र देवदारुके जगलोमे फिरा करते हैं। उनके संघर्पणसे सरल वृक्ष छिल जाते है और उनके दूधकी गधसे वातावरण गमक उठता है। कवि पर्वतके 'शिलीभूतहिम' और 'तुषारसघातशिलाओं' का वर्णन करते नही अघाता।

मिस्र और पश्चिमी एशियाके साहित्य और जन-विश्वास : ११ :

सभी प्राचीन सभ्य और असभ्य जातियोके अपने-अपने विश्वास है। विश्वास वे अधिकतर काल्पनिक है और धर्म या भयसे सम्बन्ध रखते है। आदमी अपनी जिन्दगीको ही दुनियाकी जाहिर और छिपी चीज़ो और ताकतोका प्रतीक मानता है और उसीके मुताविक वह अपने विश्वास गढता जाता है, उसीके मुताविक वह अपने देवता सिरजता जाता है।

प्राय सभी जातियोंके प्राचीन देवता इसानकी ही तरह हाथ-पैर वाले, नाक-मुँह-आँखो वाले जीव है जो चल-फिरते, काम करते, मरते-मारते है, खाते-पीते और वोलते हैं, सुनते-सूँघते और देखते हैं। आदमीकी ही तरह उन्हें भी प्यार और गुस्सा आता है, वे भी उसी की तरह सोते-जागते हैं, सुदर-असुन्दर होते हैं। उसीकी तरह उनमे आपसी वैर और प्यार होते है, उसीकी तरह वे आपसमे जग भी करते है। गरज कि आदमी अपने ही रूपमें अपने देवताको सिरजता-सँवारता है।

जीनेकी लालसा इन्सानकी इतनी प्रवल है कि वह मरनेके वाद भी एक नई ज़िन्दगी जीना चाहता है, चाहे वह जिन्दगी स्वर्गकी हो चाहे नरककी। सभी जातियोंके अपने-अपने विहिश्त है, अपने-अपने दोज़ख हैं, जहाँ अपने-अपने धर्म, मजहवी विश्वास, काल्पनिक प्रेरणाके अनुसार वे खुशी या तकलीफके दिन गुज़ारते हैं। फर्क वस इतना है कि उनकी कल्पना-के मुताविक मौतके वादकी वह ज़िन्दगी वेइन्तहाँ लम्वी होती है, मज़ेके

वहाँ बेशुमार जरिये होते हैं, सुखके अपार साधन जिनसे इन्सानकी आत्मा अनन्तकाल तक छकती-अघाती रहती है।

स्वय आत्मा या रूपकी कल्पना भी इसी आधारसे उठी, कि आदमी जी हुई जिन्दगीसे चिपका रहना चाहता है और तृष्णापर हजार लानत भेजता हुआ भी उसकी छाया नही छोड पाता।

यही कहानी बाबुली जातियोकी रही है, यही आत्मा मानने वाले आर्योकी और यही प्राचीन मिस्रियोकी। हाँ, मिस्रमे मौतके बाद जिन्दा रहनेकी यह हविस गजबका जोर पकड गई। मिस्रियोका यह विश्वास था कि जब तक हमारा भौतिक शरीर—इस जिन्दगीमे जीने वाला तन—जीवित या मरी हालतमें बना रहता है तब तक उसकी आत्मा भी कही न कही घूमती रहती है और फिर घूमकर उसी शरीरमें पैठ जाती है और इन्द्रियोको अच्छी लगने वाली सभी चीजोको भोगती है।

इसीलिए मिस्रियोने अपने मृतकोकी 'ममियाँ' बनाई और उन्हें बचा रखनेके लिए विशाल पिरामिड खडे किये। ताजसे हजारो साल पहिले—मुहम्मद, ईसा और बुद्धसे हजारो साल पहिले—उन्होने वह लेप या उबटन खोज निकाला जिससे वे लाशको लेपकर, उसे कपडेसे लपेटकर ताबूतमें रखकर आज तक सुरक्षित रख सके। इसी तरह उन्होने अपने और अपने देवताओंके प्रियपात्र स्वय देवता स्वरूप बन्दरो, बिल्लियो, घडियालो तककी 'ममियाँ' बनाई और उन्हे उनके खाने-पीने आरामकी चीजोंसे घेरकर अपने पिरामिडोमे बन्द कर दिया, जिससे उन्हें धूप और नमी न छू सके, नष्ट न कर सके।

ससारके अचरज ये पिरामिड प्राचीन मिस्रियोंके मक़बरे है जिनमे उनके राजाओंके मृत शरीर बचा रक्खे गये हैं। उनके चारो ओर मृत्युके साथ रहनेवाले दास-दासियाँ, कुत्ते-बिल्ली आदिकी मूर्तियाँ हैं, चिरकाल तक चलने वाली खाने-पीनेकी चीजे हैं। प्राचीन बाबुलके पासके पुराने शहर ऊरकी कब्रोमे यही दास-दासी अपने हाड-मासके शरीरके साथ कभी

दफना दिये जाते थे। बेशक मिस्री या तो उनसे ज्यादा रहमदिल थे या बेरहमीका अपना वह पुराना ज़माना पार कर चुके थे जब वे भी इन मूरतोंकी जगह हाड-मासके आदमी मृतकोंके साथ दफनाते रहे होंगे।

मिस्रियोंका यह विश्वास था कि मरे हुए इन्सानकी आत्मा पाताल या यमलोकके पहिले यमलोकके देवता ओसिरिसके पास ले जाई जाती है और जब वह अपनेको कुल पापोंसे मुक्त होनेका सबूत दे लेती है तब उस देवताका आशीर्वाद पाकर अपने पुराने शरीरमे लौट आती है और आस-पास रखी चीजोंको भोगती है। वह आत्मा ज़िन्दगीकी दुनियामे तो नही लौट पाती पर अपनी 'ममी' में प्रवेश करती और पिरामिडमे निवास करती है। इसीलिए शरीरको 'ममी' बनाना वहाँ इतना आवश्यक होता था। इसीलिए उस ममीकी रक्षाके लिए पिरामिडोंकी इतनी आवश्यकता थी।

मिस्री जीवनमें मृत्युकी उपासना सबसे अधिक महत्त्व रखती थी। मौतके परेकी ज़िन्दगी पहलेकी ज़िन्दगीसे बँधी थी और उन तीनोंका एक अटूट सिलसिला था। खुद जिन्दगी भी मौतके बादकी ज़िन्दगीके लिए ही एक तैयारी थी। स्वाभाविक ही मौतका देवता ओसिरिस भी वहाँके देवताओंकी परम्परामे कभी बड़ा ऊँचा स्थान रखता था।

मिस्री देवताओंका एक परिवार था जिसमें ओसिरिस पिता था, ईसिस माता थी और होरस या सूरज उनका पुत्र था। पहिले उसे अज या बकरेका रूप मिला, फिर बाज और साँडका। बाज़को मिस्री लोग 'सोक्री' और साड को 'हापी' कहते थे। उस जमानेमें, या कुछ बाद, साँडकी पूजा हमारे देशके मोहनजोदड़ो और हड़प्पा तथा बाबुल, निनेवे, आदिमें भी होने लगी थी। (हमारे देशमें तो शिवके साँडकी पूजा आज भी होती है) कुछ काल बाद वही ओसिरिस, जो कभी अन्न और फसलोंका देवता था, ओसिरिस-खेन्तामेन्तियका नया नाम धारणकर मृतकोंका

महान् देवता बना। धीरे-धीरे उसका प्रताप इतना बढ़ा कि वह सूरज भी मान लिया गया।

ओसिरिसकी पत्नी ईसिस शायद सीरियासे मिस्र आई। कहते हैं कि देवता सेतने ओसिरिसको मारकर उसकी लाशको देवदारकी सन्दूकमे बन्द-कर विब्लस नामक नगरमे छोड दिया था जहाँ ईसिसने उसे पाया और जिलाकर उसे अपना पति बनाया। ईसिस भी अपने पति ओसिरिस और प्ताहकी ही तरह इसानी सिर वाली देवी है। पितृहन्ता सेतको मारकर पुत्र होरसने पिताकी मौतका बदला लिया।

मिस्रियोंके अनेक देवताओके सिर जानवरोंके थे। आदमीके तनपर जानवरका सिर बिठानेका खास मतलब हुआ करता था। मोहनजोदड़ो आदिकी मोहरोपर उभारी तसवीरोमे भी आदमीके तनपर शेर आदिके सिर बने हुए है जिससे उनको शेरकी-सी ताकतका अन्दाज लगाया जा सके।

साधारण तौरसे प्राचीन मिस्री नर और नारी प्रसन्न जीव थे। बाजो-के साथ नाचते हुए नगरोकी सडकोपर उनका निकलना त्योहारोका विशेष दृश्य होता था। इसीसे मौतके बाद जिन्दगीका खत्म हो जाना उन्हे गवारा न हो सका और उन्होने मौतके परे भी जिन्दगीकी दुनिया सिरज डाली। वे करीब चार किस्मकी रूहो या आत्माओपर विश्वास करते थे। इसमेसे पहली आत्माको वे 'का' या 'को' कहते थे। 'का' का मतलब उनकी जबानमे 'दूसरा' होता था, यानी शरीरका दूसरा रूप, जिसकी मूर्तियाँ अक्सर लाशके पास ही पिरामिडोमे बना दी जाती थी। 'बाई' दूसरे प्रकारकी आत्मा थी जिसका सिर तो इन्सानका होता था और शरीर पक्षीका। तीसरे प्रकारकी रूह 'इख' कहलाती थी जिसका सम्बन्ध भी पक्षीसे ही था। कहते है कि 'बाई' तो लौटकर 'ममी' बने हुए शरीरमे प्रवेश कर जाती थी और 'इख' सीधे आसमानमे उड जाती थी। चौथी आत्मा एक प्रकारकी छाया थी जो बहुत कालतक इधर-उधर फिरा करती

थी। अपने देशमें भी आत्माको 'हस' माना गया है और छाया तो प्रेतका दूसरा नाम ही है। आत्माएँ या छाया–शरीर ओसिरिस या पातालके दूसरे देवताओके साथ फिरा करते थे और जैसे सूरज रातमे फिरकर सुवह आसमानके सिरेपर फिर निकल आता है ये प्रेतात्माएँ भी यमलोकमे अपने पाप-पुण्यका लेखा-जोखा देकर एक नये जीवनमें प्रवेश करती थी। उनके पापोका लेखा-जोखा ओसिरिसके सामने थोथ नामकी देवी करती थी। वह तराजूके एक पलडेपर 'मुत' नामकी देवीके पखोको रखती थी और दूसरेपर आत्माके हृदयको और इस प्रकार इस हृदयको पखोमे तौलकर उसके पाप-पुण्यका अटकल लगाती थी। वैदिक देवता वरुण भी इसी प्रकार मृतात्माओंके पाप-पुण्यका लेखा-जोखा रखता था और यम-राज उसके अनुसार उनको दु ख-सुख देता था।

मृत्युके वाद आदमीका क्या होता था, वह कहाँ जाता था, क्या करता था—यह सव अनेक प्रकारकी कहानियोमे मिस्रकी चित्र-लिपिमें लिखा मिलता है। वडी दिलचस्प कहानियाँ इस सम्वन्धमे उन तस्वीरोमे लिखी मिलती हैं जो पिरामिडोकी दीवारोपर खुदी हुई है। अनेक कहा-नियाँ अव विद्वानोने पढ डाली है और उनसे प्राचीन मिस्रियोके धार्मिक विश्वासोपर खासा प्रकाश पडा है। उनके उस कालके साहित्यका एक वडा सग्रह ही तैयार हो गया है जिसे ससारका सवसे प्राचीन साहित्य मानना चाहिए। उस साहित्यकी अनेक कहानियोमे तो कल्पनाकी इतनी ऊँची उडान है कि आजका पढनेवाला उन्हें पढकर हैरतमे आ जाता है। इस प्रकारकी एक कहानी रूसके सेंट पीटर्सवर्ग (अव लेलिनग्राद) के हर्मिटेज नामक सग्रहालयमे १९ वी सदीके अन्तमे मिल गई थी।

इस साहित्यको मृतकोकी किताव कहते है क्योकि उनके पन्नोपर अनेक कहानियाँ, टोने-टोटके, जन्तर-मन्तर इसलिए लिखे हुए हैं कि उनकी मददसे मृतककी आत्मा मौतके वादकी अपने सफरकी राह आसानीसे तय कर सके और खतरोसे वच सके। सेट पीटर्सवर्ग वाली कहानी उसी वर्ग-

की है। उसमे एक ऐसे सैलानीकी कथा दी हुई है जो अद्‌भुत लोककी यात्रा करता है और जहाज डूब जानेपर एक अद्भुत सर्पलोकमें जा पहुँचता है। वहाँसे लौटकर वह देवताके प्रसादसे स्वदेश पहुँच अपना हाल बयान करता है। वह बयान मिस्री साहित्य और ससारकी प्राचीनतम कहानी बन गया है। उसे पढते ऐसा लगता है जैसे हम माँझी सिन्दवादकी कहानी पढ रहे हो। नीचे वह ज्योकी त्यो दी जाती है—

विद्वान् अनुचरने कहा, "प्रभु, चित्तको प्रसन्न करे, क्योकि हम पितृ-देश पहुँच गये हैं। नौकाके अग्रभागमे हमारे आदमी बैठे और डाडोको चलाकर हम यहाँ आ पहुँचे। नौकाका अग्रभाग अब रेतीपर टिक गया है। हमारे सारे आदमी आनन्द मना रहे हैं, एक दूसरेका आलिंगन कर रहे है, क्योकि हमारे अतिरिक्त अन्य भी भली-भाँति घर आ पहुँचे हैं। हमारे जनोमे-से एक भी नही खोया और हम उवाउआतकी दूरतम सीमाओ तक जा पहुँचे थे। हमने सेनमुतके प्रदेशो तकको लाँघ लिया था। अब हम शान्तिपूर्वक लौट भी आये और आज यहाँ पितृदेशमें हैं। सुनें, मेरे प्रभु, यदि आप मुझे सहारा न देगे तो मेरा कोई सहायक नही। जलसे शुद्ध हो, हाथोपर जल डाले, तब फराऊनसे वक्तव्य निवेदन करें और आपके चित्त तथा वक्तव्यमें एकता स्थापित हो, वक्तव्यमे किसी प्रकारका पेंच या अस्पष्टता न हो। इस बातको न भूले कि जहाँ मनुष्यका मुख उसकी रक्षा कर सकता है वही वह उसे ढक दिये जानेका कारण भी बन सकता है। (बातोंसे ही रक्षा भी हो सकती है, विपत्ति भी आ सकती है। मुँह ढककर तब वहाँ अपराधी ले जाये जाते थे। इससे इस पदका अर्थ विपत्तिका आगम है।) अपने हृदयकी चेतनाके अनुकूल आचरण करे, फिर जो कुछ आप कहेगे उससे मेरा चित्त शान्त होगा।

"अब मैं आपको बताऊँगा कि मुझपर कैसी बीती। मै ही नहेमकी खानोके लिए चल पडा। डेढ सौ हाथ लम्बे और चालीस हाथ चौडे जहाजमे चढ मैं समुद्रमे चला। हमारे जहाजमें डेढ सौ मिस्रके सर्वोत्तम

नाविक थे जिन्होंने आकाश-पाताल देखा था और जिनके हृदय सिंहसे भी अधिक साहसी थे। उन्होंने तो यह कहा कि वायु प्रतिकूल न होगी, वल्कि होगी ही नहीं। परन्तु समुन्दरके वक्षपर हमारे उतरते ही वायुका एक प्रवल झोका आया और हमने किनारे पहुँचनेका जैसे ही प्रयास किया झोके वेगवान् हो गये और आठ-आठ हाथ ऊँची लहरे उठने लगी। (नौका टूट गई), मैने एक तख्ता पकडकर किसी प्रकार जान वचाई परन्तु शेप सभी नष्ट हो गये, एक न वचा। अकेला, अपने चित्तके सिवा सर्वथा निमित्र तीन-दिन-तीन रात मै उस तख्तेपर झूलता रहा और तव लहरोने मुझे एक द्वीपके किनारे फेक दिया। पेडोकी झुरमुटमें तनिक आराम करनेके लिए मै पड रहा। अन्धकारसे फिर मै आच्छन्न हो गया। तव मैने मुँहके आहारकी खोजके लिए अपने पैरोका उपयोग किया। मुझे अजीर और अगूर मिले, कई प्रकारके साग मिले—फल, छुहारे, गरी, तरवूज, मछली, पक्षी—किसी चीज़की वहाँ कमी न थी। मैंने अपनी भूख शान्त की और उससे जो कुछ वच रहा था उसे फेंक दिया। फिर मैने एक खाई खोदी, आग जलाई और देवताओके लिए यज्ञके साधन जुटाये।

"सहसा मैने विजलीकी कडक-सी एक आवाज सुनी, जो मैने समझा, समुद्रकी लहरकी थी। वृक्ष काँप उठे, पृथ्वी हिल गई। मैने अपने मुँहसे पर्दा हटाया और देखा कि एक सर्प चला आ रहा है। वह तीस हाथ लम्वा था, दो हाथ नीचे लटकती उसकी दाढी थी। उसके लाल रगपर जैसे सुवर्ण चढा हुआ था। वह मेरे सामने रुका, उसने अपना मुँह खोला और अभी मै स्तव्ध-सत्रस्त उसकी ओर देख ही रहा था कि उसने कहना प्रारम्भ किया —

"तू यहाँ क्यो आया, तू यहाँ क्यो आया, तुच्छ जीव, तू यहाँ क्यो आया ? यदि तूने यह वतानेमे देर की कि तू यहाँ क्यो आया तो मै तुझे जता दूँगा कि तू क्या है—या तो फिर तू आगकी लपटकी भाँति लुप्त ही हो जायगा या कुछ ऐसी वात कहेगा जो मैने पहिले कभी न सुनी या

पहिले कभी न जानी।' तव उसने मुझे अपने मुँहमें ले लिया और ले जाकर अपनी विलमे विना कोई हानि पहुँचाये रख दिया। मै सर्वथा सकुशल था, सावुत।

'तव उसने अपना मुँह खोला। मै फिर भी उसके सामने चुप था। वह वोला—'तू यहाँ क्यो आया, तू यहाँ क्यो आया, तुच्छ जीव, इस द्वीपमें जो समुद्रके वीच है और जिसके तट लहरोंसे घिरे है ?''

''वाहुओको नीचे लटका मैंने उत्तर दिया। मैंने कहा—'फराऊनकी आज्ञासे डेढ सौ हाथ लम्वे और चालीस हाथ चौडे जहाजपर चढकर मै खानोकी ओर चला। मिस्रके सर्वोत्तम डेढ सौ माँझी उसमे सवार हुए, माँझी जिन्होने आकाश और पृथ्वी देखी थी और जिनके हृदय देवताओंके हृदयसे दृढतर थे। उन्होने कहा कि वायु प्रतिकूल न होगी, वायु होगी ही नही। उनमेंसे हर एक दूसरेसे हृदयकी वुद्धि और भुजाओकी शक्तिमे वढा-चढा था और मै स्वय उनमेंसे किसी वातमें कम न था। परन्तु जव इस समुदमें पहुँचे तव तूफान उठा और जव हम तटको ओर वढे तव तूफान और वढा और लहरें आठ-आठ हाथ ऊँची उठने लगी। मैंने तो एक तख्ता पकड लिया परन्तु शेष नष्ट हो गये, इन तीन दिनोमे एक भी साथ न रहा और अव मै यहाँ तेरे सामने हूँ, क्योकि समुद्रकी एक लहरने मुझे इस द्वीपमे फेंक दिया है।'

''तव वह मुझसे वोला—'डर नही, डर नही, तुच्छ जीव, तेरा चेहरा दु खका आवरण न पहिने। अगर तू यहाँ मेरे पास है तो इसका अर्थ है कि देवता तुझे जिन्दा रखना चाहता है। वही तुझे इस द्वीपमें लाया है, जहाँ किसी वस्तुकी कमी नही और जो सारी अच्छी चीजोसे भरा है। देख, तू इस द्वीपमे चार महीने विता, महीने पर महीना, तव देशके नाविकोंके साथ एक जहाज आएगा तव तू अपने देशको जाएगा और अपने नगरमें ही मरेगा। आओ अव हम वात करे, प्रसन्न हो, जो वात-चीतका आनन्द जानता है वह विपत्तिको सफलतासे झेल सकता है। अव

सुन कि इस द्वीपपर क्या है। यहाँ मेरे साथ भाई और बच्चे हैं—बच्चे और नौकर मिलाकर पचहत्तर सर्प हैं। इनमे मेरी इस कन्याके जोड नही है, जिसे सौभाग्यने मुझे दिया था परन्तु जिसपर भगवान्की अग्नि गिरी और जो जलकर भस्म हो गई। और यदि तू सशक्त है और तेरा हृदय धीर है तो तू निश्चय अपने बच्चोको हृदयसे लगाएगा, अपनी पत्नीका आलिंगन करेगा, तू फिर अपने गृहको देखेगा और सबसे उत्तम तो यह है कि तू अपने देशको पहुँच जाएगा, स्वजनोको भेंटेगा।' तब उसने मुझे प्रणाम किया और मैंने भी उसके सामने पृथ्वी-पर माथा टेका, कहा कि 'अब मुझे तुझसे इस विजयपर यह कहना है—मै फराऊनके सामने तेरा वर्णन करूँगा और उसे तेरी महत्ता बताऊँगा। मैं तुझे विविध सुगन्धित द्रव्य, अंगराग, धूप, नैवेद्य, भेजूँगा जिनका उपयोग हमारे मन्दिरोमे होता है और जो देवताओको चढाये जाते हैं। मै जो कुछ तेरे अनुग्रहसे देख सका उसका भी वर्णन करूँगा और सारी जाति तुझे धन्यवाद देगी। मै तेरे लिए यज्ञमें गन्धोकी बलि दूँगा। मैं तेरे लिए पक्षी पकडूँगा और मिस्रकी सारी अद्‌भुत वस्तुओंसे भर-भर मैं तेरे पास जहाज़ भेजूँगा, तुझे—उस देवताके लिए जो दूरदेशके निवासियोका मित्र है पर जिसे वे निवासी नही जानते।'

"मेरी बातपर वह मुसकराया और बोला—'निश्चय तू गन्धोका धनी नही है क्योकि जिनके नाम तूने अभी गिनाये हैं वे मेरे लिए कुछ भी नही है। मैं पुन्त देशका स्वामी हूँ और इन चीजोका वहाँ अफरात है। परन्तु हाँ, 'हाकोनू' द्रव्यको भेजनेकी बात तू कहता है वह निश्चय इस द्वीपमें अधिक नही है, परन्तु एकबार जब तू इस द्वीपको छोड देगा फिर उसे न देख सकेगा क्योकि यह तत्काल लहरोमें परिवर्तित हो जाएगा।'

"और देख, जैसा कि उसने कहा था, जहाज आ पहुँचा। मैं एक पेडपर यह देखनेके लिए चढ गया कि उसमें कौन है। फिर मै जल्दी

उसे खवर देनेके लिए दौडा पर वहाँ जाकर मालूम हुआ कि उसे मुझसे पहिले ही खवर मिल चुकी है। और वह मुझसे वोला—'सुयोग! स्वदेश की तेरी यात्रा, तुच्छ जीव, निर्विघ्न हो। तेरी आँखे तेरे वच्चोको देखें और नगरमे तेरा यश फैले। यही तेरे लिए मेरी शुभकामना है।' तव अपनी वाहुओको उसकी ओर लटकाकर मै आगे झुका और उसने मुझे सत्, हाकोन्, रस, तेल, और अनेक प्रकारकी और अत्यधिक मात्रामें धूपादि, गजदन्त, कुत्ते, वनमानुस, हरित कपि तथा अनेक अन्य रत्न और कीमती वस्तुएँ भेट की। इन सारी वस्तुओको मैंने उस आये हुए जहाजमे रक्खा और दण्डवत् कर मैंने उसे पूजा अर्पित की। उसने तव मुझसे कहा—'देख, तू अपने देशमें दो महीनेमें पहुँचेगा, तू अपने वच्चोको हृदयसे लगाएगा और शान्तिपूर्वक अपनी कब्रमें सोएगा।' उसके वाद मैं किनारे, जहाजकी ओर, गया और मैंने माझियोको पुकारा। मैंने तटपर खडे होकर द्वीपके स्वामी और उसके निवासियोको धन्यवाद दिया।

"जव दूसरे महीने उसके कहनेके मुताविक फराऊनके नगरमें पहुँचे, तव हम राज-प्रासादकी ओर वढे। मैं फराऊनके समीप गया और उसे उस द्वीपसे लाई हुई सारी वस्तुएँ प्रदान की और उसने एकत्रित जनताके सामने मुझे धन्यवाद दिया। इसीसे उसने मुझे अपना अनुचर वनाया और दर-वारके मुसाहिवोमे मुझे जगह दी। अव मुझे देखे कि कितना सह और देखकर मैं फिर इस तटपर पहुँचा हूँ। मेरी प्रार्थना सुने, क्योकि लोगोकी वात सुनना अच्छा है। किसीने मुझसे कहा, 'मेरे मित्र, विद्वान् हो, तुम्हारी पूजा होगी।' और देखें, मैं यहाँ आ पहुँचा।"

× × ×

ईराक देशमे दजला-फरातकी घाटीमे प्राचीनकालमे तीन सभ्यताएँ फली-फूली—सुमेरी, वावुली, असूरी सभ्यताएँ—तीनो एक दूसरीसे गुँथी, एकके वाद एक उठती। सुमेरी नदियोंके सगममुहानोपर, ईराकके

दक्खिनमे आजसे कोई पाँच हज़ार साल पहले, वावुली, उससे कुछ उत्तर वावुल नगरके इर्द-गिर्द, लगभग चार हज़ार साल पहले, असूरी, दजला-फरातकी उपरली घाटीमे, करीव तीन हजार साल पहले। सुमेरियोने उन सभ्यताओ-को लिखावट दी, कीलनुमा अक्षर दिये, वावुलियोने लिखा और असुरोने लिखे साहित्यकी रक्षा की।

पीछे आनेवाली सभ्यता अपनी पुरखा सभ्यताका विरसा सम्हालती गई। सुमेरमे छोटे-छोटे आज़ाद नगरोंके अपने-अपने राज थे जहाँ पहले पुरोहित-राजा राज करते थे। वावुलका जव वादमें दवदवा वढा तव वहाँ एक नई सामी जातिके सम्राट् हम्मुरावीने पहला वावुली साम्राज्य खडा किया और अपनी रियायाको पहली वार अधिकार-कानून दिये। पर वहाँ सवसे ज्यादा ताकतवर असुर हुए जिनकी विजयो और प्रतापका ज़िक्र उस कालके ससारके साहित्यमें हुआ। उनका राज एक ओर फारस दूसरी ओर मिस्र तक फैला। सारगोन, असुर नज़ीरपाल, और असुर वनिपाल इतिहासमें प्रसिद्ध हुए। उनकी जातिका नाम असुर था, प्रधान देवता और नगरका नाम असुर था। पहली वार उन्होने वैज्ञानिक रीतिसे सेनाका सगठन किया। लडाईमे घोडो और घोडेजुते रथोका इस्तेमाल किया। वे दाढी और सिरपर लम्वे वाल रखते थे, खूँखार और ताक़तवर थे, जव कोई देश जीतते वहाँके मर्दो को तलवारके घाट उतार देते या गुलाम वना लेते, औरतो और मवेशियोको हाँक ले जाते, समूची रियायाको उखाडकर दूसरी जगह वसाते। पर दो वातें असुरोने वडे मार्केकी की—एक तो उन्होने कलाका निर्माण किया, सव जगह उनके महल-इमारते वनानेवाले राजो-कारीगरोकी माँग हुई, ससारके सारे साहित्योमें उनका कलावन्त-शिल्पी और असुर मय विख्यात हुआ। दूसरे उनके राजा असुर वनिपालने गीली ईंटोपर कीलनुमा अक्षरोमे लिखे प्राचीन सुमेरी-वावुली सभ्यताके साहित्यको अपने पुस्तकालयमें इकट्ठाकर उसकी रक्षा की।

हालमे पुराविदोने उसे खोद निकाला है, जिससे हमे सुमेरी-बाबुली-असूरी सभ्यताओकी जानकारी हुई।

उन्ही ईटोंसे हमने जाना है कि वहाँ सबसे पुराने जमानेमे हर नगरके अपने-अपने देवता थे और जब-जब वे नगर एक दूसरेपर हावी होते उनके देवता भी उसी तरह प्रधान हो जाते। प्राचीन सुमेरी नगरोके नाम थे—एरिदू, ऊरु, लारसा, उरुक, नुप्पुर, इसिन, कीश, कुतू, बाबिलू (बाबुल), बारसिप (बोरसिप्पा), सिप्पर और अक्काद। बादमें उत्तरमें असुरोंके नगर बसे—असुर (अश्शुर), निनुआ (निनेवे), अरबैल (अरबेला) और ईरान।

पहले तीन देवता प्रधान हुए—अनु, एन्लिल और इया। अनु आकाश या स्वर्गका देवता था, एन्लिल पृथ्वीका और इया जलका। एक दूसरा दल तीन देवताओका और था—सिन (चन्द्रमा), शमश (सूरज), और इश्तर देवीका। धीरे-धीरे जब बाबुलका प्रभुत्व बढा तब उसका देवता मरदुक भी देवताओमे प्रबल हुआ। उसने अप्सूके मरनेपर उसकी रानी तियामत (अकाल और सूखेकी अजगरनुमा देवी) को वज्र मारकर देशके जलका उसकी गुजलकोसे रक्षा की। देवता नबू पहले मरदुकका पुत्र मात्र था, बादमे प्रबल हो गया। इसी प्रकार पिछले कालमे एन्लिलके बेटे निनिबका भी रुतबा बढा। नरगल नरकका राजा था, सुमेरियो-बाबुलियो-का यम, जिसकी पत्नी एरेश-कीगल नरककी स्वामिनी थी। सिनका पुत्र नुस्कू प्रकाशका देवता था, जैसे गिरू अग्निका। रम्मन या अदाद बादलो-बिजलीका देवता था, वर्षाका तुम्मूज देवी इश्तरका पति था जिसके मर-सियासे पुराना बाबुली साहित्य भरा पडा है। असुर (अश्शुर) असुरजाति का प्रधान देवता था। उसका मन्दिर असुर नगरमे था।

इन देवताओके आपसी राग-द्वेष प्रबल थे और इनके बीच अक्सर लडाइयाँ होती रहती थी। इन लडाइयोमें कुछ मर भी जाया करते थे। इनके भिन्न-भिन्न परिवार थे और इन परिवारोका आचरण मानव गृहस्थो-

का-सा होता था। देवताओके क्रोधका एक दिलचस्प उदाहरण सुमेरो-बाबुली साहित्यमे सुरक्षित है। देवता एन्लिलने आदमियोके पापसे चिढकर देवताओकी सभा की और दण्डके रूपमे जल-प्रलय द्वारा सृष्टिका नाश कर देनेका निश्चय किया। देवता इयाने उसका भेद शुरुप्पक नगरके रहनेवाले मानव ज़िउसुद्दू (न्उत्नपिश्तिम-अत्रख़सीस) को बताकर मानव जातिकी रक्षा की। जल-प्रलयकी वह कथा, जिसे ज़िउसुद्दू अपने वशज गिल्गमेशसे कहता है, इस प्रकार है—

"मैं तुझसे एक भेदकी बात कहूँगा, और तुझसे देवताओकी रहस्य मत्रणा तक कह दूँगा। मगर शुरुप्पकको तू जानता है, उसे जो फरात (फरातू) के तटपर है—वह नगर पुराना हो गया था, और उसमे बसने वाले देवता—महान् देवताके चित्तमे हुआ कि जल-प्रलय करें

"दिव्य स्वामिन्—नेक देवता एकी—उनके विरुद्ध था। उसने उनकी मत्रणा एक नरकटकी झोपडीको सुनाकर कही—नरकटकी झोपडी! दीवार, ओ दीवार! सुन, हे नरकटकी झोपडी। समझ, ओ दीवार!"

यह इस प्रकार झोपडीके बहाने इसलिए कहा गया कि ज़िउसुद्दू, जो उसी झोपडीमे रह रहा था, सुन ले। फिर देवताने खुलकर उससे कहा—

"शुरुप्पकके मानव, उबर्डुटूके पुत्र, घरको गिरा डाल, एक नौका बना, माल असबाब छोड दे, जानकी फिक्र कर। जायदादको तोबा कर और (अचानक मर नही) ज़िन्दगी बचा ले! सारे जीवोके बीज चुनले और नौकाके बीच ला रख।"

ज़िउसुद्दूने नौका बनाई और उसे जीव-बीजोसे, भोजन आदिसे भर लिया-और नगरवासियोंसे वह बोला—"शक्तिमान पवन देवता एन्लिल उससे घृणा करता है। इससे वह ज़िउसुद्दू उनके बीच नही रहेगा। जाते समय उसने झूठ कहा कि देवता उनपर कृपा करेंगे, रहमत बरसाएँगे। उसने अपने परिवारको फिर नावमे चढा उसे सब ओरसे बन्द कर लिया।

और तव भयानक तूफान आया और काले विकराल मेघोंके वीच स्वयं देवताओंको समस्त नागरिकोंने मशाल चमकाते देखा।

"भाई-भाईको न पहचान पाता था। शून्य और आदमीमें कोई फर्क नहीं था (ये लोग दिखाई नही पडते थे)। स्वयं देवताओंको जलप्लावनसे भय हो चला। वे सरके। वे देवता स्वर्गमे जा पहुँचे। देवता कुत्तों-की भाँति भयसे काँप रहे थे, स्वर्गकी देहलीमे एक दूसरेसे चिपटे। देवी इनन्ना (सुमेरी मातृदेवी, सामियोकी इश्तर अथवा अस्तार्ते) प्रसव-पीडिता नारीकी भाँति चीख उठी। वह मधुभाषिणी देवपत्नी रो-रोकर देवताओंसे कहने लगी—'दिन मिट्टी हो जाय क्योकि मैंने देवसभामे अनु-चित कहा! भला क्यो देवताओंकी सभामे मैंने कुवाच्य कहा! क्यो अपनी ही प्रजाके लिए तूफान वरपा किया? मैंने क्या अपनी प्रजाको इसीलिए जना कि उनसे मछलियोंके अण्डोकी तरह समुद्र भर जाय?' "

छह दिन और छह रात तूफान और जलकी वाढ उमंडती रही और जलकी सतहपर वहता ज़िउसुद्दू अपने साथियोंके लिए ज़ार-ज़ार रोता रहा। पर्वत शृखलाके ऊँचे शिखर मात्र जलके ऊपर थे। इन्हींमें एकसे नौका जा लगी और सप्ताह भर वही लगी रही। ज़िउसुद्दू कहता गया—

"सातवें दिन मैने एक कवूतर निकाला और उडा दिया। कवूतर उड गया। वह चहुँओर उडता रहा पर कही उतरनेको जगह न मिली और वह लौट आया। मैंने एक अवावील निकाली और उडा दी। अवावील उड गई। वह चहुँओर उडती रही पर कही उतरनेको जगह न मिली और वह उडती हुई लौट आई। मैंने एक काग निकाला और उडा दिया। काग उड गया। और उसने घटते हुए जलको देखा। उसने (दाना) चुगा, जल हेला, डुवकियाँ लगाई, लौटकर नही आया। मैंने (हविष) निकाला और कुर्वानी की (यज्ञ किया) चारो हवाओंके प्रति। पर्वतकी उत्तुङ्ग शिलापर मैंने आपान (मदिरा) चढाया, और सात वोतल रख दिये,

उनके नीचे वेंत, दारू और धूप-अगुरु विखेरे। देवताओने सुरभि सूँघी, देवताओने प्रभूत गन्ध ली, देवता यज्ञके स्वामीके चारो ओर इकट्ठे हो गये। अन्तमे देवी (इनन्ना) ने पहुँचकर वह ग्रैवेयक (हार) उठाकर, जो देव अनने उसके कहनेसे वनाया था, कहा—'देवताओ, जैसे मैं अपने गलेकी नील मणियोको नही भूलती, उसी प्रकार मैं इन दिनोको नही भूल सकती। इन्हें सदा याद रखूँगी। देवता यज्ञमें पधारें, परन्तु एन्लिल न आवे, इस यज्ञका भाग वह न पावे, क्योंकि उसने कहना न माना, क्योकि उसने जलप्रलयकी सृष्टि की और नाशके लिए मेरी एक-एक प्रजा गिन ली।' तव देवता एन्लिल्नने नाव देखी। एन्लिल क्रुद्ध हो उठा। उसने पूछा कि किस प्रकार कोई मर्त्य (उस प्रलयमे) वचकर निकल गया ? श्रीमान् और शिष्ट भूदेव एकीने उससे तर्कपूर्वक कहा—

"देवताओके देवता, वीर, क्यो, क्यो तूने कहना नही माना और वरवस प्रलय की ? पाप पापीके ऊपर डाल, सीमोल्लघनका अपराध सीमा लाँघनेवालेपर। कृपाकर, जिससे वह सर्वथा उच्छिन्न (एकाकी) न हो जाय, नितान्त विभ्रान्त (मूढ) न हो जाय। तेरे जलप्रलय लानेसे अच्छा है कि सिंह भेजकर प्रजाकी सख्या कम कर दे। तेरे जलप्रलय लानेसे अच्छा है कि भेडिया भेजकर प्रजाकी सख्या कम कर दे।'

"क्रुद्ध देवता शान्त हो चला, एकी कुछके किये पापोका दण्ड वहुतो-को देनेवाले उस देवकी भर्त्सना करता गया। अन्तमें एन्लिल नौकाके भीतर चला आया। उसने मेरा हाथ पकडा और मुझे वाहर लाया, स्वयं मुझे। वह मेरी पत्नीको भी वाहर निकाल लाया और मेरी वगलमें उसमे घुटने टेकवाये (प्रणाम कराया)। उसने हमारे माथेका स्पर्श किया और हमारे वीच खडे होकर हमे आशीर्वाद दिया—'पहले जिउसुद्दू मनुष्य था पर अवसे जिउसुद्दू और उसकी पत्नी निश्चय ही हमारी तरह देवता होगे। जिउसुद्दू और उसकी पत्नी दूर नदियोंके मुहानेमे वास करेंगे।'"

यह उस जलप्रलयकी कहानी है जो सुमेर यानी दजला-फरातके मुहाने के नगरोमे ईसासे करीब ३५०० साल पहले घटी। शैलावकी वह रोंगटे खडे कर देनेवाली कहानी ईसासे प्राय ढाई हज़ार साल पहले उन ईंटोपर लिख ली गई थी जो असुर वनिपालके नगर निनेवेके ग्रन्थागारमे मिली है। यह कहानी कथाके भीतर कथा है जो गिल्गमेश नामक सुमेरी-बाबुली महाकाव्यमे लिखी है। इस कहानीको प्राय. सभी प्राचीन जातियोने अपनी-अपनी धर्म पुस्तको और साहित्योमे लिख लिया। इजीलकी जल-प्रलयकी यहूदी कहानीका नायक नूह यह जिउसुद्दू ही है, जैसे वही हिन्दू जल-प्रलयकी कहानीका नायक मनु भी है।

सुमेरी-बाबुलियोका भी मिस्रियोकी ही भाँति परलोकमे विश्वास था, इससे उनकी कब्रोमे मृतकोके साथ आरामकी सभी चीज़े दफनाई जाती थी। ऊरके राजाओकी कब्रोमे उनके दास-दासी, खच्चर आदि ज़िन्दा ज़हर पिलाकर अपने मालिककी लाशके साथ दफनाये गये थे। उन कब्रोसे इन लाशोकी ठठरियाँ, रथ, बाजे, कीमती जवाहरात, सोने-चाँदीकी चीज़े मिली है। ज़ाहिर है कि तबकी ज़िन्दगी गरीबोके लिए बडी मुश्किल और सासतकी थी।

× × ×

ईरान मध्य एशियाका पश्चिमी भाग है। ईराक उसके पच्छिममे फारसकी खाडीसे उत्तर तुर्की और अरमनी पहाडो तक सीरियासे मिला-जुला फैला हुआ है। ईराकका उत्तरी भाग सीरियासे मिलकर असुर या असुरिया देशका निर्माण करता था। उसके दक्खिन दजला और फरात नदियोके बीच बाबुलका साम्राज्य था, और उससे भी दक्खिन नदियोंके मुहानेपर सुमेरियोकी बस्तियाँ थी। यह समूचा इलाका एशियाका पच्छिमी भाग है। मिस्र, अफ्रीकाके उत्तरमे, भूमध्यसागरके किनारे है। सुमेरके लोग किस जातिके थे यह ठीक-ठीक कहना आज नामुमकिन है पर उनकी

ताकतको खत्मकर जिन वाबुलियो, असुरो और खल्दियोने अपने राज कायम किये उन्हें आज सामी कहा जाता है। प्राचीन मिस्री इसी प्रकार हामी कहलाते थे। ईरानी, इनके विपरीत, आर्य नस्लके थे और आर्य देवताओको पूजते थे।

प्राचीन ईरानियोकी धर्म पुस्तक (अवेस्ता) है जिसके पढ़नेसे उनके प्राचीन धर्म और विश्वासका पता चलता है। भारतके आर्योकी ही भाँति, जिनके प्राचीन ईरानी भाई-विरादर ही थे, वे प्राकृतिक देवताओ—द्यौस्, पृथ्वी, अग्नि, वरुण, असुर आदिकी पूजा करते थे। वादमे ज़रथुस्त्रने उस धर्ममे अनेक सुधार किये जो एक नई दृष्टिकोणके सूचक थे। ज़रथुस्त्रने ईरानियोके जानवरो और आदमियोकी कुर्वानी और होम (सोम) के विरुद्ध विद्रोह किया और प्राचीन धर्मको एक नई आचार-प्रधान व्यवस्था दी। प्रतापी असुर देवताको नियामक मान ईरानियोकी व्यवस्था और आचारके देवता वरुणको उसने असुर महान् या अहुरमज्दाकी उपाधि दी और उसे सारे देवताओमें ऊँचा माना। ऋत या सत्यको उसने विशेष मान दिया और असत्य या झूठके खिलाफ़ जग छेड दिया। प्रकाश और अन्धकार या ऋत और मिथ्याकी इस लडाईमें सत्यकी विजयकी उसने घोषणा की। उसके नये सुधारवादी आन्दोलनके वावजूद प्राचीन ईरानियोके देवता अहुरमज्दा और मित्र् (ऋग्वेदका सूर्य) नये धर्ममे वने रहे। ज़रथुस्त्रका पहला चेला उसका भाई वना, फिर धीरे-धीरे हखमनी सम्राट् भी उसके प्रभावमें आये। हखमनी प्रभुताका सिकन्दर द्वारा दाराकी हारसे जव ३३० ई० पू० मे लोप हो गया तव करीव अगले सौ वर्षो तक ईरान-पर ग्रीकोका राज रहा। २११ ई० मे समानी वशने जरथुस्त्रके धर्मको ईरानका राजधर्म वनाकर उसकी फिरसे प्रतिष्ठा की और जव तक ६४० ई० में उस वशका इस्लामकी सेनाओ द्वारा नाश न हो गया तवतक ज़रथुस्त्री धर्मका देशमे वोलवाला वना रहा। ईरानके वरवस मुसल्मान वना लिये जानेपर अनेक ईरानियोने अपने अग्निपूजक जरथुस्त्री धर्मके

साथ भारतमे शरण ली और यहाँ वे पारसी कहलाये। वस ये पारसी और ईरानके गवर अव उस प्राचीन धर्मके माननेवाले वच रहे हैं।

प्राचीन ईरानमे देवताओंके अलावा पितरोकी भी पूजा होती थी और उनके पराक्रमकी कथा गाथाओमे गाई जाती थी। उन्ही महान् वीरोकी कहानी फिरदौसीने अपने महाकाव्य 'शाहनामा'के आरम्भमें वडे गौरव-से कही है। रुस्तम, सोहराव आदि उन्ही वीरोमे-से थे।

प्राचीन मिस्रका शंकर इखनातून : १२ :

मज़हव चलानेवाले राजाओमे पहला नाम इखनातूनका है। जब-जब ऐसे राजाओंके नाम गिने जायँगे पहला नाम इस इखनातूनका ही होगा। इखनातूनका नाम ससारके वुद्धिमान राजाओ सुलेमान, अशोक, हारूँ अलरशीद और शर्लमानके साथ लिया जाता है। फिर दिलचस्प वात यह है कि वह इन वाकी सभी राजाओसे पहले हुआ, ईसासे करीव १३०० साल पहले, आजसे कोई ३३ सदियो पहले।

और इखनातूनने जग नही जीता, लडाइयाँ नही लडी, अपने राजकी हदें वढानेमे इसानियतको वरवाद नही किया। उसने जीता ज़रूर, पर कमजोर इसानको नही, अजेय देवताओको जीता, उनके ताकतवर पुजारियोको जीता। उसने मज़हव चलाया, नया मज़हव, मिस्रके पुराने धर्मको हटाकर, पुराने अनगिनत देवताओके लश्करको मिटाकर। और अपना वह मजहव उसने तव चलाया जव अभी आदमी वालिग भी नही कहलाता, कुल १५ सालकी उम्रमे। इसके लिए उसे पागल कहा गया, "अतूनका अपराधी"। मगर न तो वह पागल था, और न, जैसा ऐसी हालतमे अक्सर हो जाया करता है, हत्यारेके छुरेसे वह मरा। हाँ, पर वह धर्मका दीवाना जरूर था, और दीवाना ही शायद वह मरा भी। पर सच वह पागल न था, गो पागल उसे कहा जरूर गया है।

इखनातून शानदार पिता और रोवीली माताका वेटा था। पिता आमेनहोतेप तीसरेकी रगोमे शायद सीरियाके मितन्नी आर्योका खून वहता था, और माता तीईकी नसोमे जगली जातियोके रकतकी रवानी थी। इखनातूनकी आत्माकी वेचैनी इससे स्वाभाविक थी। दो ताकते इस

तरह मिलकर उस वालकमे जाग उठी और उसने अपने मुल्कके मज़हब की काया पलट दी।

इखनातूनके पिता आमेनहोतेपने जब गद्दी छोडी तब वेटा वस ७-८ सालका था। १५ सालकी उम्रमे उसने अपना वह इतिहास प्रसिद्ध धर्म चलाया जो इजीलके पुराने नवियोके लिए अचरज वन गया। २६-२७ सालकी उसकी उम्र थी जव उसकी तूफानी ज़िन्दगीका अन्त हो गया। पर १३ और २६ सालके वीचके अपने १३ ही वरसके जीवनमे उसने वह किया जो सौ-सौ वरस पककर जीनेवाले नही कर सके।

इखनातूनने मिस्रके पुराने तवारीख़को देखा, देवताओ और अपने पुरखे फराऊनोके लम्वे इतिहासको। देवताओकी भीड़ और उनके पुजारियोकी कुव्वतसे वेवस और नाचीज़ होते अपने पुरखोको देख उसके मनमे वडी व्यथा जगी। वचपनकी ज़िन्दगीमे सपनोका ताँता वँध जाता है, कल्पना आसमानमे वेहद पर मारा करती है। इखनातूनके मनके आसमानकी हदे न थी और उसकी कल्पनाकी उडान कावूके वाहर थी। जव-जव वह सोचता देवताओकी वह भीड उसे वौखला देती और उसकी अराजकतामे, वह चाहता, एक व्यवस्था वन जाय। पुरखोकी राजनीतिमे उत्तरी अफ्रीकाके स्वतन्त्र इलाकोको, दूर पच्छिमी एशियाके राज्योको उसने मिस्रके फराऊनोकी छायामे सिकुडते और हुकूमतके एक सूतमे नथते देखा था, और वह राज़की वात उसके मनमे वैठ गई।

उसने कहा—जैसे नील नदीके निकाससे फिलिस्तीन और सीरिया तक एक फराऊनका दवदवा है, क्यो नही देवताओकी झूठी भीडकी जगह फराऊनी साम्राज्यकी सीमाओ तक एक देवताका राज व्यापे, वस एककी ही पूजा हो। चिंतनके समय उसकी नजर देवताओकी भीड पारकर सूरज़की गोलाईसे जा टकराई। उस चमकते आगके गोलेने उसकी आँखें चौंधियाँ दी। नज़र उस चमकके परे न जा सकी। इखनातूनने जाना कि उसके

चिन्तनका जवाव मिल गया, दिलके पुराने घावका मरहम, और उसने सूरजको अपना इष्ट देव वनाया।

पुरानी जातियोंके विश्वासमे सूरजके गोलेने वरावर एक कुतूहल पैदा किया था और उसे जाननेकी कोशिश सभी जातियोकी ओरसे हुई थी। ग्रीकोका प्रोमेथियम् उसीकी खोजमे उडा था, हिन्दू पुराणोके जटायुका भाई सम्पाती उसी अर्थ सूरजकी ओर उडा था और अपने पखोको झुलसाकर ज़मीनपर लौटा था। और उन उडानोका नतीजा हुआ था आग की जानकारी।

पर कोई यह जान न पाया कि सूरजके पीछेकी हस्ती क्या है। पर लगा सवको ही था कि हस्ती है कोई उसके पीछे, गो वे उसको जानते नही। ऐसा ही हमारे उपनिषदोको भी लगा था और उन्होने सूरजके बिम्ब या गोलेको ब्रह्मकी आँख कही थी।

इख़नातूनको भी कुछ ऐसा ही लगा, कि सूरजके गोलेके पीछे कोई ताकत है ज़रूर, गो वह उस ताकतको नही जानता, उपनिषदोके ऋषियोकी ही तरह। पर उन ऋषियोमे कितना पुराना था वह, करीव हज़ार साल पुराना! इख़नातूनने निश्चय किया कि कुदरतका सवसे महान्, प्रकृतिका सवसे सत्तावान, दुनियाका सवसे सारवान सत्य सूरजके गोलेके पीछेकी वह हस्ती है जिसे हम नही जानते। पर न जानना सत्ताके न होनेका सवूत नहीं है, अव्यक्तकी पूजा तो हो ही सकती है चाहे उसकी मूरत न वन सके। और सत्ता जितनी ही अमूर्त होती है, जितनी ही जानकारीके दायरेमे नही समा पाती उतनी ही अधिक वह व्यापक होती है, उतनी ही वह सारवान होती है, उतनी ही महान्। और जो उस अनजानी शक्ति तक हमारी मेधा नही पहुँच पाती, हमारी वुद्धि उसे नही पहचान पाती, उसका नूर, उस आगके दहकते गोले सूरजके रूपमे, तो दुनियापर वरस ही रहा है, हरचन्द ज़ाहिर है ही। वही सूरजके गोलेके पीछेकी हस्ती इख़नातूनके विश्वासकी दैवी शक्ति वनी, उसीको उसने पूजा।

पर देवता या हस्तीका बोध हो जाना एक बात है, उसका प्रचार बिलकुल दूसरी। ज्ञान जब इलहाम होता है, सत्यका जब दर्शन होता है, तब सवाल यह उठता है कि जानकारीकी सच्चाई, इलहामका ज्ञान अपने तक ही सीमित रक्खा जाय या दुनियामे इसे बाँटा जाय, उसका लाभ दूसरोंको भी कराया जाय। बुद्धने जब ज्ञान पाया तब यही सवाल उनके सामने उठा और उन्होंने उसे दूसरोमे बाँटनेका निश्चय किया। इतना ही नही बौद्ध धर्ममें जो अकेले निर्वाण पानेकी कोशिश है उससे समझदारोंने हीनयान कहा यानी छोटी नाव जिसपर केवल एक ही इंसान अपने स्वार्थका टोकरा लेकर चढ सकता है। पर उसी धर्ममे जब उस बोधिसत्त्वकी समझ जगी, जिसने कहा कि जब तक एक जनकी भी पहुँचके बाहर निर्वाण रह जायगा तब तक मैं निर्वाण न लूँगा, तब और इसीसे वह दृष्टि महायानकी दृष्टि कहलाई जिसके बडे जहाजपर संसारके सारे प्राणी चढकर भवसागर पार कर सकते हैं।

जो पाता है वह देकर ही रहता है। इखनातूनने पाया था और पाई हुई चीज़का अकेले तक ही इस्तेमाल उसे स्वार्थपर लगा और उसने तय किया कि वह देकर ही रहेगा। मगर मिस्रकी दुनिया तकको नये सत्यको पहुँचना कुछ आसान न था, सामने अन्धविश्वासोंकी, परम्पराकी, देवताओंकी, उनके शक्तिमान पुजारियोंकी मोटी मज़बूत और अटूट दीवार खडी थी। पर वैसी ही अटूट इखनातूनकी आस्था भी थी, उतनी ही दृढ उसका संकल्प भी था। और उसने उससे लोहा लेनेका दृढ निश्चय कर लिया। यह नयेका पुरानेके विरुद्ध विद्रोह था। नये और पुरानेमें घमासान छिड गया।

इस लडाईमे उसकी-सी ही महाप्राण उसकी बहन और बीबी नेफ़ेतेते कमर कसकर मददको उसकी बगलमे खडी हुई। रूहों और नरकके देवता ओसिरिस और उसकी बीबी ईसिस, प्तेह और सेतरा और आमेन आदि देवताओंकी भारी कतारको सूरजके पीछेकी हस्ती वाले व्यापक देवताके ज्ञानसे इखनातूनने बेधना चाहा। वह काम और मुश्किल इस वजहसे हो गया था

कि रा और आमेन सूरजके ही नाम थे जिसकी पूजा सदियो पहलेसे मिस्रमे होती आयी थी और इसीलिए सूरजके नये देवता अतोनको रा और आमेनके विश्वासी लोगोको समझा पाना ज़रा मुश्किल था। यह बता पाना और कठिन था कि सूरज या सूरजका गोला अतोन स्वय वह विश्व-व्यापी देवता नही है, उसके पीछेकी शक्ति वह हस्ती है जिसका सूचक सूरजका गोला है और जो स्वय दुनियाकी हर चीज़में रम रहा है, जो अकेला है, फकत अकेला और जिसके परे दूसरा कुछ नही है, जो अपने ही नूरसे रोशन है, जो चराचरका कर्ता है। शकराचार्यके इस अद्वैत ब्रह्मका निरूपण, इजील-की पुरानी पोथियोंके नवियोंके एकेश्वरवाद, मुहम्मदके एक अल्लाहके इल्हाम होनेके सदियो-सदियो पहले इख़नातून इन महात्माओके विचारोंके बीजका आदि रूपमे प्रचार कर चुका था। और तव वह केवल १५ सालका था। ३० सालकी उम्रमें सिकन्दरने जहान् जीता, ३० सालकी उम्रमे शकराचार्यने अपने वेदान्तसे भारतकी दिग्विजय की, उनकी आधी, १५ सालकी, उम्रमे इख़नातूनने अपने अतोनके एकेश्वरवादकी महिमा गाई। एक भगवान्को सारे चराचरके आदि और अन्तका कारण माननेवाला इतिहासमे यह पहला एकेश्वरवादी धर्म था।

पुराने देवताओके पुजारियोने विद्रोह किया। पुराने राजाओकी राजधानी थीविज़ थी। इख़नातूनने सूरजके नामपर अपनी नई राजधानी वसाई और उस राजधानीके वाहर वह कभी न निकला। राजधानी आख़ेतातेनकी चहारदीवारीके भीतर वने रहना उसके लिए आसान इसलिए और भी हो गया कि उसने अशोकसे हज़ार वरस पहले यह तय कर लिया था कि वह देश जीतने और लडाई लडनेके लिए अपनी नगरीसे वाहर नही जायगा। वह गया भी नही। दूरके सूवोने करवट ली पर वह हिला नही, अपने नये मज़हवका प्रचार करता रहा।

पुराने देवताओंके पुजारियोंने कुफ्रका फतवा दिया और उसने, जवाबमे, उनकी माफी छीन ली, उनकी दौलत ले ली, उनके देवताओंके इलाके ले लिये। इस सम्बन्धमे इखनातूनने काफी सख्तीसे काम लिया और खासी कट्टरता दिखायी। उसने पुराने देवताओकी पूजा साम्राज्यमे वन्द कर दी और उनके मन्दिर वीरान कर दिये। उसके अपने देवता अतोनके दुश्मन देवता आमेनके लेखोंमें जहाँ-जहाँ नाम लिखे थे उसने सर्वत्र मिटवा दिये। उसके पिताका नाम आमेनहोतेप था जिसमे 'आमेन' शब्द लगा हुआ था। नतीजा यह हुआ कि जहाँ-जहाँ पिताका नाम आया था वहाँ-वहाँ उन पुराने देवताका नाम होनेके कारण पिताका आधा नाम भी मिटाना पडा! अफसोस, पर कट्टरताका यह नतीजा तो होकर ही रहता है!

१५ सालके उस वालक इखनातूनका वह एकेश्वरवादका सिद्धान्त तो निश्चय १३ वर्षके वाद उसके मरनेपर उसके शत्रुओने मिटा दिया, पर धर्म और दर्शनके इतिहासमे दोनो अमर हो गये—इखनातून भी उसके मजहबका सिद्धान्त भी।

इखनातूनकी दिमागी सूझसे वढकर अपने नये धर्मके प्रचारकी, इन्कलाबकी उसकी भावना थी, और उससे वढकर उसके प्रचारके लिए प्यार भरे शब्दोका उसका व्यवहार था। इखनातून कवि भी था और अपने देवताके जमालको जिन पक्तियोमे उसने व्यक्त किया है वे उपनिषद्के उद्गारोमे कम चमत्कारी नही हैं, और अशोककी तरह हियासे निकलकर सुनने और पढनेवालोकी हियामें जमकर बैठ जाती थी। तेल एल अमरना की चट्टानोपर खुदी इखनातूनकी सूरज या आतोनके पीछेकी हस्तीके जलवेमे वनाई कुछ पक्तियाँ ये हैं —

> जब तू पच्छिमी आसमानके पीछे डूब जाता है,
> जगत् अँधेरेमे डूब जाता है, मृतकोकी तरह;
> हर सिंह तव अपनी माँदसे निकल पड़ता है;

साँप अपनी बिलोसे निकल पडते हैं, डसने लगते है;
अंधकारका राज फैल चलता है, सन्नाटा दुनियापर अपना साया
डालता चला जाता है।

× × ×

चमक उठती है धरा जब तू क्षितिजसे निकल पडता है।
जब तू आसमानकी चोटीपर अतोनकी आँखसे दिनमे देखता है,
अँधेरेका लोप हो जाता है।
जब तेरी किरनें पसरने लगती है, इसान मुसकरा उठता है,
जाग उठता है, अपने पैरोपर खडा हो जाता है, तू ही उसे
जगाता है।
अपने अंगोको वह धो डालता है, लेबासको पहन लेता है;
फिर उगते हुए तुम्हारे लाल गोलेको हाथ उठाकर पूजता है,
तुमको माथा टेकता है।

× × ×

नावें नीलकी धारामे चल पड़ती हैं, धाराके अनुकूल भी विप-
रीत भी।
सडकें और पगडडियाँ खुल पडती हैं, कि तू उग चुका है।
तुम्हारी किरनोको परसनेके लिए नदीकी मछलियाँ उछल पड़ती हैं,
और तुम्हारी किरनें फैले समदरकी छातीमे कौंध जाती हैं।
तू ही माँके गर्भमे शिशुको सिरजता है,
आदमीमे आदमीका बीज रखता है,
तू ही कोखमे शिशुको प्यारसे रखता है जिससे वह रो न पड़े,
धाय है तू कोखके बालकके लिए।
और तू ही जिसे सिरजता है उसमे साँस डालता है,
और जब वह माँकी कोखसे धरापर गिरता है,

उसके कण्ठमे आवाज़ डालता है,
उसकी ज़रूरतें पूरी करता है।

× × ×

तेरे कामोको भला गिन कौन सकता है ?
और तेरे काम हमारे नज़रसे ओझल हैं, नजरसे परे।
और मेरे देवता, मेरे मात्र देवता, जिसकी शक्तिका कोई दावेदार नही,
तूने ही यह ज़मीन सिरजी, अपने मनके मुताविक।

× × ×

तू मेरे हियेमें वसा है, तुझे कोई दूसरा जानता भी नहीं,
अकेला मै, वस मै तेरा बेटा इख़नातून, जान पाया हूँ तुझे।
और तूने ही उसे इस लायक वनाया है कि वह तेरी हस्तीको जान ले।

बाबुलका व्यापार : १३ :

जिस प्रकार आल्प्स पार करनेपर यूरोपियनको एक नई दुनियाका अनुभव होता है, उसी प्रकार एशियायी पर्यटकको भी फारस, मीडिया या अजेमी ईराककी पहाड़ी भूमिमे उतरकर अरबी ईराककी राजधानी आधुनिक बग़दाद या प्राचीन बाबुलके मैदानमे पहुँचनेपर होता है। वहाँके निवासियोके रस्म-रिवाज़, उनके रहनेके तरीके, पहनावे सभी कुछ नये होते है। एशिया और मीडियाकी पोशाक यद्यपि लम्बी होती है फिर भी आदमीके बदनपर चुस्त और सही रहती है परन्तु वहाँ बाबुलमे इसके विरुद्ध पोशाक ढीली-ढाली नीचे तक लटकती है। काली मेढेकी खालकी टोपीके स्थानपर ऊँची पगडीके अनेक घेरे होते हैं और छुरी लगी कमरबन्दकी जगह कीमती शाल और बहुमूल्य ख़जर ले लेते है। एक आधुनिक यात्री लिखता है कि "ख़लीफाके नगरमे प्रवेशकर उसकी सडकोको मैने हर प्रकारके कपडे पहने और हर रगके आदमियोसे भरा पाया। फारसके मकान छोटे है परन्तु बगदादके मकान कई मज़िल ऊँचे थे और उनकी जालीदार खिडकियाँ बन्द थी। विस्तृत बाज़ार लोगोंसे भरा था और मेरे चारो ओर असख्य दुकाने और काफी भवन थे। स्वरोकी आवाज़ और रेशमी पोशाककी सरसराहटसे जान पडता था कि जैसे मधुमक्खियोंके छत्तेके पास पहुँच गये हो। क्योकि यद्यपि आज बग़दादमे उसके प्राचीन गौरवकी छाया भर रह गई है तथापि वह अब भी एशियाका विशालकाय सराय है।" परन्तु वस्तुत जीवनकी भाव-भगियो और तौर-तरीकोमे कितना अन्तर पड गया है! फ़ारसी दरबारकी रौनक गायब हो गई है, समाजकी शक्ल बदल गई है, नर-नारियोंके पारस्परिक सम्बन्ध अब उपेक्षाकृत कम नियन्त्रित है और

प्रत्येक वस्तुसे आमोद-प्रमोद और नगे विलासका परिचय मिलता है। यद्यपि ग्रीष्म ऋतुमे चमकती हुई धूपसे दिनमे भागकर निवासी अपने तहखानोमे शरण लेते है तथापि रात्रिमे खुली छतोपर, खुली हवामे शीतलताके वे आनन्द लेते है। नवम्बरसे फरवरी तकका सुदर मौसम ग्रीष्मकी असुविधाओका प्रतिकार कर देता है, यद्यपि वासना उमड पडती है और इन्द्रियोको हर प्रकारकी मोहक उत्तेजना मिलने लगती है।

जहाँ तक कि इस रूपका सम्बन्ध है, सम्भवत. प्राचीनोने भी इसी प्रकार अनुभव किया होगा। इसमें क्या कोई सन्देह है कि जो उन दिनो फरातसे होकर फारस और मीडियाके राजकीय नगरोसे व्यापारके उस महान् केन्द्रको जाते थे वे यही अनुभव न करते थे ? परन्तु आधुनिक बगदाद उस पूर्वी जगत्की प्राचीन राजधानीके सामने क्या है ? जब पूर्व और पच्छिमके और दक्षिणके व्यापार करनेवाले जहाजोंके व्यापारी वहाँ एकत्र होते होगे, तब उसके नगरो और मैदानोमे कितनी भीड दीख पडती होगी, जब खल्दी और ईरानी शाह अपने असख्य अनुचरोके साथ यहाँ निवास करते होगे तब इस नगरका गौरव कैसा रहा होगा, जब यह ससारके व्यापार और सारी जातियोका आकर्षणका केन्द्र था तब उसकी शालीनता कैसी रही होगी ? तब उन मैदानोमे कितना जीवन इठलाता होगा, जहाँ आज भयानक नीरवता है, जो अब तक बहुतोकी पुकार या सिहकी गर्जनसे ही भग होती है।

यहूदी और ग्रीक लेखकोने प्राचीन बाबुलका जो वृत्तान्त छोडा है, उससे वहाँके धन और गौरवका पता चलता है। यद्यपि इसमे सन्देह नही कि उन्ही वृत्तान्तोंसे अनियमित विलास और उच्छृङ्खल व्यभिचारका परिचय भी मिला है। बाबुलियोकी दावते असीम उन्मादकी होती थी और दावतोके बाद जिस उच्छृङ्खल आचरणका आरम्भ होता था उसका अनुमान करना कठिन है। आचारभ्रष्टता और नगी विलासिताका जो रूप प्राचीन बाबुली जीवनके इन अवसरोपर मिलता है वह इतिहासकी अन्य जातियोंमें

सर्वथा अप्राप्य है। जब एक ऐसी ही घृणित दावतके अवसरपर विजेता फारसियोने प्रवेश किया तब बाबुलके अभिजातकुलीय और राजा उन्मत्त विलासितामे डूब रहे थे। बेल्शज्जार हजारो सम्भ्रान्त दरबारियोके साथ शराबके दौरोमे डूबा हुआ था जब अदृश्य हाथने राजकीय भवनकी दीवार-पर उसके अभाग्यकी भावी लिखी और उसे भयानक विपत्तिका बोध कराया। परन्तु आचरणकी यह भीषण उच्छृङ्खलता और पतन जितना पुरुषके आचरणमें प्रदर्शित होते उससे कही बढकर व्यापार नारियोके जीवनमे दृष्टिगोचर होता। पूर्वात्य अन्त पुर और विशेषकर पूर्वी सुल्तानोंके हरम गरम और परदाकी पराकाष्ठा रहे है परन्तु बाबुली नारीके चरित्रमे उसका कही आभास नही। इसी कारण नबी जब बाबुलके पतनको धिक्कारता है तब उसका वर्णन उस उन्मत्त विलासिनीके रूपमे करता है जो अपने नारीत्वसे उठकर दासत्वके गढेमें उचित ही जा गिरती है। इन विलासकी दावतोमें नारी सर्वथा नगी शामिल होती थी और अपनी बेपर्दगीके साथ ही वह शरमकी भी तिलाजलि दे देती थी। हेरोदोतस् तो यहाँ तक लिखता है कि बाबुलमे एक धार्मिक विधान भी था जिसके अनु-सार प्रत्येक स्त्रीको मिलित्ताके मन्दिरमे जीवनमे एक बार अपरिचितके साथ समागम करना पडता था और इस सम्बन्धमे वह अपने साथीको अपरिचित कहकर छोड नही सकती थी। इस विलासिताका प्रधान कारण निश्चय वह अनन्त धनराशि और वैभव था जो बाबुलके व्यापार द्वारा उस नगरमे धारासार बरसता था। जलवायु और धर्म उस घृणित व्यापारमे सहायक थे।

व्यापारकी दृष्टिसे बाबुलकी स्थिति एशियाके प्रत्येक प्रदेशमें सम्भवत अच्छी थी। स्थल मार्गसे व्यापार तो उसके लिए सुगम था ही नदीका जलमार्ग भी व्यापार की कम सुविधा नही उत्पन्न करता था। दजला और फरात नामकी दो बडी नदियाँ इसके दोनो ओर बहती थी। वे एशियाके भीतरी देशोके साथ इसके आवागमनके दो प्राकृतिक साधन

वन गई थी, और निश्चय फारसकी खाडीमे पोत-व्यापारियोकी सुविधाएँ अरवकी खाडीसे कही अधिक थी। भारतका व्यापार भी वाबुलके साथ था और उसके कुत्तो तथा सिन्धु नामक मलमल कपडेके वाबुल आनेका वृत्तान्त तो वाइविलमे भी मिलता है।

प्राचीन लेखक वावुल निवासियोको विलासी और वैभवप्रिय लिखते हैं। उनके विलासके अनेक साधन और वस्तुएँ तो ऐसी थी जो वावुलमे अप्राप्य थी और दूर देशसे आया करती थी। उनके लिवासमे सुविधा और उपादेयताके वजाय वहुमूल्यतापर कही अधिक ध्यान रक्खा जाता था। उनके सार्वजनिक अवसरो और यज्ञोमे धनका नितान्त अपव्यय होता था और जिन वहुमूल्य सुगन्ध द्रव्योपर वे इतना खर्च करते थे वे केवल विदेशोसे ही आते थे। क़ीमती तथा मालकी कच्ची सामग्री भी वाहरसे ही आती थी; उस देशकी मिट्टीमें वह किसी प्रकार उपजाई न जा सकती थी। उनकी अनेक नागरिक सस्थाएँ भी यह सिद्ध करती हैं कि उस नगरमें विदेशियोका निरन्तर आना-जाना होता रहता था। इसीसे उनके उस व्यवहारका अर्थ लग सकता है जो वे अपने वीमारोसे करते थे, उनके वीमारो वाज़ारमें खडे कर दिये जाते जिससे आने-जानेवाले उनकी वीमारीके सम्वन्धमें प्रश्न करें और सहानुभूति अथवा अन्य प्रकारके अपने ज्ञानसे उन्हें रोगमुक्त करनेमे सहायता करे। मिलित्ताके मन्दिरमें होनेवाली वेश्यावृत्ति तथा कुमारियोकी नीलामी भी इसी सिद्धान्तसे समझी जा सकती है।

इन व्यवहारोसे निष्कर्ष निकालना चाहे जितना सही हो, वावुलके व्यापारके सम्वन्धमें विस्तृत वृत्तान्त प्रस्तुत करना निश्चय कठिन है। व्यापार सम्वन्धी सामग्री ग्रीक और इव्रानी लेखकोके वृत्तान्तोमें ही कुछ हद तक मिल सकती है। यद्यपि इसमें सन्देह नही कि तत्सवन्धी श्रम व्यर्थ न जायगा और उसका परिणाम वह चित्र होगा जो, चाहे वह

अपने सर्वांग पूर्ण न हो, हमारे सामने एक स्पष्ट रूप-रेखा अवश्य प्रस्तुत कर देगा।

इस सम्बन्धमे बाबुल द्वारा उत्पादित वस्तुओंपर एक नज़र डाल लेना उपादेय होगा। हम जानते हैं कि उनके वस्त्र कई प्रकारसे बुने होते थे। वे कुछ तो ऊन, कुछ रेशो और कुछ सम्भवत सूतके बने होते थे। हेरोदोतस लिखता है —वे रेशे अथवा सूतका चोगा पहनते है जो पैरो तक लटकता है, उसके ऊपर एक ऊनी कपडा और एक सफेद कुर्ता पहनते हैं जो सबको ढक लेता है। निश्चय इतने भारी वसनकी उस देशमें आवश्यकता न थी और वह सम्भवत प्रदर्शनप्रियताके कारण ही प्रयुक्त होता होगा, हाँ, सर्दियोमें उसका आकार-प्रकार अवश्य बदल दिया जाता होगा। उनकी बुनावटकी वस्तुएँ अपने देशमें ही नही उपयुक्त होती थी वरन् विदेशोको भी भेजी जाती थी। गलीचे जितने रग-विरगे बाबुलमें बनते थे उतने एशियाके किसी अन्य देशमें नही। उनके ऊपर जो अनन्त चित्र बनते थे उनमेसे एक वह भारतीय काल्पनिक जीव भी था जिसका सिर गरुड पक्षीका होता था, और जिसकी आकृति पर्सियो-लिसके भग्नावशेषोमें अनेक बार मिल चुकी है। बाबुलको उसका ज्ञान सम्भवत: फारसके ज़रिये हुआ। विदेशोमें इनका उपयोग हरमो और राजसभाओमे होता था। फारसमे तो जितना इनका उपयोग होता उतना किसी अन्य देशमें न था। ईरानी अमीर केवल फर्शको ही नही अपने पलग और सोफोको भी इन गलीचोंसे ढक लेते थे। उनकी प्राचीन समाधियाँ तो बराबर इन्हीसे अलकृत होती थी। सम्राट् कुरुपकी समाधि-पर एक नीले गलीचेका अलकरण है।

बाबुली वस्त्रोकी बाहर कम माँग न थी। उनमेसे एक प्रकारके वस्त्र, जिनको ग्रीक सिन्दोनिज़ कहते थे, अत्यधिक मात्रामें प्रसिद्ध थे। ये साधारणत सूतके बने होते थे और ये अपने रगोकी चमक और बुनावटकी बारीकीके कारण अत्यन्त मँहगे दामो बिकते थे। मीडियामे

वने वस्त्रोंसे उनकी तुलना की जाती और वे राजाके परिधानमे ही काम आते थे। कुरुपकी समाधिपर भी वे मिले है। उस समाधिपर ईरानी सम्राट् द्वारा जीवनमें उपयुक्त होनेवाली सारी वस्तुओका सग्रह है। यदि हम इस बातको याद रक्खे कि वावुल एक ओर आयोनियाँ और दूसरी ओर अरव तथा सीरियाके कितना निकट था तो हमे वहाँके वुने कपडो और गलीचोकी वारीकीपर कुछ भी आश्चर्य न होगा। आखिर इन देशोमे समारकी सबसे अच्छी रुई पैदा होती थी।

वुनाईके केन्द्र न केवल वावुलमे ही वरन् उस देशके अन्य नगरोंसे भी स्थापित थे जिन्हें फरात और दजलाके किनारे सेमीरेमिसने मीडिया और फारससे आई हुई वस्तुओंके वाजारोके रूपमे स्थापित किया था। इन्ही नगरोमे देशी व्यापारकी आढते भी थी। इनमे मुख्य नगर फरातके तटपर वावुलसे पन्द्रह मील नीचे अवस्थित था जिसका ज़िक्र इतिहासमे कुरुपके कालसे भी पहले हुआ है। ये ही नगर फ्लेक्स और सूतकी वुनी वस्तुओंके केन्द्र भी थे और वे इतिहासकार स्त्रावोके समय तक उनके केन्द्र वने रहे।

इनके अतिरिक्त वावुली विलासकी अनन्त वस्तुएँ अपने देशमें प्रस्तुत करते थे। अपने उष्ण वातावरणमे रक्षा पानेके लिए वे मीठा जल प्रस्तुत करते थे। टहलनेके लिए पशुओकी सुन्दर आकृतियोंसे अलकृत मूठोकी छडियाँ भी वावुली नागरिकके हाथमे रहती थी। इन छडियोकी मूँठे अक्सर रत्नजटित होती थी।

कीमती पत्थरोका प्रयोग मुहर करनेवाली अँगूठियोंके वनानेमे भी होता था और यह मुहर वावुली कागजातपर दस्तखतका काम देती थी। वहुमूल्य पत्थरोंकी कटाईका काम जितनी सफाई और खूबसूरतीसे वावुली करते थे शायद दुनियाकी किसी जातिने कभी नही किया। फ्रान्सीसी-दागके संग्रहमे जो एक गोल अँगूठीनुमा मुहर है वह लालकी वनी है। और उसके ऊपर एक सुन्दर छोटा अभिलेख खुदा है। उसके साथ ही

ढीले वावुली वस्त्रमे पक्षधारी इजेदकी सुन्दर मूर्ति भी है जो प्रत्येक हाथमे एक शुतुर्मुर्ग कुचल रही है। इसमे सन्देह नही कि इन वस्तुओके उत्पादनमे विदेशोका व्यापार विशेप सहायक सिद्ध हुआ होगा। चूँकि इनके कच्चे मालकी अभिप्राप्ति वहीसे हुई होगी।

ऊपरके वृत्तान्तसे स्पष्ट हो जायगा कि फारसके साम्राज्यके अनेक देशोसे वावुलका गहरा व्यापार-सम्बन्ध था। फारस और मीडियाके श्रीमान् ही न केवल कला द्वारा उत्पन्न वस्तुओंसे अपने मकानोको सजाते थे वरन् फारसका शाह भी अपने वहुसख्यक सभ्रान्त अनुचरोके साथ सालका वडा भाग उस नगरमे विताता था। इसके अतिरिक्त ईरानी साम्राज्यके वावुली सूवेदार क्षत्रप भी उसी नगरमे निवास करता था जिससे वहाँके ऐश्वर्य और वैभवमे पर्याप्त अभिवृद्धि होती थी। फारस और वावुलके इस घने सवन्धके कारण वावुल और सूसाके वीचका देश एशियामे सवसे अधिक आवाद और उर्वर हो गया। सूसा और वावुलके वीच एक प्रशान्त राजमार्ग भी था जिसपर विशाल ईरानी सेना विना किसी असुविधाके अपनी गाडियो और रथोके साथ एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँच जाया करती। फारसके पीछेके देशोके साथ वावुलका व्यापार-सवन्ध कितना घना था, यह कहना तो कठिन है परन्तु इसमे सन्देह नही कि भारत और उसके समीपके देशोसे भी उसका व्यापार होता था।

इन विदेशोसे वावुली जो चीजे मँगाते थे, कीमती पत्थर उनमे प्रवान था। इनका उपयोग जैसा ऊपर वताया जा चुका है मुद्रिकाओमे होता था। वतेसियस् तो स्पष्ट लिखता है कि यह पत्थर भारतसे आते थे जो उसके मरु प्रदेशकी सीमापर पाये जाते थे। आधुनिक यात्रियोके वृत्तान्तसे प्रमाणित है कि इस लेखकका वक्तव्य सर्वथा मान्य है और आज भी यहाँ अत्यन्त असाधारण रूपमे नीलम पाये जाते है। भारतके अतिरिक्त नीलम वाल्त्रीके रेगिस्तान और अन्य उत्तरवर्ती देशोमे भी पाया जाता था। थियोफेस्तस लिखता है कि "उनको खोजनेवाले घोडेपर चढकर वहाँ उत्तरी

हवाके समय जाते है और जब वह रेतको उडा देती है तब वे उन्हें प्राप्त करते है।" वह एक स्थानपर फिर लिखता है कि "बाख्त्रीमे लाये हुए सबसे अच्छे और बडे पन्ने तीरमे हरक्यूलिजके मन्दिरमें है" भारतसे आनेवाले रत्न पश्चिमी घाटके पहाडोमें भी मिलते थे। ये रत्न अधिकसे-अधिक संख्यामे भडोच या प्राचीन बेरीगाजा और कम्बादाके पास भी मिलते थे। इन्हींके पासके समुद्र तटसे पश्चिमी माझियोका सबन्ध भी था। ऊपर बताया जा चुका है कि बाबुलमे भारतसे कुत्ते भी आते थे। इन कुत्तोकी नस्ल ससारमे सबसे बडी और मजबूत होती थी और इसी कारण वे बनैले जन्तुओके शिकारमे काम आते थे। वे सिंह तकसे लड जाते थे और उनपर वे उन्हें देखते ही हमला करते थे। इस प्रकारके कुत्तोकी एक नस्ल सिकन्दरने भी पजाबमें देखी थी और एक कुत्तेको उसने शेरसे लडाया भी था। ईरानी तो शिकारसे बडा प्रेम करते थे और उसे व्यायाम समझते थे। इसी कारण ये कुत्ते भी उनकी आवश्यकता सिद्ध हुए और बादमे ऐशकी भी एक चीज़ समझे जाने लगे। ईरानी उन्हें बडी सख्यामे रखते और अपने साथ यात्राओ और युद्धोमे ले जाते थे। इन कुत्तोपर वे काफी धन व्यय करते थे। क्षयार्पके सम्बन्धमे हेरोदोतस् लिखता है कि वह अनन्त सख्यामे कुत्ते लेकर ग्रीसपर चढाई करने गया था। बाबुलका क्षत्रप एक तो कुत्तोको इतना पसन्द करता था कि उसके चार नगरोकी आय केवल इन्ही कुत्तोपर व्यय होती थी और वे नगर अन्य करोंसे मुक्त थे। इनमे व्यापार भी भारतसे काफी होता होगा यद्यपि इनकी नस्ल बाबुलमे भी कालान्तरमे उत्पन्न की जाने लगी होगी।

क्नेवियस्की रायमे, जहाँसे ये कुत्ते आते थे वहीसे बहुमूल्य पत्थर भी आते थे। और इस प्राचीन ग्रन्थकारका यह वृत्तान्त एक आधुनिक पर्यटकने अनुमोदित कर दिया है। वेनिसका यात्री मार्को पोलो अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें भारतके कुत्तोका भी वर्णन करता है। वह लिखता है कि वे इतने ताकतवर थे कि सिंहोको भी फाड डालते थे।

तीसरी वस्तु जो बाबुली इस भागमे प्राप्त करते थे वह थी कोचीन या भारतीय लाह। उसके अतिरिक्त अनेक रग भी वहाँसे आते थे। लाहके कीडे और उसके वृक्षका प्राचीनतम उल्लेख क्तेसियम्के वृत्तान्तमे मिलता है। उसकी रायमें यह उस देशका निवासी है जहाँसे सिनपुका निकास है। भारतीय इससे अपने वस्त्र रगते हैं जिनकी छवि फारसके रंगोंसे कही सुन्दर होती है। इनका एक और उपयोग भारतीय नारियाँ करती थी जिसका उल्लेख क्तेसियम् नही कर सका है। वे इससे अपने होठ और पाँवके तलवे भी रगती थी। सस्कृतके कवियोने इनसे रँगे होठो और विशेषकर पाँवोका प्रभूत वर्णन किया है।

इरैस्तोथेनीज़के आधारपर स्त्रावोने इस सम्बन्धमे जो लिखा है उससे उन वणिक्पथोका पता चलता है जिनसे होकर फारसके सीमावर्ती भारतीय प्रदेशोंसे माल ईरानी नगरो, विशेषकर बाबुलको, जाया करता था। वह वणिक्पथ उर्वर और घने आबाद प्रदेशोसे होता हुआ पहले उत्तर दिशाकी ओर जाता जिससे मीडिया और फारसके बीचकी मरुभूमिमे बसने वाली खूनी जातियोका खतरा न रहता। दक्षिणके रेगिस्तानसे कास्पियनकी राह चलकर यह हिरकेनिया और एरिया जा पहुँचता। एरियामें हिरकनी और पार्थव पहाडोंके निचले वनोसे होकर फिर यह पथ उत्तर बाख्त्री (बैक्ट्रिया) की ओर मुड जाता। इसी राहसे सिकन्दरने भी बाख्त्रीपर हमला किया था। और यद्यपि वह सुविधाके अनुसार पहाडी जातियोपर आक्रमणके अर्थ जब-तब यह मार्ग छोड देता था, बार-बार वह लौटकर इसीपर चल पडता था। एरियन इसको महान् आक्रमण-मार्ग कहता है।

एरिया तक तो भारतका वणिक्पथ यही था। यहाँसे दो रास्ते फूटते थे, एक उत्तरको बाख्त्री जाता था और दूसरा पूर्वकी ओर। पूर्वकी ओर जानेवाला मार्ग तीन रास्तोमे बँट जाता, जिसमेंसे एक सीधा भारत पहुँचता। दूसरा भी उसी ओरसे सभवत दक्षिण घूमकर पहुँचता और

तीसरा उत्तरकी ओर मुड जाता। इसी तीसरे मार्गके जरिये भारत और बाख्त्रीके बीच यातायात होता। उसकी राजधानीका नाम भी बाख्त्री था और वह पूर्वी एशियाका व्यापार-केन्द्र था।

उत्तरी भारतके सौदागर उत्तरकी राहसे बाख्त्री पहुँचते और वहाँ अपने रग बेचते। फिर वे कारवाँ बनाकर गोबीके रेगिस्तानकी ओर पहुँचते जहाँसे पश्चिमी एशियाके लिए रग और सर्वोत्तम ऊन जाता। इसी गोबी रेगिस्तानमे सोना पाया जाता था। क्तेसियस् लिखता है . "जिस मरुभूमिमे सोना निकलता है और जहाँ गरुड होता है वह अत्यन्त उजाड है। भारतीयोके पडोसी बाख्त्री निवासी कहते है कि गरुड स्वर्णकी रक्षा करते है, यद्यपि भारतीय इसे अस्वीकार करते है। उनका कहना है कि गरुड केवल अपने बच्चोकी रक्षाके लिए मुस्तैद रहते है। भारतीय हजार दो हजारकी सख्यामें सशस्त्र होकर उस मरुभूमिमें जाते है। परन्तु वे एक बार उधर जाकर तीन-चार वर्षसे पूर्व नही लौट पाते।" स्पष्ट है कि ये भारतीय उत्तरी प्रदेशोंके थे और उल्लिखित मरुभूमि गोबीकी थी।

स्त्राबोने लिखा है कि किस मार्गसे बाबुलके भाण्ड मेडिटेरेनियन सागर तटको ले जाये जाते थे। यह मार्ग मैसोपोतामियाके ठीक बीचसे उत्तरकी ओर चलता और पचीस दिन चलकर अन्थेमूसियाके पास फरात पहुँचता। वहाँसे पश्चिम मुड यह सागर तटपर जा पहुँचता। इस मार्गपर प्रबल कारवाँ ही चल सकते थे क्योकि राहमे खूनी जातियोंके आक्रमणका बडा भय रहता था। अनेक बार तो उनको लूटसे बचनेका कर देकर जाना होता। यही मार्ग सभवत ईरानी शासनमे भी प्रयुक्त होता रहा।

सारदिस और एशिया माइनरके अन्य ग्रीक व्यापारी नगरोको जाने-वाले एक दूसरे सैन्य-मार्गका विस्तृत वर्णन हेरोदोतस्ने किया है। इसे ईरानी सम्राटोने प्रभूत व्ययसे निर्मित किया था। इसके निर्माणका प्रधान कारण और आवश्यकता राजनीतिक थी। ईरानी ग्रीकोंके साथ

युद्धके अवसरोपर जितनी प्रधानता एशिया माइनरको देते उतनी अपने और किसी सूवेको नही और उस प्रान्तके साथ वे सर्वदा यातायात द्वारा सम्पर्क वनाये रखना चाहते। परन्तु हेरोदोतस्के वृत्तान्तसे तो प्रमाणित है कि ईरानी नगरोको एशिया माइनरसे जोडनेवाले इस प्रशस्त मार्गपर कारवाँ भी चल्ते थे। उसका कहना है कि यह मार्ग वावुलसे नही सूसासे चलता था परन्तु इन दोनो नगरोका पारस्परिक सम्वन्ध इतना गहरा था कि इस वक्तव्यसे मार्गके मूलके विपयमे कोई विशेप अन्तर नही पडता।

इसी प्राचीन मार्गपर इस्पहान और स्मिरनाके वीच आज भी कारवाँ चलते है। फ्रेंच यात्री तावर्नियेने इसका पूरा वर्णन किया है। आज यह मार्ग स्मिरनासे तोकात और तोकातसे एरिवान जाता है। इस मार्गके केवल उत्तरार्द्धमे परिवर्तन हुआ है क्योकि इस्पहान जानेके लिए यात्रियोको उस मिएह झीलके वाद उत्तर-पूर्व फिर जाना पडता है। इसके विरुद्ध प्राचीन यात्री इतना पूर्व न जाकर दक्षिणकी ओर वढ दजलाका तट पकड लेते थे।

फिर एक विपयमें, हेरोदोतस्के वृत्तान्तानुसार, प्राचीन और अर्वाचीन मार्गोंमे समता थी, दोनो लम्वी राहका अवलम्वन करते जिससे वे आवाद प्रदेशोसे होकर जा सकें और दस्युओके आक्रमणोसे वच सकें। सीधा रास्ता मेसोपोतामियाँके मैदानोंसे होकर जाता जहाँ रक्तपिपासु जातियोकी घुमक्कड प्रवृत्तियोके कारण रक्षाका सर्वथा अभाव होता। इसी कारण प्राचीन और अर्वाचीन दोनो कालोमें यात्राका मार्ग उत्तरकी ओरसे अर्मनी पहाडोकी छायामे होकर जाता जिससे यात्रीकी रक्षा हो सकती।

कारवाँकी यात्राकी विविध मजिले नियत थी। हेरोदोतस्के विचारसे इन मज़िलोकी दूरी सात-आठ घटोकी यात्रा थी। और तावर्नियेके वृत्तान्त-मे प्रमाणित है कि ठीक इतनी ही दूरी मालसे लदे हुए ऊँटके कारवाँ एक दिनमें तै कर पाते थे। परन्तु नि सन्देह घोडोंके कारवाँ इस परिमाणसे

कही अधिक तेज़ चलते थे। चूँकि यह मार्ग अत्यन्त निरापद था, इसमे संदेह नही कि सौदागर और यात्री अकेले भी इसपर चला करते थे।

वावुलका एक तीसरा व्यवसाय-मार्ग अर्मनीकी दिशामे जाता था, उत्तरकी ओर। अर्मनी सौदागरोको फरातके जलमार्गका लाभ था और उसी मार्गसे वे अपनी वस्तुएँ, विशेषकर शराव, वावुल पहुँचाते थे। हेरोदोतस्ने इस जल-यात्राका उल्लेख किया है और उसके वृत्तान्तसे जान पडता है कि अर्मनी जहाजो या वँधे वेडोकी वनावट दजलामे चलनेवाले उन आजके ही जहाज़ोकी-सी थी जिन्हे 'किलेत' कहते हैं। इन नावोका पजर मात्र लकडीका था जिसके ऊपर चमडा चढा होता था और नरकटसे वह नीचे पाट दिया जाता। उसका आकार अण्डेका-सा हो जाता। उनमे सौंदर्यकी चीज़ें विशेषकर शरावके भारी पीपे भर दिये जाते और डाँडोंके सहारे धारामे वे चल पडती। ये नावें वडी-छोटी सभी प्रकारकी थीं। हेरोदोतस्ने कुछ १२००० टन तक माल ढोनेवाली देखी थी। वावुल पहुँचकर सौदागर मालके साथ-साथ नावका पंजर वेच डालते और साथ लाये गधोपर खाले लादकर स्वदेश लौट जाते। वह लिखता है कि धारा इतनी तेज़ थी कि नावें उसमे लौट ही न सकती थी। इसी प्रकार जर्मनीमें भी जो नावें डैन्यूवकी राह विएना जाती है वे मालके साथ स्वय भी विक जाती हैं।

इस प्रकार वावुलका व्यवसाय एशियाके दूर-दूरके देशोको छूता था, अपने देशकी उपज वहाँ पहुँचाने और उससे अधिक अपनी आवश्यकताकी वस्तुएँ प्राप्त करनेके लिए। वावुलका नगर-जीवन इतना विलासप्रिय था कि दूसरी विविध आवश्यकताओकी पूर्ति केवल उस देशकी उर्वरतासे न हो सकनी थी, उस कालकी सारी सभ्य जातियोंके व्यापार का उसमे योग था।

अफ्रीकाका महाद्वीप अब-महाद्वीप कहलाता है क्योकि उसके सबसे बडे हिस्सेपर अज्ञानका अँधेरा छाया रहता है। समुद्रसे लगे चारो किनारोको छोडकर बाकी समूचा महाद्वीप घने आदिम जगलोंसे ढका हुआ है। पच्छिम-दक्खिन और पूरबके किनारोपर कुछ गहराई तक समय-समयपर यूरोपकी जातियोने हमले करके अपनी बस्तियाँ बसा ली है या अपने साम्राज्य खडे कर लिये है। सहाराके उत्तरमे भू-मध्य सागर तक हब्शी-इस्लामी या अरबी जातियाँ बसी है। मिस्रपर तो बडे प्राचीन-कालसे ही एक महान् सभ्यताका अधिकार हो चुका था और वहाँ अरबो-की हुकूमत जमनेके बाद नूबिया और सहारा तककी सारी हब्शी जातियाँ मुसलमान हो गई। पास ही अबीसीनिया या एथियोपियाका ससारमे सबसे पुराना ईसाई राज्य है। इन जगहोमें मिली-जुली हब्शी जातियाँ रहती हैं जो, चाहे मजहबसे मुसलमान या ईसाई है, बोलती वे अपनी-अपनी हब्शी बोलियाँ ही है।

सहाराके दक्खिन दूर तक तीनो दिशाओमें फैली अनेकानेक हब्शी जातियाँ रहती हैं जिनकी अपनी-अपनी बोलिया है, अपनी-अपनी लोक-कथाएँ है, अपनी-अपनी किवदन्तियाँ और अपनी-अपनी कहावतें है। यही उनका साहित्य है—लोककथाओ, किवदन्तियो और कहावतोंके आधारपर खडा। इनमे उन हब्शियोका भी साहित्य है जो अब अफ्रीकामे नही रहते, कनाडा और अमेरिकामें रहते है और जिन्हे "नीग्रो" कहते है। इन्हे यूरोपीय जहाजोंके मालिक अफ्रीकाके सागर तीरकी इनकी बस्तियोपर छापे मारकर सदियो पहले पकड ले गये थे और उन्हे यूरोपके अनेक

देशोमे और विशेषकर अमेरिकामें गुलाम वनाकर रख लिया था। गुलामीके खिलाफ कानून वन जानेके कारण यूरोपसे तो नीग्रो हव्शियोका खात्मा हो गया पर विशेषत. उत्तरी और दक्खिनी अमेरिकामे सव जगह वडी सख्यामे आज भी वे वसे मिलते है। स्वाभाविक ही वे अपनी लोककथाओका साहित्य जहाँ-जहाँ वे गये हैं वहाँ-वहाँ अपने साथ लेते गये है। जहाँ-जहाँ वे वसे हैं वेशक वहाँ-वहाँके पुराने वाशिन्दोकी कथाओका असर उनकी कथाओपर पडा है। इस प्रकार अमरीकी नीग्रो-हव्शियोके साहित्यपर रेड-इडियनोके साहित्यका खासा असर पडा है, यो उनका हृदय शुद्ध अफ्रीकी आज भी वना हुआ है।

साहित्यसे हमारा मतलव यहाँ सिर्फ लोक-साहित्य यानी लोक-कथाओ और किवदन्तियोंसे है। कारण कि ललित साहित्य इतिहासकी ही तरह प्रगतिशील और सभ्यताका अग होता है। इतिहास और सभ्यता दोनो तेज़ होते हुए परिवर्तनसे वढते है। आदिम जातियोका रहना-सहना परम्पराओ और रूढियोसे इस कदर जकडा रहता है कि उनकी जीवनचर्यामे परिवर्तन वहुत कम होते हैं। इमीसे उनमे सभ्यता नही, इतिहास नही, ललितसाहित्य नही।

पर इसी कारण लोक-साहित्यकी उन जातियोमे विशेष अधिकता होती है और उनके जीवनकी रग-रगमे कहानियाँ और किवदन्तियाँ रसी रहती हैं। यहाँ हम उन्ही अफ्रीकी हव्शी जातियोकी लोककथाओ, किवदन्तियो, गरज़ कि उनके साहित्यका जिक्र करेगे।

पिछले सालोमे अनेक यूरोपीय विद्वानोने जुलू, थोगा, लाम्वा, इला वुदू, चगा, कम्वा, योरुवा, अशान्ती, हौसा, गुरो, गागू, आदि अनेक हव्शी जातियोमे प्रचलित आठ-दस हजार कहानियाँ छापी है। पर इन कहानियोकी सख्या इतनी ही नही, लाखोमें है और पण्डितोका अटकल हैं कि ऐसी कहानियोकी सख्या क़रीव ढाई-तीन लाख तक पहुँच जायेगी।

स्वय इन जातियोके सयानोने अपने इस लोकसाहित्यमें वर्गीकरण किये हैं और इन्होने अपने पौराणिक विश्वासो और साधारण लोककथाओ या किंवदन्तियोमे भेद किये है। इस प्रकार उन्होने अपने साहित्यके प्राय ६ वर्ग किये है। पहला वर्ग उन किंवदन्तियो या पारिवारिक कहानियोका है जिनमें जानवरोका भी इस्तेमाल हुआ है और जानवर आदमीकी तरह वातचीत और आचरण करते हैं। इन कहानियोको वहाँ "मि-सोसो" कहते है। दूसरा वर्ग "माका" कहलाता है जिनमें साधारण चुटीली कहानियाँ होती हैं। तीसरा वर्ग प्राय ऐतिहासिक कहानियोका है और उनमे जातियोकी पुरानी घटनाओका जिक्र होता है। उन्हें "मालुन्दा" कहते हैं। चौथा वर्ग कहावतोका है और "जि-साबू" कहलाता है। पाँचवें वर्गमें गीत है और छठेमे पहेलियाँ। पहेलियोको हब्शी लोग 'जिनोगो नोगो' कहते हैं। इस साहित्यका एक दूसरा वर्गीकरण इस प्रकार भी किया जा सकता है—

(१) जानवर सम्बन्धी कहानियाँ, (२) दैत्य और दानव सम्बन्धी कहानियाँ, (३) हब्शियोके जीवन सम्बन्धी कहानियाँ, (४) पौराणिक कथाएँ और किंवदन्तियाँ और (५) वाहरसे आई हुई कहानियाँ।

इन कहानियोमे अनेक ऐसी चक्कदार हैं जिनमे कहानीके भीतर कहानी खुलती चली जाती है। उनमे राजाओ और उनकी प्रजाओका वयान है, जानवरो और अलौकिक जीवो, देवताओ और दानवोका। जानवरोकी कहानियोमे कछुए और खरगोशका जिक्र होता है, जहाँ जानवर अपनी चालाकीका वार-वार परिचय देता है। इस प्रकारकी चक्करदार कहानियाँ कछुए और खरगोशकी कहानियोंके अलावा 'यो'के सम्बन्धमें भी कही गई है जो धूर्त और पेटू है। एक दूसरा चक्कर जुडवे भाइयोकी कहानियोका है, तीसरा सयाने वालककी कहानियोका, चौथा मातृहीन वालककी कहानियोका और पाँचवाँ शिकारीकी कहानियोका। और इस प्रकारकी कहानियोंके चक्कर अफ्रीकाके साहित्यमें असीम है।

और वे उन कहानियोंसे विलकुल अलग हैं जो पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओंकी हैं। इन चक्करदार कहानियोमे एकका दूसरी कहानीसे सम्बन्ध वदलेका सूत कायम रखता हैं। एकमे हारा हुआ जानवर दूसरेमें जीते हुए शत्रुको हरानेकी कोशिश करता है। इसीलिए अधिकतर चक्करकी अगली कहानियाँ एक खास इवारतसे शुरू होती हैं, जैसे, "तुम्हे याद होगा कि किस तरह कछुआ हिरनसे दौडमे वाज़ी जीतकर घर लौटा था " या "जेलसे निकलनेके वाद मकडीने अव उस हाथीसे वदला लेनेका निश्चय किया जिसने उसे जेलमे डाला था।" इन जानवरोकी कहानियोमे भी हमेशा सिर्फ जानवर ही नही होते, उनमे अनेक वार आदमी भी अपने कारनामे दिखलाता है। एक वडी प्रचलित कहानीमे ज़िक्र है कि आदमीको जानवरोकी वोली इस शर्तपर सिखाई गई है कि वह फिर दूसरोको वह वोली न सिखाये, और शर्त तोडनेपर उसे वदलेमे अनेक मुसीवतें झेलनी पड़ी हैं। अफ्रीका और अमेरिकाके हब्शियोमें अनेक कहानियाँ इस तरहको भी कही जाती हैं जिनमें जानवरो द्वारा खतरेसे वचाये गये आदमियोकी उनके प्रति नमकहरामीका वयान हुआ है। जानवरोकी इन कहानियोंमें पौराणिक कहानियाँ और उनको स्पष्ट करनेवाली दिगर कहानियाँ, रोमानी कहानियाँ, शिक्षाप्रद और नीतिपरक कहानियाँ सभी भरी पडी हैं। कुछ कहानियोमे देवता भी पात्र वनकर आते हैं और आदमियोकी तरह या अलौकिक काम करते हैं। अनेक पौराणिक कहानियोमे आदमियोको अपने शिकजेमे जकडनेवाली मौतका ज़िक्र हुआ है। अशान्ती नामक हब्शी जातिकी कहानियोमे सवसे लोकप्रिय वह है जिसमे मकडी अनान्सी चतुराईसे अनेकानेक असम्भव कार्य करती है और आकाशके देवता नियामेको मजवूर करती है कि वह "न्यानकौनसेम" कहानियाँ (आकाश-देवताकी कहानियो) को वदलकर उनका नाम "अनानसेसेम" (मकडीकी कहानियाँ) नाम दे दे।

कहानियोंके पौराणिक विश्वास भिन्न-भिन्न जातियोमें भिन्न-भिन्न

मात्रामे दर्शाये गये हैं। इस प्रकारकी पवित्र कथाएँ ससारकी सृष्टि, देवताओके जन्म, दुनियामे उनके कारनामो, उनके आपसी और मनुष्यसे सम्बन्ध, जादू आदिसे ताल्लुक रखती है। वे धार्मिक क्रियाओ और कर्मकाण्डको स्पष्ट करती है। अनेक पौराणिक कहानियाँ तो कुछ परिवारोकी निजी हैं जिनका काम जातियोके सामूहिक सम्बन्धपर प्रकाश डालना है।

हब्शी लोककथाका एक प्रधान वर्ग ऐतिहासिक और राजनीतिक कहानियोका है। इनका नाम प्राचीन परम्पराको कायम रखना, बीते हुएको फिरसे जगाना, मनोरजन करना या उपदेश देना है। जातिके बडे-बूढे अक्सर ये कहानियाँ कहा करते हैं।

पर अफ्रीकी लोककथाका प्राण तो जानवर सम्बन्धी कहानियाँ है। इनका विस्तार अफ्रीकाकी पुरानी दुनियासे अमेरिकाकी नई दुनिया तक है। इनमेंसे कुछकी ओर यहाँ इशारा किया जा सकता है। एक लोकप्रिय कहानी रस्साकशीकी है। उसमे छोटा कमजोरपर धूर्त जानवर अपनेसे बहुत बडे जानवरसे रस्साकशीकी बाज़ी लगाता है। साथ ही वह ऐसी ही बाज़ी एक दूसरे, पहले जैसे ही मज़बूत, जानवरसे लगाता है। फिर दोनोको वह एक दूसरेसे अनजाने, एक दूसरेकी आँखोंसे ओझल, रस्साकशीमे भिडा देता है। दोनो समझते हैं कि उनका दूसरा प्रतियोगी स्वय बाज़ी लगानेवाला कमजोर जानवर है। इस प्रकार दोनोको भिडाकर छोटा जानवर उनसे बाज़ी जीत लेता है। यह कहानी हब्शियोमें इतनी लोकप्रिय है कि यह पुरानी दुनियाके सेनेगल, आइवरी कोस्ट, सुदान, तोबोलैण्ड, दाहोमी, नाइजीरिया, कालाबार, गबून, कामरून, कागो और दक्खिनी तथा पूरबी अफ्रीकामें और नई दुनियाके अमेरिका, बहामा, हाइती, तृप्तिदाद, डचगायना और ब्राज़ील सर्वत्रकी हब्शी जातियोमे कही जाती है।

इसी प्रकार तार-बालककी कहानी इतनी लोकप्रिय है कि वह नीग्रो जातियोमे सर्वत्र कही जाती है। ऐसी ही लोकप्रिय वह कहानी है जिसमे

छोटा और कमज़ोर पर चालाक जानवर भारी-भरकम विपक्षीको हराकर अपना चढनेका घोडा बना लेता है। एक और लोकप्रिय कहानी उस कछुएकी है जो हिरन, खरगोश आदि जानवरोंसे स्वय आहिस्ता चलनेवाला होकर भी दौडमे बाज़ी जीत जाता है। ऐसी कहानीमे कछुआ अपने अनेक कछुए-साथियोकी मदद लेता है और उनको दौडकी राहमे जगह-जगह तैनात कर देता है। आखिरी कछुआ जीतकी मज़िलके बिलकुल पास होता है और प्रतिद्वन्द्वीके पहुँचनेके पहले ही मज़िल छू लेता है, इस प्रकार कछुएकी जीत हो जाती है और उसका प्रतिद्वन्द्वी तेज दौडाक होकर भी असलियत न जानकर हार जाता है।

कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जो केवल प्रादेशिक है और कुछ ही इलाकोमे प्रचलित है। इनमेसे एक वह है जिसमे धूर्त जानवर हकीम, धाय या नौकर बनकर किसी बडे जानवरके बच्चोको सँभालनेका दम भरता है और एक-एक बच्चेको रोज़ खाकर बडे जानवरका सर्वनाश कर देता है। इसी तरहकी एक दूसरी कहानीमें चालाक जानवर एक दूसरेके दुश्मन जानवरोंसे उधार रुपये ऐंठ लेता है और चतुराईसे एकको दूसरेसे ऐसा भिडा देता है कि जब महाजन कर्ज़दारसे रुपये माँगने जाता है तब दोनो लडकर नष्ट हो जाते हैं और सच्चा कर्ज़दार कर्ज़ देनेसे बरी हो जाता है।

फिर ऐसा भी नही होता कि चतुर जानवर सदा जीत ही जाता हो। अनेक बार तो खुद उसे भी अपने मुँहकी खानी पडती है। जैसे तार-बालककी कहानीमे चतुर जानवर पकडकर अपने कियेका मजा चखाया जाता है। एक पुतलेपर तारकोल या गोंद-सी चीज़ लेप दी जाती है जिससे चतुर ज़ानवर अनजाने चिपककर पकड जाता है। इसी तरहकी एक कहानी गोल्डकोस्टके हब्शियोमे कही जाती है, जो इस प्रकार है। मकडा ससारकी सारी बुद्धिमानी एक ताबीज़मे भरकर उसे एक पेडमे चुरा देता है ताकि उनका फायदा वह अकेले ही उठा सके। पेडपर रखनेके लिए चढते समय

मकडा तावीज़को गलेमें डाल लेता है पर छातीपर उसके पडे रहनेकी वजहसे वह घिसटकर पेडपर चढ नही पाता। आखिर झल्लाकर वह तावीज-को ज़मीनपर पटक देता है और बुद्धिमानी केवल उसीकी होकर नही रह पाती, दुनिया भरमें फैल जाती है।

जानवरोकी इन कहानियोमे मनोविज्ञान और सामाजिक बोधका एक भान होता है। वडे और छोटेके सम्बन्धकी नैतिकतापर इन कहानियो-पर खासा असर है। मकडी, खरगोश, कछुआ, हिरन कैसे रह पाये, जब शेर, हाथी, भैंसे और दूसरे वडे जानवर उनके सर्वनाशका प्रयत्न सदा करते रहते हैं ?

अफ्रीकाके जगलोकी ज़िन्दगी कुछ आसान नही है। वहाँ घास खाने-वालोंसे लेकर आदमखोर तक पाये जाते हैं और सभ्यताके अभावमे उस अराजक दुनियामे जिसकी लाठी उसकी भैंसका राज है। फिर भी उचित और अनुचितका मेल और बुरेका विचार सब जगह सभी काल होता आया है, वहाँ भी होता है। इसलिए इन कहानियोमे कम-से-कम आचारत यह दिखानेकी कोशिश की जाती है कि कमज़ोर दिखनेवाला जीव असलमे कमजोर नही होता बल्कि अक्लसे वडेसे वडे और मज़बूतसे मज़बूत जानवर तकको हरा सकता है। तभी मज़बूतके बीच कमज़ोरकी वकत हो सकती है और उसकी ज़िन्दगी निभ सकती है वरना मज़बूतोकी हस्तीके सामने भला उसकी बिसात ही क्या है। पर जैसे इस कुदरतकी बनाई ज़मीनपर घास-का तिनका और बरगद दोनो रहते है, उसपर चीटी और हाथीको, खरगोश और शेरको एक साथ रहनेका हक होना चाहिए।

तारकोल या गोंदवाली शेखचिल्लीकी कहानियाँ हिन्दुस्तान, यूरोप और अफ्रीका सर्वत्र कही जाती हैं। उनका आरम्भ हिन्दुस्तानमें हुआ या अफ्रीकामें, यह कहना कठिन है, गो इसमें कोई शुवहा नही कि ये कहानियाँ यूरोपमे हिन्दुस्तानसे पहुँची। जानवरोकी कहानियाँ, भारत और यूनान दोनो जगह कही जाती थी। भारतकी पचतत्रकी कथाएँ और यूनानकी

ईसोपकी कहानियाँ जानवरो और चिडियोसे सम्बन्ध रखती है। इसमे तो सन्देह नही कि इन दोनो देशोने कहानियाँ एक दूसरेसे ली होगी, खासकर इसलिए भी कि उनकी जुबानें दूर-दराजके जमानेमे एक-सी ही थी। पर उनके और अफ्रीकावालोंके बीच मिलती-जुलती कहानियोका फेर-बदल कैसे हुआ, यह कह सकना आज कठिन है। अफ्रीकाकी कहानियोमे जानवरोकी प्रधानता है और वही बात अपने देशकी पञ्चतन्त्रकी कहानियोंमे है। कुछ अजब नही कि एकने दूसरेसे, या असलमे दोनोने दोनोंसे लिया हो। बात चाहे जो रही हो, जाहिर है कि इन कहानियोने अफ्रीकाके घने जगलोमे बसनेवाले कलाहीन जातियोका हज़ारो सालसे मनोरजन किया है और उनके लोक-साहित्यको सम्पन्न किया है।

यूनानी और रोमन पुराण कथाएँ : १९ :

जब सभ्यता न थी तब भी विश्वास थे। विश्वास तर्क सम्मत भी होते हैं, अन्धविश्वास भी। जब हम बिला वजह बगैर तर्क या बुद्धिका इस्तेमाल किये, विश्वास करते है तब उसे अन्धविश्वास कहते हैं। आदिम इनसान इस तरहके अन्धविश्वासोका मरकज था। वह अचरज करता था पर अचरजकी चीज़का सही अर्थ या कारण नही बता पाता था, गो उसका अर्थ या कारण बतानेकी कोशिश वह जरूर करता था। अक्सर उसका अटकल डरसे जुडा होता था। इससे घटनाओकी उसकी व्याख्या भी अधिकतर ख्याली होती थी, जिसका कोई बौद्धिक आधार न होता था।

पर आदिम इनसान सोचता था, गुनता था, रहस्यकी गाँठ खोलनेकी कोशिश करता था। नदी बहती है, झरना गिरता है—उसकी समझमे यह अकारण ही न था। वह सोचता—नदीके जलमें कुछ जरूर है जो काँपता हुआ बहता है, झरनेमे कुछ जरूर है जो अपने आप तरल होकर भी, अनायास सैकडो फुट ऊँचेसे गिरकर भी, नीचेकी चट्टानोको चूर-चूर कर देता है। बीज मिट्टीमे पडता है, ज़मीनकी छाती फाड उसका अँखुआ निकल पडता है, पौध लहराने लगती है और हरा-भरा पेड एक दिन फैले बरगदकी जटाएँ बन अनेकानेक बरगद बन जाता है। उसमे कुछ है जरूर जो गुठलीमे पौधा और पौधेसे विशाल तने और अनगिनत डालोवाला पेड बन जाता है। वह आदिम इनसान जलमें, जगलमे, हवामे सर्वत्र कुछ खोजता, उससे डरता, और काँपते हाथोंमे उसे पूजता, उसे प्रसन्न करनेके लिए उसकी वेदीपर अपने बेटे तकको बलि चढा देता था।

वहनेवाले जल, वढनेवाले दरख्त, अन्न उगलनेवाली ज़मीन, तड़पने-वाली विजली, गरजनेवाले बादल, सबके भीतर कुछ थे, जो ताकतवर थे, उनसे कही ताकतवर, पर जो उस कमजोरको घेरे-घेरे फिरते थे, उसके सुख-दु.खके कारण थे, और जिन्हे वह देवता कहने लगा। ये देवता प्रकृतिके डरावने और सुहावने रूप थे जिनको विना देखे भी, उनके असरसे, आदमीने पहचाना और अपना त्राता और सहारकर्ता माना ।

उस आदि मानवको लगा कि यह सारा चराचर जगत् उन्ही हस्तियोका सिरजा हुआ है, उन्हीके खेलसे वनता, वदलता और विगडता है। और चूँकि आदमी आदमीसे वढकर, अपनेसे वढकर, खल्कमे कुछ और नही पाता था, उसने अपने देवताओ या कुदरतकी छिपी हस्तियोको आदमीके ही रूप-रगका, पर ताकतमे उससे कही महान् माना, और उन देवताओमे इनसानकी इनसानियत, उसके राग-वैर, लोभ-क्रोध, जन्म-मरण, सव भर दिये । उसके देवता रहते तो आसमानमे थे पर विचरते इनसानी दुनियाके वीच जंगलो और पहाडोमे, नगरो और वस्तियोमे थे ।

विश्वासकी इस भूमिपर वैसे तो सभी मानव जातियाँ प्राय. समान थी, सवने इस प्रकार अपने वीच विचरनेवाले देवताओको सिरजा, पर नि.सन्देह हिन्दुओ, यूनानियो और रोमनोंके देव-परिवार अधिकतर एकसे थे, इनसानकी तरह ही एक दूसरेसे प्यार-दुश्मनी करनेवाले, मरने-मारने-वाले। यही वजह है कि उनके देवता मनुष्योकी तरह ही आचरण करते है, लडाइयाँ हारते और जीतते है, राज करते है। इस तरहके जन-विश्वासोमे विश्वासकी गुजायश ज्यादा अक्लकी कम थी, और देवताओकी कपोलकल्पित कहानियोका एक ससार ही खडा हो गया जिसे मामूली तौरपर हम पुराण कहते है ।

ग्रीको और रोमनोंके ऐसे पुराण करीव-करीव एक है। कारण कि ग्रीकोकी संस्कृतिके वाद ही अधिकतर रोमनोकी संस्कृतिका विकास हुआ और ग्रीक सस्कृतिके कमजोर हो जानेपर रोमनोने उसे निगलकर जज्वकर

लिया। इसीसे रोमन देवता बदले नामोवाले ग्रीक देवता ही है। ग्रीक देवताओकी कहानियाँ ही रोमन देवताओकी कहानियाँ वन गई है। फर्क वस इतना है कि जहाँ ग्रीकोकी अनेक जातियाँ, अनेक वस्तियाँ, अनेक नगरियाँ थी, रोमनोकी प्राय एक जाति थी, अधिकतर एक ही तग घाटीमें वसी। इमसे जहाँ ग्रीकोके देव-परिवारो और विश्वासो-पुराणोमे अनन्त विविधता थी, रोमनोंके विश्वास-पुराणोमे अनेकता वहुत कम वन सकी।

१

नीचे हम विशेपत ग्रीक या यूनानी देवताओकी घरेलू कहानियाँ कहेगे, उनके राग-द्वेप, लडाई और मौतकी कहानियाँ, मिटने और वसनेकी कहानियाँ, हारने और जीतनेकी कहानियाँ। ख्याल यह था कि ज़मीन और उसपर रहनेवालोको सिरजनेवाले वे देवता ही थे और उन्होने एक फैले धुन्धसे जमीनको ठोस वना उसे समुद्रके पानीसे घेरा। ज़मीन फैली हुई चिपटी थी, जिसके ऊपर आसमानका चँदोवा तना था, जिसके सिरे ज़मीनके सिरोकी पहाडी चोटीसे लगे हुए थे। और इन्ही आसमान और ज़मीनके वीच देवताओका निवास था, फिर जमीनके नीचे पातालमे भी। ग्रीस देशमे ओलिपस् पहाड है जिसकी कमरके गिर्द कुहरा छाया रहता है और जिसकी चोटी वादलोको छेदकर उनपर अपना साया डालती है। वर्फमे सफेद चोटीपर देवताओके महल है, जहाँसे वे इनसानके कारनामे देखते रहते है। यूनानी विश्वासोंके इतिहासमे एक ज़माना ऐसा भी आया जव देवताओका निवास ओलिपस्की चोटीसे उठकर आसमानसे परे दूर चला गया जहाँसे वे दुनियाके कारनामे ओलिपस्की चोटीके पासके एक झरोखेसे देखने लगे। वैसे ओलिपस्की चोटीके महलोमे ही उन ग्रीक देवी-देवताओका निवास था जिनका राजा ज्यूस् था। उसी ज्यूस्को रोमन जूपितर कहते थे। ज्यूस्के साथ ग्यारह और देवी-देवताओका

ओलिम्पपर निवास था। इनके नाम थे, हिरा, हर्मिस, अथेनी, अपोलो, आर्तोमिस्, अरेस्, अफ्रोदीती, हेफाइस्तस्, हेस्तिमा, पोसिदन और दिमितर।

ग्रीक देवताओ और देवियोकी पैदाइश और लडाईकी कहानी वडी दिलचस्प है। ऊरेनस् आसमानका देवता था, स्वयं आसमान, ग्रीको-का पहला देवता। उसने अपनी माँ जमीनको व्याहा, जिसका नाम गाइया था। इस व्याहसे जो देवता या दैत्य पैदा हुए वे तितान, हेकातोचीरी, और कीवलोप कहलाये। तितानोका नाम अपने पिताके नाम सरीखा ही ऊरेनिदाई पडा। वे सख्यामे छ थे और उन्होने अपनी छ वहनोंसे विवाह कर लिया। ऊरेनस्को डर लगा कि दैत्याकार लडके कही उसे मार कर उसकी वादशाहत न छीन लें। इससे उसने उन्हें पकड कर पातालमे कैद कर दिया। उसकी रानी गाइयाको अपने वेटोकी किस्मतपर वडा रोना आया, और उसने उनकी रक्षा करनेपर कमर कस ली। क्रोनस् उसका सवसे छोटा वेटा था। उसने एक हँसिया वनाकर क्रोनस्को दिया और वापके खिलाफ उसे ललकारा। क्रोनस्ने अपने पिता ऊनस्को घायल कर अपने भाई तितानाको पातालसे आज़ाद कर दिया। इन्ही तितानोने, अपने पिताके पतनके वाद अपनी वहनोको व्याहा और देवताओका अनगिनत परिवार पैदा किया। तितानोका देव-परिवार गिगान्तियोंके जोगसे और वढ चला। गिगान्ती ऊरेनस्के खूनकी बूँदोंसे पैदा हुए थे।

रोमनोका देव-परिवार भी इसी प्रकार अलौकिक देवताओंसे भरा था। उनके दैत्योको लारची कहते थे, जो उन मुर्दो तकको जमीनसे उखाड लेते थे जिनके पापोको क्षमा न मिली थी।

२

अव क्रोनस्की कहानी सुनिए। क्रोनस्ने, पिताकी गद्दी ले चुकनेपर, अपनी वहन रियासे शादी की। उससे उसे तीन वेटे और तीन वेटियाँ

हुई। ऐदीज, पोसिदन और ज्यूस् बेटे थे और हेस्तिया, दिमितर और हिरा बेटियाँ थी। एक दिन क्रोनस्को भविष्यवाणी हुई कि चूँकि उसने अपने पिताको गद्दीसे उतार दिया है, उसे भी उसके बेटे गद्दीसे उतार देंगे। फिर तो उसने डर कर अपने पाँच बच्चोको निगल लिया। और तब रियाने अपने सबसे सुन्दर छठे बालकको जना। उसकी खूबसूरतीसे माँका प्यार उसपर बरस पडा और उसने निश्चय किया कि जानकी बाज़ी लगाकर वह बेटेकी रक्षा करेगी। सो रियाने एक पत्थरको नवजात शिशुके रूपमें कपडोसे लपेट कर तथा बेटा कहकर अपने पतिको दिया और क्रोनस्ने उसे चबा डाला। कहानी मथुराके कसकी कथासे किस कदर मिलती है, कहना न होगा।

इस तरह अपने पतिको धोखा देकर रियाने बेटे ज्यूस्को क्रताके टापूमें भेज दिया, जहाँ उसे एक गुफामे छिपा रखा गया। वनकी देवियोने नये देवताको दूध पिलाया, मधुमक्खियोने शहद ला-ला कर उसे दिया और गरुडने स्वर्गके अमृतसे उसे सीचकर अमर कर दिया। रियाके अनुचरोने ज्यूस्के चारो ओर नाच-नाच कर तलवारो और ढालोंके शोरसे उसकी आवाज दवा रखी जिससे क्रोनस् उसे सुन न ले और उसकी ज़िन्दगीके लिए खतरा पैदा न कर दे।

जब ज्यूस् सयाना हुआ, वह माँके पास पहुँचा और उसके साथ साजिश कर उसने पिताको मजबूर किया कि निगले हुए अपने बच्चे वह उगल दे। उगले हुए भाइयोने ज्यूस्की फौरन् मदद की और ज्यूस्ने पिता क्रोनस्को स्वर्गकी गद्दीसे नीचे ढकेल दिया। स्वर्गकी गद्दी अब उसकी हुई। पर क्रोनस्के भाई तितान इसे सह न सके और ज्यूस्के देवताओ और दैत्यो (तितानो) में घमासान छिड गया।

तितानोने ज्यूस्से बगावत कर दी, और गो फतह ज्यूस्की हुई, लडाई एक अरसे तक होती रही। ग्रीक पुराणोका कहना है कि यह प्रलय-कर लडाई थेसालीके मैदानमें हुई। ओलिपस्की चोटीपर ज्यूस्का सिंहासन

जमा, जहाँ अपने देव-परिवारके साथ देवराजने डेरा डाला। सामने ओथ्रिम् पर्वतके शिखरपर तितानोंके साथ उनका नेता जापेतम् जम गया। ज्यूस्को उस लडाईके दरमियान बडे-बडे सदमे सहने पडे और अन्तमें उसने हेकातेन्चीरियो और कीक्लोपोंसे मदद लेनेकी ठानी। वे पातालमे अव भी कैद थे। उन्हे उसने आज़ाद कर दिया और वे अपने भयकर हथियारो—विजली, वज्र और भूकम्पके साथ ज्यूस्की मददको आ पहुँचे। आखिर दुश्मन सर हो गये और उन्हे चट्टानोंके नीचे लोहेकी दीवारके पीछे पातालकी देवी हिकेतकी हुकूमतमें उस दोजखमे दवा दिया गया जहाँ सदा सर्दी और अँधेरेका राज रहता है। तीफोन, जो गाइया और तारतारस्का वेटा था, आँधी और ववडरका दैत्य था। उसकी ताकतका कोई अन्त न था। ज्यूसके वज्रसे वह आहत हुआ।

ग्रीक देवताओ और दैत्योंकी इस लडाईकी कहानियाँ कवियोंके गायनके विषय वन गईं।

३

ग्रीक पौराणिक कथाओमे वडा मनोरजक स्थान प्रेमकी देवी अफ्रोदीतीका है। अफ्रोदीतीका ही नाम रोमन पुराणोमे वीनस पड गया है। ग्रीको और रोमनोने वीनसकी अनेक अमर मूर्तियाँ वनाई, जैसे ग्रीक कलाकारोने अफ्रोदीतीकी वनाई थी। अफ्रोदीतीका जन्म समुद्रके नीले फेनसे हुआ। वोतीचेली नामक प्रसिद्ध इटालीय चित्रकारके एक चित्रमे उसके जन्मका चित्रण हुआ है। उसमें वह सीपपर चढी समुद्रके फेनसे निकल रही है। इस प्रेमकी देवी अफ्रोदीतीके आकर्षणकी कोई सीमा नही और देवता और मनुष्य दोनो उसके प्यारके भूखे और मारे हैं। लेमनास नगरकी कथामे उसका पति हेफ्राइस्तस् है, थीविज नगरमे अरेस्। त्रायके राजपुत्र अकिसिस्को भी उसने अपने प्यारका भागी वनाया। पर उसकी मुहव्वतकी कहानियोमे सवसे प्यारी कहानी अदोनिस् नामके उस गड़ेरिये नौजवानकी

है जिसे उसने अपना प्यार दिया था पर जिसे जगली सुअरने मार डाला। पहली वार अफ्रोदीतीके हियेमे मुहव्वतका दर्द उमडा और वह दर्द किसी तरह दूर न किया जा सका। वेचैन हो-हो वह अपनी प्यारी लाशको चूमती रही, उसे छोडनेको राज़ी न हुई। तव देवताओने उसपर रहमकर ऐलान किया कि वह आधा साल ऊपरी दुनियामे अफ्रोदीतीके साथ विताया करेगी और वाक़ी आधा पातालमें पर्सिफोनके साथ। अदोनिम् तवसे गर्मियोका प्रतीक वन गया है, वमन्तका हरकारा। इटलीमे अप्रैलके महीनेमे जव फूल और पौधे वसन्तको निहाल करने लगते है तव ऊपरी दुनियामे अदोनिम् लौटता है और वीनसके साथ वन-काननमे विचरता है। रोमन नागरिक उस अवसरपर प्रेमकी देवीकी पूजामे विभोर हो उठते थे। अफ्रोदीती और वीनसके अनेक मन्दिर ग्रीम, इटली, मिस्र, सीरिया आदि-मे वने।

४

एरोस् और माइकीकी कहानी कहे वगैर ग्रीमकी पौराणिक कथाओको ममाप्त करना कठिन होगा। एरोस्, अफ्रोदीती और अरेम्का पुत्र था। ग्रीक देवताओमे वह सवसे सुन्दर और सवसे कमउम्र माना जाता है। वह पख और धनुप धारण करता है और अक्सर मूर्तियोमें उसका रूप वालक-सा गढा जाता है। साइकी, क्रेता टापूके राजाकी वेटी थी और उसे देवताओने ऐसी खूवसूरती दी थी कि अफ्रोदीतीको भी उससे लजाना पडता था। इमोसे अफ्रोदीती उससे डाह करने लगी थी। उसने एरोस्के जरिये ही साइकीका नाश करना चाहा। एरोस्को जव उमने उसके खिलाफ भेजा तव साइकीके रूपका जादू उलटे एरोम्पर ही चल गया और वह उमकी मुहव्वतमे दीवाना हो गया। इसी वीच साइकीके पिताने अपोलोसे सगुन विचरवाया था। सगुनने उसे राय दी कि राजा अपनी वेटी माइकी-को दुखमूचक कपडे पहनाकर एक खास चट्टानके ऊपर ले जाकर छोड दे। वेटी डैनोवाले दैत्यका इन्तज़ार करे और उसके आनेपर उसकी

बीबी हो जाय। पिताने सगुनका यह कठिन आदेश रो-गाकर पूरा किया। पर जैसे ही साइकी चट्टानके पास अकेली छोडी गई उसे एक बादलने ढक लिया और हवाके हलके झोंकेने उसे उठाकर एक खूबसूरत महलमें पहुँचा दिया। वहाँ हर रात दिन डूबते ही उसके पास एरोस् जा पहुँचता पर वह खुद उसे देख न पाती। न उसने उसका नाम ही जाना, न यही कि वह कौन था, और उसे सख्त ताकीद भी कर दी गई कि वह यह जाननेकी कोशिश तक न करे कि उससे मुहब्बत करनेवाला कौन है। लेकिन जब साइकीकी बहिनें उसके खूबसूरत महलको देखने आयी तब उन्होंने उसे मौका मिलते ही अपने प्रेमीको पहिचानकर कुतूहल शान्त करनेके लिए तैयार किया। इसलिए साइकी चिराग लेकर एरोम्के पास चुपकेसे दबे पाँव पहुँची और उसपर झुकी। जब उसने देखा कि सोया हुआ नौजवान अफ्रोदीतीका बेटा है तब वह इस कदर घबरा गई कि उसने चिरागके जलते तेलकी एक बूँद अपने प्रेमीके नगे कन्धेपर गिरा दी। देवता जग उठा, उसने उसके कुतूहल और असयमके लिए धिक्कारा और वह महल छोडकर चला गया। साइकी बेचैन हो उठी। उसके दर्दकी कोई दवा न थी और वह दर-दर फिरती समूची दुनियामे अपने प्रियको ढूँढती रही। उमी बीच वह अफ्रोदीतीके महलमें जा पहुँची। अफ्रोदीतीने उसे कैदकर लिया और उससे गुलामोका काम लेने लगी। पीछे तो उसने उसके धीरजको परखनेके लिए उसे बडी ही मुसीबतमे डाला। उसने उसे पाताल भेजकर पर्सीफोनके यहाँसे सिंगारकी पेटी मँगवाई। उसकी मुसीबतके समय एरोम् छिपे-छिपे बराबर उसके साथ रहा था, वरना वह अपनी मुसीबतोका शिकार हो गई होती। जब उसने पेटी लाकर खोला, उसमेसे ज़हरीली भाप निकलने लगी जिससे बेहोश होकर वह जमीनपर गिर पडी। एरोस् अब और छिपा न रह सका। उसने दौडकर उसे अपनी बाहोमे भर लिया और प्यारसे उसे जिला लिया। अफ्रोदीतीका क्रोध अब शान्त हो गया और ओलिंपस्के देवताओंके बीच दोनोका विवाह हो गया।

५

जानुस् देवता ग्रीकोका जाना न था। वह ग्रीक देवताओसे भिन्न केवल रोमनोका देवता था और रोम देवताओमे उसका स्थान बहुत ऊँचा और महत्त्वका था। दुनियाकी सारी चीज़ोका वही मूल कारण माना जाता था, सालो और ऋतुओका वही विधाता था, वही भाग्यका प्रेरक भी था और उसीकी दयासे मानव जाति और उसकी कलाओका विकास होता था।

लोककथाओंके अनुसार जानुस् लातियम्का राजा था। सुनहरे युगमे, जब देवता और आदमी कन्धेसे-कन्धा मिलाकर पृथ्वीपर विचरते थे तब, उसने राज किया था, मन्दिर खडे किये थे, इनसानको अनेक लाभकर कलाएँ सिखायी थी। जानुस्के नामपर ही सालके पहले महीने, जनवरी, का नाम पडा।

ग्रीक या यूनानी शान्तिके प्रेमी थे, युद्धके नही, गो उन्हें लडाइयाँ अनेक लडनी पडी थी और लडाई लडनेमें वे प्रवीण भी थे। रोमन, इसके विपरीत, युद्धप्रिय थे और साम्राज्यका विस्तार उनका परम ध्येय था। अपने ज़मानेका सबसे बड़ा दुनियाका साम्राज्य उन्होने ही खडा किया था। उन्हें आये दिन लडाइयाँ लडनी पडती थी। उनकी सस्कृतिमे सेनाकी व्यवस्था और सचालनका महत्त्व असाधारण था और जानुस् युद्धमे जीतका देवता था। वह अपनी रोमन जनताके साथ मैदानमें खडा होता था, ऐसा रोमनोका विश्वास था, और इसीलिए रोमके सकटोंके समय उसके मन्दिरके पट सदा खुले रहते थे। जानुस्के सम्बन्धमें भी अनेक पौराणिक कहानियाँ कही जाती है। चारणो और कवियोके लिए तो युद्ध सम्बन्धी उसकी कहानियाँ विशेष प्रेरणाकी चीज़ बन गयी थी।

× × ×

ग्रीकोकी पुरानी कहानियोमें देवताओका ज़िक्र बार-बार आता है।

कई दफे आदमियोंके पुरखे ही देवता वन जाते है और अनेक वार देवता मनुष्योंसे विवाह सम्वन्धकर उनके पुरखे वन जाते है। फिर तो उनका आपसी व्यवहार वरावर वालोका-सा होने लगता है। देवताओंके वेटे अनेक वार ग्रीक कथाओमें घटनाओके नायक रहे है, अनेक लड़ाइयाँ उन्होने ग्रीसके नगरोके नागरिकोके वीच हारी-जीती है। इतिहासप्रसिद्ध त्रायकी इस लड़ाईमें अनेक देवताओंके वेटोने भाग लिया था जिसकी कहानी अन्वे कवि होमरने अपने अमर काव्य "ईलियद" मे गाई है। आकिलोज, देवताका वेटा, उस काव्यकी नायिका हेलेनके प्रेमी और चोरका प्रधान शत्रु था। त्रायके युद्धके नायकोकी कहनी देवताओ और उनके वेटोंसे गुँथ गई है, ठीक उसी तरह जैसे हमारे महाभारतके उन पाण्डवोकी कहानी जो देवताओंके वेटे कहे जाते है, उसी तरह जैसे सिकन्दर अपनेको हरकुलीज़का वेटा मानता था, जैसे सीजर अपनेको जूलस् और वीनसका वशज और अन्तोनी दियोनिसम्का, जैसे चीनी सम्राट् अपनेको सूरजके पुत्र मानते थे, जैसे भारतके कुषाणोका राजा कनिष्क अपनेको 'देवपुत्र' लिखता था।

कला और साहित्य समाजके प्रसार हैं। दोनोमे समान स्वर बोलता है और वह स्वर समाजप्रेरित होता है। कल्पनाकी सूक्ष्मतम भावभूमि समाजकी स्थूलतम पृष्ठभूमिसे लगी रहती है। उदाहरण लीजिए, मध्यकालीन जगत्से पहलेका उदाहरण है पर स्थितिको साफ समझा देता है—

नाहं यियासोर्गुरुदर्शनार्थमर्हामि कर्तुं तव धर्मपीडाम्।
गच्छार्यपुत्रेहि च शीघ्रमेव विशेषको यावदयं न शुष्क.॥

अजन्ताकी दीवारोपर बुद्धके भाई नन्दका चित्रण हुआ है। नन्द सघके विहारमे लाया गया है। पर उसकी आकुल प्रिया प्रासादमे उसकी प्रतीक्षा कर रही है और वह भागकर उसे भेंट लेना चाहता है। बार-बार वह भागनेका प्रयत्न करता है, बार-बार उसे रोक लिया जाता है। नारीको तृष्णाका उद्‍गम माननेवाले भिक्षुओको भला उस मधुर भावबन्धनका भान क्या, जो सचित दाम्पत्य और नवविवाहित दम्पतिमे होता है? वर्ण और रेखामे बँधा वह भावस्रोत दोनोको लाघ जाता है। पर अश्वघोषकी वह पृष्ठभूमि, जिससे कलाका यह दर्शन हुआ, उससे कही सबल है।

पिछली शाम नन्द और सुन्दरीका विवाह हुआ है। दोनो एक-दूसरेसे मधुर भावबन्धसे जुडे हैं। रजनीके पर्यवसानके बाद विहान हुआ है और विलासकी उन्मद भावना सारे परिवारको नवीन व्यस्ततामे भर देती है। कोई स्नानके लिए जलको फूलोसे बासने लगता है, कोई अगराग और अवलेप तैयार कर रहा है, कोई चन्दन और अगुरुकी धूमवर्तिका बनानेमें लगा है, कोई पत्र-विशेषकके लेप फेंट रहा है, कोई फेनकका झाग उठा

रहा है। गरज कि सभी व्यस्त हैं—अनुचर, वामन, कुब्ज, चेट-चेटी सभी। उन सबका केन्द्र सद्य परिणीत परिवारके प्रभुका विलास है और प्रासादका वह प्रभु नन्द प्रकोष्ठके एकान्त अट्टमें, अलिन्दके सामने, अपनी प्रिया सुन्दरीके कपोलोंपर पत्र-लेखन कर रहा है। मदनकूपसे राग-रेखाएँ उठ-उठकर कपोलोंकी श्वेतभूमिको रक्ताभ कर देती है और उन रेखाओंपर टहनियाँ और टहनियोंपर नवपल्लव, कोमल किसलय धीरे-धीरे उभरते आ रहे है। ठीक तभी प्रासादकी देहलीमे तथागतका भिक्षापात्र बढ आता है, पर उसे कोई देख नही पाता या देखकर भी उधरसे लोग आँखें फेर लेते है। सम्यक् सम्बुद्ध रिक्तपात्र कपिलवस्तुके राजमार्गपर लौट पडते है। कपोलोंपर भक्ति रचता हुआ नन्द तथागतको रिक्तपात्र क्रुद्ध प्रासाद-से लौटते देखता है और उसे सुन्दरीको दिखाता हुआ पूछता है—अब क्या होगा, प्रिये? सभीता मृगी घबराकर पूछती है क्या होगा, प्रिय? पूछता है—मना लाऊँ? उसका मन मथ जाता है, विलास आकर्षक है, मदन उच्छृङ्खल, पर अपराध बडा है। कहती है—जाओ, प्रिय, मना लाओ। पर जल्दी लौटो, इतनी जल्दी कि कपोलोंके ये गीले रग अभी गीले ही रहें। और चला जाता है रोमाञ्चित नन्द, आकुल नेत्रपथके परे। और फिर लौट नही पाता। तथागत और उसके भिक्षु प्रणय कमलपर तुपार बन जाते है। नन्द नही लौटता। सुन्दरीके कपोलोंकी गीली रेखाएँ सूख जाती है। दिन, सप्ताह सरक चलते है, पर वह नही लौटता जिसने उन्हें लिखा था।

अनेक-अनेक गृहस्थोकी दुनिया बौद्ध प्रव्रज्याके उस आघातसे उजड गई होगी, अनेक-अनेक मधुर राग-बन्धन दम्पतिके परस्पर वियोगसे टूट गये होगे, जिस पृष्ठभूमिसे उठकर अजन्ताकी तूलिका और अश्वघोपकी लेखनीसे अनुरागके वे चित्र लिखे गये।

मध्यकालीन कलाकी भी इसी प्रकारकी भावगर्भित सामाजिक पीठिका है। दण्डी और बाणभट्टने अपने दशकुमारचरित और कादम्बरीमे जिस

समाजका वर्णन किया है वह उस कला-सचयकी भी पृष्ठभूमि है उडीसा और बुन्देलखण्ड जिसके धनी है। कामुक, घिनौना, दूसरेकी भावसत्ताको अपने लिजलिजे करोंसे छूनेवाला जन-परिवार उस समाजका परिचायक था जिसके सारे सामाजिक आचार, सारे आदर्श कुण्ठित हो चुके थे, जो इसे भूल चुका था कि रूपकी सार्थकता उसके देखनेवालेके नयनमें है।

अभिराम शक्तिम मन्दिरोका तत्कालीन परिवार भी अपने नग्न विलासकी सम्पदा लिये उसी घिनौनी पृष्ठभूमिसे उठा था। गुप्तकालने अपनी निष्ठा और लगनसे पहलेके रूढिनिविष्ट मानोको त्यागकर अवयव-आनत यथादर्शन मानवको उसके स्वाभाविक रूपमे देखा, कोरा और लिखा था। उसका परिष्कार उस युगकी देन थी। मध्यकालमें अधिकतर वह कलाभूमि कलाकारके दृष्टिपथसे ओझल हो गई। शिथिलसमाधिके दोषी कलावन्तने यथार्थसे विमुख हो अलौकिककी उपासना आरम्भ की और शिष्ट परिष्कारकी कमीको उसने अमर्यादित अलकरणसे पूरा किया। वह अलकरण धीरे-धीरे इतना व्यापक हो उठा कि शरीर उससे ढक गया—प्रधान गौण हो गया, गौण प्रधान।

भुवनेश्वर, कनारक, पुरी, खजुराहो आदिके मन्दिरोपर, उनके बहिरग-को उभारता अन्तरगको ढकता, अलकरणका जाल उनके कलेवरपर फैला। सैकडो-सैकडो अकार्य, कामुक आचरण अपने रूप परिवारकी शृखलासे उन्हे घेर चला, सदियो घेरे रहा और इस प्रकार उसने मानवके बोधको दूषित कर दिया, उसकी पूजाको अपावन। वह सारा उसी सामाजिक पीठिकाका परिणाम था जिसके परिणाम दण्डीका दशकुमारचरित और बाणभट्टकी कादम्बरी थे।

वह समाज किन आदर्शोमे अनुप्राणित था ? उस समाजमे आदर्श न थे, व्यवस्था न थी। गुप्तोकी स्मृति-सस्कृति हूणो, आभीरो-गुर्जरोकी चोटसे टूक-टूक हो चली थी। स्वय स्मृतियाँ अपने भीतर, अपनी व्यवस्थाके

नाशके वीज लिये उठी थी और अस्पृश्यो, संकरो, अन्त्यजोकी अनन्त परम्परा सिरजकर उन्होने मानव जातिके असख्य कुलोको पशु वना दिया था। और अव उनकी अपनी प्रतिष्ठित वर्ण-व्यवस्थाको वारी थी।

समाजका क्या रूप था? स्मृति-पद्धति टूट चुकी थी, उसके उन्नायक और सूत्रधार दुर्वल काँपते करोंसे जहाँ-तहाँ टूटे सूतोको जोडनेका प्रयत्न कर रहे थे। अव न ब्राह्मणराजा वाकाटक थे, न अश्वमेधयाजी भारशिव नाग, और न परम भागवत गुप्त। प्राचीन राजन्यो और क्षत्रियोकी कमज़ोर परम्परा टूक-टूक हो चुकी थी, आवूके अग्निकुलीन राजपूत हूणोकी शक्तिसे प्रवल हो चले थे। वे निश्चय प्रवल थे और इस धराके सौभाग्यके रूपमे उठकर उन्होने दीर्घकाल तक इसकी रक्षा भी की, पर वे वास्तवमे स्मृतियोकी सकीर्णताके जवाव थे। पूरवमे पालोका शक्तिमान उदय हुआ था, उन पालोका जो वौद्ध थे, शूद्र थे, वर्ण और ब्राह्मण विरोधी थे। सिन्धमे शूद्रोका परिवार राज कर रहा था। साहित्यका सरक्षक परमार राजा भोज श्लोकोंके चरण-चरण पर तो लाख-लाख सुवर्ण दान करता, पर देशके शत्रुसे लडने गये राजाओकी राजधानी लूटकर राष्ट्रीय अपराधका दोप करते भी नही हिचकता था। कश्मीरमे कामुकी मेधाविनी क्रूर रानी दिद्दा पराक्रमी सेनापतिके साथ स्थल-स्थलको सकेतस्थान वनाती जीवनके सारे आदर्शोको चुनौती दे रही थी और तुर्कशाही प्राय अकेले कावुलके परकोटोपर सन्तरियोका आचरण कर रहे थे।

राजनीतिसे जनता उदासीन थी, क्योकि जनता उस राजनीतिसे वचित रही थी, क्योकि साहित्यकारने उसे राजनीति-विहीन प्रणयवोझिल साहित्य दिया। यह वह दूरकी पृष्ठभूमि थी जिससे दूरका वह परिणाम निकला जिसमें जव १८ सवारोंके साथ वख्त्यार नालन्दा पहुँचा तव भिक्षुओने उनकी तलवारोंके सामने अपने सिर झुका दिये। वह उत्तरप्रदेश और विहारकी भूमि रौंदता हुआ चला गया, पर जनताके कानो जूँ न रेंगी और जनताका रक्षक लक्ष्मणसेन नदियाके राजप्रासादके पिछले द्वारसे

गीतगोविन्दके गायक जयदेवके साथ निकल भागा। फिर उस पृष्ठभूमिका ही वह दूरका परिणाम था कि जब तैमूरने मँभालकी असुविधाके कारण अपने एक लाख कैदी मार डाले, तब पासके गाँव अपने क्रिया-बन्धनोमे लगे थे और कि जब राणा सागा अपने सवारोके साथ समूचे मध्य एशियाके लडाकोंसे कनवाहेके मैदानमें जूझ रहा था तब पासका किसान चुपचाप हल जोत रहा था। पर यह तो सच ही दूरके परिणाम थे। पाल कलाकी, कलिंग कलाकी, चदेल कलाकी पृष्ठभूमि क्या थी? दशकुमारचरित और कादम्बरीकी परम्परामे जब लोग वारागनाओके अनन्य उपासक हो गये थे, किन्नरियो और विद्याधरियोके काल्पनिक जगत्को कैलासकी छायामे मानसरोवरकी सिकता भूमिपर उतार लाये थे, उस परम्परामे मध्यकालीन कलिंग और चन्देल कलाकी पृष्ठभूमि क्या थी?

शाक्तोकी प्राचीन तन्त्र पद्धति अनेक रूपोंसे आसाम और बगालकी जनतामे सक्रिय थी। मातृरूपिणी नारी जब कुमारीके आकर्षणसे मण्डित हुई और पूजाके पुष्प जब उसकी नग्नतापर चढने लगे तब साधकके औघड होते क्या देर लगती? और उस तान्त्रिक साधकको सिद्धान्त और शक्ति दी वज्रयानी सिद्ध और उपासक ने।

हीनयानका यान निस्सदेह हीन ही था, ओछा, महायानका उसी मात्रामें महान्, उदार। उसने निर्गुण अर्चनाको सगुणका आकर्षण दिया। सगुणकी शक्ति उसके रूपमें है और रूपकी परिधि रागसे पलती है। महायानसे निकाले मन्त्रयानने उस रूपकी सत्ताको रागकी अनेकानेक धाराओंमे सींचा। वज्रयानने रागको प्रधान माना, त्याज्यको ग्राह्य, सयमको सिद्धिका शत्रु, और उसने कलिंगमे महेन्द्र पर्वतपर उसे वज्रकी सज्ञा दे प्रण किया कि इन्द्रियोको उनके विषयोंसे हटाकर नहीं, भोगकी अनन्यतासे उन्हे कुण्ठित कर वह तृष्णा या तन्हाकी विजय करेगा। उसने ऐलान किया कि जो ब्राह्मणोका धर्म है वह हमारे लिए अधर्म होगा, जो अधर्म है वही हमारे लिए धर्म होगा, कि उनका अखाद्य हमारा खाद्य

होगा, उनका अपेय हमारा पेय और कि जो सिद्धि तप और साधन, योग और दर्शन, यज्ञ और अनुष्ठान नही प्राप्त कर सके थे वह रजक और चाडाल कन्याके सहयोगसे प्राप्त होगी। बौद्ध शूद्र पालोका प्रायः कामरूप, बगाल, उडीसा, बिहार, काशी, प्रयाग तककी भूमिपर अधिकार हो गया था और उस एक सत्ताने इस वज्रयानकी प्रतिज्ञाको सफल होनेमे भरपूर सहायता दी। तान्त्रिकोकी शक्ति जब एक दिन बौद्धोकी तारा प्रज्ञा-पारमिता बन गई, तब दोनोका सयोग उस दिशामे व्यापक शक्तिका परिचायक हुआ। मरमिया, सहजिया, औघड, कापालिक अनेकानेक स्मृति-विरोधी, ब्राह्मण-विरोधी, वर्ण-विरोधी, समाज-विरोधी पन्थ चल पडे, जिन्होने भोगको इष्ट माना, सयमको साधनाका शत्रु। वज्रयानी सिद्धोमे अधिकतर नीच वर्णोके थे, अनेक वर्णच्युत ब्राह्मण थे, और उन्होने स्मृतियो की व्याख्यापर प्रबल प्रहार किये। कलिङ्गसे बुन्देलखण्ड तक, कामरूपसे सह्याद्रि तक सारे मन्दिर उनके हाथमें आ गये। उन मन्दिरोके भीतर गृहस्थोंके भगवान् थे, बाहर अद्भुत सौन्दर्यकी नग्नता थी—यौन आसनोंके अनन्त रूपायन थे।

यह सामाजिक पृष्ठभूमि ही उस कलाकी जननी हुई, जो मध्यकालमे विशेषत मूर्त हुई।

ज़िन्दगीको मौतके पञ्जोंसे मुक्त कर उसे अमर वनानेके लिए आदमीने पहाड काटा है। किस तरह इन्सानकी खूवियोंकी कहानी सदियों वाद आनेवाली पीढियों तक पहुँचाई जाय इसके लिए आदमीने कितने ही उपाय सोचे और किये। उसने चट्टानोंपर अपने सन्देश खोदे, ताडोंके ऊँचे धातुओंसे चिकने पत्थरके खम्भे खडे किये, ताँवे और पीतलके पत्तरोंपर अक्षरोंके मोती विखेरे और उसके जीवन-मरणकी कहानी सदियोंके उतारपर सरकती चली आई, चली आ रही है, जो आज हमारी अमानत-विरासत वन गई है।

इन्ही उपायोंमे एक उपाय पहाड काटना भी रहा है। सारे प्राचीन सभ्य देशोंमे पहाड काटकर मन्दिर वनाये गये है और उनकी दीवारोंपर एक-से-एक अभिराम चित्र लिखे गये है। मिस्रमे आजसे हज़ारो साल पहले पहाडोकी दीवारें काटकर खोखली कर ली गई थीं और उनमे जिस्मको सावुत रखनेके लिए ममी वनाकर मुर्दे दफना दिये गये थे। उनकी या मिस्रके पहाडी मन्दिरोंकी दीवारोंपर मृतकों या देवताओंके इकवालकी कहानी चित्रकारीके अक्षरोंमे भी लिख दी गई थी।

चीनमें भी पहाड काटकर सैकडो मन्दिर प्राचीन कालसे वनाये गये थे। उस महान् देशके उत्तर-पश्चिमी कोनेमें कान्सू नामका वह सूवा है जहाँ कभी वह भयानक हूण जाति रही थी जिसने रोम साम्राज्यकी रीढ तोड दी थी। उसी जातिके कवीलाई रिसालोंने भारतके गुप्त साम्राज्यका नाशकर हमारे इतिहासके स्वर्ण-युगका अन्त कर दिया था। पर इसके वदले उन्ही दिनो हमारे महात्माओंने सैकडो मील लम्वे-चौडे वीचके रेगि-

स्तान लाँघकर कान्नूको मर कर लिया था और न्यूँत्ज़ार हूँणोंके उस देशमे शान्ति, प्रेम और दयाका प्रचार किया था। वहीके तुन-हुआगके पहाडोमे फिर तो गिरि-मन्दिर वनने लगे थे और देखते ही देखते ४६९ मन्दिर पत्थरकी छाती फाडकर खडे कर लिये गये थे। ४६९ मन्दिर, जितने दुनियाके किसी मुल्कमे पत्थर काटकर नही वने। और इन पहाडी मन्दिरोकी दीवारोपर भगवान् वुद्ध और उनके चेलोकी कहानियाँ हज़ारो चित्रोमे अजन्ताकी शैलीमें लिख डाली गई जो आज भी गुमराह संगदिल इन्सानको राह दिखाती है।

इन गुहा-चित्रोकी वुनियाद स्वय अजन्ता भारतकी पुरानी परम्पराका नमूना है। आजसे कोई सवा दो हज़ार साल पहलेसे ही हमारे देशमें पहाड काटकर मन्दिर वनानेकी परिपाटी चल पडी थी। और इस प्रकारके सैकडों मन्दिर माजा, काले, कन्हेरी, नासिक, वरावर आदिमे वना लिये गये। अजन्ताकी गुफाएँ पहाड काटकर वनाई जानेवाली देशकी सवसे प्राचीन गुफाओमेसे हैं, जैसे एलोरा और एलिफैंटाकी सवसे पिछले काल की। देशकी गुफाओ या गुफा-मन्दिरोमें सवसे विख्यात अजन्ताके है जिनकी दीवारो और छतोपर लिखे चित्र दुनियाके लिए नमूने वन गये है। चीनके तुन-हुआग और लकाके सिगिरियाकी पहाडी दीवारोपर उसीके नमूनेके चित्र नकल कर लिये गये थे। और जव अजन्ताके चित्रोंने विदेशोको इस प्रकार अपने प्रतापसे निहाल किया तव भला अपने देशके नगर-देहात उनके प्रभावसे कैसे निहाल न होते? वाघ और सित्तनवसलकी गुफाएँ उसी अजन्ताकी ही परम्परामें हैं जिनकी दीवारोपर जैसे प्रेम और दयाकी एक दुनिया ही सिज गई है।

और जैसे सगसाज़ोने उन गुफाओपर रौनक वरसाई है, चितेरे जैसे रग और रेखामें दर्द और दयाकी कहानी लिखते गये है, कलावन्त छेनीसे मूरतें उभारते-कोरते गये हैं, वैसे ही अजन्तापर कुदरतका नूर भी

जैसे वरस पडा है, प्रकृति भी जैसे वहाँ थिरक उठी है। वम्वईके सूवेमे वम्वई और हैदरावादके वीच, विन्ध्याचलके पूरव-पच्छिम दौडती पर्वत-मालोसे निचौधे पहाडोका एक सिलसिला उत्तरसे दक्खिन चला गया है जिसे सह्याद्रि कहते हैं। अजन्ताके गुहामन्दिर उसी पहाडी जज़ीरको सनाथ करते हैं।

अजन्ता गाँवसे थोडी ही दूरपर पहाडोंके पैरोमे साँप-सी लोटती वाघुर नदी कमान-सी मुड गई है। वही पर्वतका सिलसिला एकाएक अर्व-चन्द्राकार हो गया है, कोई दो-सौ पचास फुट ऊँचा। हरे वनोंके वीच मचपर मचकी तरह उठते पहाडोका यह सिलसिला हमारे पुरखोको भा गया और उन्होने उसे खोदकर भवनो-महलोसे भर दिया। सोचिए जरा ठोस पहाडकी चट्टानी छाती और कमज़ोर इन्सान पर उन्होने एका जो किया तो पर्वतका हिया दरकता चला गया और वहाँ एकसे एक वरामदे, हाल और मन्दिर वनते चले गये।

पहले पहाड काटकर उसे खोखला कर दिया गया, फिर उसमें सुन्दर भवन वना लिये गये, जहाँ खभोपर उभारी मूरतें विहँस उठी। भीतरकी समूची दीवारें और छतें रगड कर चिकनी कर ली गई और तव उनकी ज़मीन पर चित्रोकी एक दुनिया ही वसा दी गई, एक आलम उतार दिया गया। पहले पलस्तर लगाकर आचार्योंने उनपर लहराती रेखाओमें चित्रोकी काया सिरज दी फिर उनके चेले-कलावन्तोने उनमे रग भरकर प्राण फूँक दिये। फिर तो दीवारें उमँग उठी, पहाड पुलकित हो उठे।

और चित्र ऐसे कि न तो किसीने ऐसे चित्र देखे न उनकी कथा सुनी। जभी तो उनकी खोजकी कहानी भी अचरजसे भरी है। निज़ामकी रियासतमें आजसे कोई अस्सी साल पहले अंग्रेज़ सेनाकी एक टुकडी अजन्ताके पास ही ठहरी हुई थी। उसीका एक कप्तान कभी शिकारका पीछा करते घोडे-

पर उधर जा भटका था, और सहसा जो नज़र पडी तो सीढियोंके सिल-सिलेके ऊपर मूरतोसे भरे भवनोकी कतार देख वह हैरतमें आ गया था। फिर ऊपर चढ बरामदो और हालोकी दीवारोपर उसने जो नज़ारे देखे तो उसे लगा जैसे किसी जादूके नगरमें चला आया है। फिर धीरे-धीरे जब यूरोपके पारखियोने उसे देखा, पेरिसकी नुमायशमें जब उन चित्रोकी नकले प्रदर्शित हुई तब वहाँके लोगोने जाना कि सन्त पाल और सन्त पीतरके गिरजो, पोपकी राजधानी वातिकन और फ्लोरेन्स, पादुआ और वेनिसकी दीवारोंसे कही ऋद्ध अजन्ताकी गुफाओकी दीवारे है जिनपर रस बरसाने वाले चितेरे रफेल और माइकेल ऐंजेलो, लियोनार्दोदा विंची और बोतिचेली, तितियन और वेलास्केजसे कलाके कौशलमें तनिक भी घटकर नही।

कितना जीवन बरस पडा है इन दीवारोपर! जैसे फसाने-अजायब-का भडार खुल पडा हो। कहानीसे कहानी टकराती चली गई है। बन्दरो-की कहानी, हाथियोकी कहानी, हिरनोकी कहानी। कहानी क्रूरता और भयकी, दया और त्यागकी। जहाँ बेरहमी है वही दयाका भी समुद्र उमड पडा है, जहाँ पाप है वही क्षमाका सोता फूट पड़ा है। राजा और कगले, विलासी और भिक्षु, नर और नारी, मनुज और पशु सभी कला-कारोंके ब्रुशसे सिरजते चले गये है। हैवानकी हैवानीको इन्सानकी इन्सा-नियतसे कैसे जीता जा सकता है, कोई अजन्तामें जाकर देखे। बुद्धका जीवन हजार धाराओमें होकर बहता है। जन्मसे लेकर निर्माण तक उनके जीवनकी प्रधान घटनाएँ कुछ ऐसे लिख दी गई हैं कि आँखे अटक जाती हैं, हटनेका नाम नही लेती।

यह हाथमे कमल लिये बुद्ध खडे हैं जैसे छवि छलकी पडती है, उभरे नयनोकी जोत पसरती जा रही है। और यह यशोधरा है, वैसे ही कमलनाल धारण किये त्रिभगमे खडी। और यह दृश्य है महाभिनिष्क्रमणका—यशो-धरा और राहुल निद्रामे खोये, गौतम दृढनिश्चयपर धड़कते हियाको सँभा-

लते। और यह नन्द है, अपनी पत्नी सुन्दरीका भेजा, द्वारपर आये विना भिक्षाके लौटे भाई वुद्धको लौटाने जो आया था और जिसे भिक्षु वन जाना पडा था। वार-वार वह घर भागनेको होता है, वार-वार पकड-कर सघमे लौटा लिया जाता है, और प्रिया सुन्दरी डकरती रहती है। उधर फिर वह यशोवरा है, वालक राहुलके साथ। वुद्ध आये है पर वजाय पतिकी तरह आनेके भिखारीकी तरह आये हैं और भिक्षापात्र देहलीमें वढा देते है। यशोधरा क्या दे जव उसका अपना साईं भिखारी वनकर आया है? क्या न दे डाले? पर है ही क्या अव उसके पास उसकी मुकुटमणि सिद्धार्थके खो जानेके वाद? सोना-चाँदी, मणि-मानिक, हीरा-मोती तो उस त्यागी जगत्राताके लिए मिट्टीके मोल नही। पर हाँ, है कुछ उसके पास—उसका वचा एक मात्र लाल—उसका राहुल। और उसे ही वह अपने सरवसकी तरह वुद्धको दे डालती है। चित्रकारने जैसे दीवारपर उसका वह रूप अपनी रेखामें पकड लिया है—यशोधरा राहुलको जैसे आगेको उठाये हुए है और दोनोंके मस्तक, रूप-रगमे समान, चेष्टाओंमें समान, यकसाँ उठ आये है। कहानी वहाँ तो वही रह गई है पर वौद्ध ग्रथोमे पूरी कर दी गई है, जहाँ यशोधरा अपने रहे-सहे वन वच्चेको भी देकर नारीसुलभ व्यग्यसे कहती है—ले, वत्स, अपने पितासे तू अव अपना विरसा माँग। और वुद्ध उस चोटसे मलिन नही पड जाते, मुसकरा कर चेलेसे कहते है—मोग्गलान, राहुलको प्रव्रज्या दो! सही, वुद्धके पास सन्यासकी विरासतके सिवा और है ही क्या?

और उधर वह वन्दरोका चित्र है, कितना सजीव, कितना गतिमान्! उधर सरोवरमे जलविहार करता वह गजराज कमलदण्ड तोड-तोडकर हथिनियोको दे रहा है। वहाँ महलोमे वह प्यालोंके दौर चल रहे है, उधर वह रानी अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर रही है, उसका दम टूटा जा रहा है। खाने-खिलाने, वसने-वसाने, नाचने-गाने, कहने-सुनने, वन-नगर, ऊँच-नीच, कूर-कृपा, धनी-गरीवके जितने नजारे हो सकते हैं सव आदमी

अजन्ताकी गुफाओंकी इन दीवारोंपर देख सकता है। ज़ाहिर है कि चाहे इन भवनों या विहारोंमें रहनेवाले गृहत्यागी भिक्षु रहे हों, इन चित्रोंके बनानेवाले चित्रकार ज़रूर ऐसे थे जिन्होंने जिन्दगी खाँ देखा थी, प्रवह-मान, और उसे जैसाका-तैसा लिख दिया था।

बुद्धके इस जन्मकी घटनाएँ तो इन चित्रित कथाओंमे दर्ज है ही, उनके पिछले जन्मोंकी कथाओंका भी इनमे चित्रण हुआ है। पिछले जन्मकी ये कथाएँ "जातक" कहलाती है। उनकी संख्या ५५५ है और इनका संग्रह "जातक" नामसे ही प्रसिद्ध है जिनका बौद्धोंमें बड़ा मान है। इन्ही जातक कथाओंमेंसे अनेक अजन्ताके चित्रोंमे विस्तारके साथ लिख दी गई है। इन पिछले जन्मोंमे बुद्धने गज, कपि, मृग आदिके रूपमे विविध योनियोंमें जन्म लिया था और संसारके कल्याणके लिए दया और त्यागका आदर्श स्थापित करते वे बलिदान हो गये थे। उन स्थितियोंमे किस प्रकार पशुओं तकने मानवोचित व्यवहार किया था, किस प्रकार औचित्यका पालन किया था यह सब उन चित्रोंमे असाधारण खूबीसे दर्शाया गया है।

और उन्हींको दर्शाते समय चितेरोंने अपनी जानकारीकी गाँठ खोल दी है जिससे नगरों और गाँवों, महलों और झोपड़ियों, समुद्रों और पन-घटोंका संसार अजन्ताके उस पहाड़ी जंगलमे उतर पड़ा है। और वह चित्रकारी इस खूबीसे सम्पन्न हुई है कि देखते ही बनता है। जुलूसके जुलूस, हाथी, घोड़े, दूसरे जानवर जैसे सहसा जीवित होकर अपने-अपने समझाये हुए काम जादूगरके इशारेपर सम्हालने लग जाते है।

अजन्तामे प्रायः २९ गुफाएँ है जिन्हें २५० फुट सीधा खड़ा पहाड़ हाथसे काटकर बनाया गया है। इनके बनानेमे कितना समय, कितनी मेहनत, कितना धन व्यय हुआ होगा इसका अटकल उन गुफाओंसे लगाया जा सकता है जो पूरी नही बन सकी और जो अधबनी ही छोड़ दी गई थी।

इन गुफाओमेसे २४ तो विहार है, ५ चैत्य है। विहार एक प्रकारके मठ होते थे जिनमे बौद्ध भिक्षु रहा करते थे। बीचमे उपदेश या सघकी बैठकके लिए एक हाल होता था और उसके चारो ओर भिक्षुओंके रहने और ध्यान-चिंतनके लिए छोटे-छोटे कमरे होते थे। चैत्य एक प्रकारके मन्दिर थे जिनमे स्तूप या बुद्धकी मूर्ति पूजाके लिए स्थापित होती थी।

बाहरके बरामदोपर मेहराबनुमा खिडकियाँ थी जिनसे प्रकाश भीतर पहुँचता था। इन खिडकियोकी बनावट लकडीनुमा थी, बरामदे भी अधिकतर मेहराबदार ही हैं। बाहर और भीतर बुद्धकी अनेक मूर्तियाँ है जिनकी सुघराई असाधारण है पर जो चित्रोकी अनन्तता और विविधतासे दब जाती है। अधिकतर गुफा-मन्दिरोकी दीवारे छतो तक चित्रोंसे ढकी है।

इन गुफाओका निर्माण ईसासे करीब दो सौ साल पहले ही शुरू हो गया था और वे सातवी सदी तक बनकर तैयार भी हो चुकी थी। एक-दो गुफाओंमे करीब दो हजार साल पुराने चित्र भी सुरक्षित है। पर अधिकतर चित्र भारतीय इतिहासके सुनहरे युग गुप्तकाल, पाँचवी सदी और चालुक्य काल (सातवी सदी) के बीच बने। पहली गुफाओ और पहले चित्रोके बननेके समय अजन्ता और दकनकी गुफा और चित्रोके बननेके समय चालुक्योका प्रभुत्व इतना था कि इनके राजा पुलकेशिन् दूसरेने उत्तर भारतके प्रसिद्ध राजा हर्षवर्द्धनको हराकर नर्मदा तक अपनी सीमा स्थापित की थी। उसी राजाके दरबारमे फारसके बादशाह खुसरू दूसरेका राजदूत आया था। उस दूत-मण्डलका चित्र ईरानी वेशमे अजन्ताकी गुफामे आज भी देखा जा सकता है।

अजन्ता ससारकी चित्रशालाओमे अपना अद्वितीय स्थान रखता है। इतने प्राचीन कालमे इतने सजीव, इतने गतिमान्, इतने बहुसख्यक, कथा-प्राणचित्र कही नही बने। अजन्ताके चित्रोने देश-विदेश सर्वत्रकी चित्र-कलाको प्रभावित किया। उसका प्रभाव पूर्वके देशोकी कलापर तो पडा

ही, मध्य और पश्चिमी एशिया भी उसके कल्याणकर प्रभावसे वञ्चित न रह सका ।

× × ×

भारतीय कलामे जो सबसे अनोखी और महत्त्वकी बात है वह यह है कि यहाँके कलावन्तोने अपनी सामग्रीकी कोई सीमा न बाँधी । धातु, लकडी, हड्डी, पत्थर हर चीज़ कलाका आधार बनी और जब उनसे भी उनकी महान् कल्पनाका पोषण न हुआ तब उन्होने ठोस चट्टानपर अपनी निगाह डाली और पहाडोको काटकर खोखला कर दिया, उनमें अपने मन्दिर बनाये । ऊपर उन मन्दिरोका कुछ जिक्र किया जा चुका है, खासकर अजन्ताके मन्दिरोका । नीचे एलोराके मन्दिरोका ज़िक्र करेंगे ।

एलोरा यादवोकी प्राचीन देवगिरि और मुहम्मद तुगलकके दौलताबादके पास ही, अजन्तासे करीब पचहत्तर मीलके फासलेपर जिला औरगाबादमें है । अजन्ता और एलोरा दोनो पहले निज़ाम हैदराबादके राज्यमे पडते थे, अब वे बम्बईके इलाकेमें है । अजन्ता जिस तरह अपनी तसवीरोकी खूबसूरतीमें सानी नही रखता वैसे ही एलोरा अपनी मूरतोकी कारीगरीमे बेजोड है । ऐसा नही कि एलोराकी दीवारोपर चित्रकारी न रही हो, पर जैसे अजन्तामे मूरतोंके होते हुए भी प्रधानता जहाँ चित्रोकी है, वैसे ही चित्रोंके होते हुए भी एलोरामे प्रधानता उसकी मूरतो और बेल-बूटोकी है । वैसे तो अजन्ताकी गुफाओका सिलसिला अर्धचन्द्राकार बडी खूबसूरतीसे काटा गया है और वह दृश्य एक फिसलती नज़रमें एलोरामे नही मिलती, पर एलोराकी इमारतोका महत्त्व अकेले-अकेले असाधारण है । वहाँके मन्दिरकी सख्या तीससे ऊपर है और प्राय. बारादरीके नमूनेके वे दो-दो, तीन-तीनमे बने हुए है । अजन्ताकी गुफाएँ एक ही तलकी हैं और एक ही नज़रमे वहाँकी सारी खूबसूरती समेटी जा सकती है । पहाडकी ठोस दीवारको काटना अपने-आपमे कुछ आसान नही, फिर उसे काटकर उसमे दो-मज़िली, तीन-मज़िली इमारते ज़िन्दा चट्टानोमें खड़ी कर देना बडी

विरतेकी बात हैं, सो एलोराके राजाओ, उनके राजो और कलावन्तोने सर कर लिया।

अजन्ताके चैत्य और विहार बौद्धोंके है, पर एलोरामे बौद्ध, हिन्दू और जैन तीनो धर्मोंके विहार और मन्दिर बने है। उनकी सख्या भी तीससे ऊपर है। बौद्ध विहारोकी सख्या ग्यारह और चैत्यकी एक है। हिन्दू मन्दिर वहाँ सत्रह हैं और शेष जैन। भारतमे धर्मो और सम्प्रदायोंकी विविधता तो ज़रूर रही, पर कलामे उसके कलावन्तोने हिन्दू, बौद्ध आदिके भेद न किये। एक ही कलाका विकास युगोके अपने-अपने नये प्रतीकोके साथ होता गया और बौद्ध, हिन्दू, जैनोने समान रूपसे उनका व्यवहार किया। अधिकतर उनके देवता भी समान है। अन्तर बस इतना है कि वही देवता बौद्ध, हिन्दू या जैन प्रधान देवताके अनुचर बन जाते है। यही कारण है कि एलोराके मन्दिरोकी कला तीनो सम्प्रदायोंके मन्दिरोमे समान रूपसे बरती गई है। एक ही प्रकारके कटाव अपने भिन्न-भिन्न रूपोंसे प्रयुक्त हुए हैं। मोटे, चिकने, चमकते हुए खम्भोपर इतने सुन्दर, इतने अनन्त बेल-बूटे काटे गये है कि किसीने सच कहा है कि जब भारतीय कलावन्तोके पास अपने देवी-देवताओके सजा लेनेके बाद भी अफरात मोती बच रहे, तब उन्होने अपनी दीवारो और खम्भोपर उन्हे बिखेर दिये। सही, मोतियोकी असीम सम्पदा एलोराके मन्दिरोंके खम्भोपर बिखरी पडी है। ऐसे सुन्दर खम्भे भारतके दूसरे गुहा-मन्दिरोमें देखनेमे नही आते।

एलोराके मन्दिर राष्ट्रकूट राजाओंके शासन कालमें बने, छठीसे प्राय नवी सदियोंके बीच। वहाँके मन्दिरोमे प्रधान हिन्दू धर्मके है। दशावतार और कैलास नामके मन्दिर तो सचमुच ही सगतराशीके अचरजके नमूने हैं। दशावतार मन्दिरमे विष्णुके दसो अवतारोका अत्यन्त सुन्दर मूर्तन हुआ है। परन्तु एलोराके मन्दिरोकी चूडामणि तो कैलास है, शिवका मन्दिर। ससारमे सैकडो-सैकडो मन्दिर चट्टानोको काटकर बनाये गये है, पर कैलासके जोटका कही नही बना। तीस लाख हाथ पहाडकी कोखसे पत्थर

काटकर निकाल लिया गया है और दो-मजिली इमारत खडी कर दी गई है। आदमीके पौरुपका इतना वड़ा सवूत और कही देखनेको नही मिलता। समूचा ताजमहल मय अपने हातेके उसमे रख दिया जा सकता है। शिवके लिगपर मन्दिरोमे निरन्तर जलकी बूँदे टपकते रहनेके लिए सूराखदार घडा रक्खा जाता है। सो वैसी कोई मामूली कल्पना कैलासके कलाकारोको आकृष्ट न कर सकी, उसके इन्जीनियरोने दूर वहती एक नदीकी धारा उधरको मोड दी और इस प्रकार वे उसे शिवलिगपर सरका लाये कि जल आज हज़ार सालोसे उसपर निरन्तर टपकता रहा है। समूचे विशाल हाथी चट्टानोंसे काटकर खड़े कर दिये गये हैं। कालभैरव, काली और शिवके गणोकी भयानक और बीभत्स एक-से-एक मूर्तियाँ वनी है। सामने एक गगनचुम्वी आकाशदीप है। नन्दी और नन्दीके लिए मण्डप है और वाहर एक जालीदार दीवार है। कृष्ण प्रथम राष्ट्रकूटने इस मन्दिरका निर्माण शुरू किया था और पीढियो वाद प्राय सौ वर्पमे इसका वनना समाप्त हो सका।

दशावतारके पहले जो हिन्दू गुहा-मन्दिर है, उसमे शिवका ताण्डव और रावणके कैलास उठानेके दृश्य वडी सुन्दरतासे उभारे और कोरे गये है। शिवके नर्तनमे असाधारण वेग है और रावणके रूपमे तो जैसे श्रम और तेज फूट पडता है, कैलास पर्वतकी चूले ढीली हो गई है, पार्वती घवडाकर शिवके तनसे चिमटती जा रही हैं, पर शिव शान्त मुद्रामें व्यग्यात्मक भावसे पैरके अगूठे मात्रसे कैलासको दवाते है, और रावणका प्रयास व्यर्थ और अहकार चूर-चूर हो जाता है।

चार-पाँच गुहा-मन्दिर एलोरामें जैनोके भी हैं। उनमे भी उसी प्रकार कलाकी वहुरूपी सम्पदाका व्यवहार हुआ है, जैसे वौद्ध और हिन्दू मन्दिरोमें। उनके तीर्थंकरोका देव-परिवार भी उसी तन्मयतासे मूर्त हुआ है, उसी अनन्त मात्रामे वहाँकी दीवारो और खम्भोपर भी वेल-वूटे सजाये गये है। उन मन्दिरोमे दो प्रधान है—एक तो कैलासके नमूनेमे ही वना प्राय

उसीका छोटा रूप और दूसरा इन्द्रसभा। इन्द्रसभामे इन्द्र, इन्द्राणी और उनके गज ऐरावतका वैभव तो बस देखने योग्य है।

अजन्ता और एलोराके गुहा-मन्दिर ससारके इस प्रकारके मन्दिरोमे असाधारण है। जिस प्रकार वे मानव कला और कारीगरीके नमूने है उसी प्रकार उसके अनन्त श्रम, विश्वास, आस्था और निष्ठाके भी वे आदर्श हैं।

कलाका धर्मसे सम्बन्ध पुराना है। बहुत पुराना, जितना धर्म पुराना है। सारी महान् कलाओंका ताल्लुक मजहबसे है। अपने देशकी अजन्ता और एलौराकी कलाएँ, भरहुत और साँचीके स्तूप और रेलिङ्ग, उत्तर और दक्षिण भारतके विशाल मन्दिर, कम्बुज (कम्बोडिया) और जावाके, प्रम्बनम् और बोरोबुदूरके मन्दिर और मूरतें, बीच कालके यूरोपके गिरजाघरोंकी तस्वीरें और मूरते—सबका सम्बन्ध अपने-अपने काल और देशके धर्मसे रहा है।

इसलिए मूर्तिकलाका भी सम्बन्ध जियादातर मजहबसे ही रहा है, वैसे मूरते खेलने और दिलबहलावके लिए भी बनी है, कलाकी नज़ाकत और नफासत लेकर भी सिरजी गई हैं पर अधिकतर उन्हे पूजाके लिए ही बनाया गया है। एक जमाना था जब समूची पुरानी दुनियामे मूरतें पूजी जाती थी। मिस्रके थीबिज़ और मेम्फिस्में, दजला-फरातकी घाटीके बाबुल आदि नगरोंमे, अस्सुर और खल्दी राजाओंकी राजधानियोंमे, निनेवेमें, एलाम और अक्कादमें, शूसा और एकबतानामे, चीनके नगरोंमें, सर्वत्र मूरतोंका बोलबाला था, मूरतें पूजी जाती थी। देवताको निर्गुण और निराकार मानकर उसको पूजना इन्सानने कभी नहीं सीखा था और जो उस पुराने जमानेमे ऐसा करनेके इक्के-दुक्के प्रयत्न उसने किये भी तो वे बेकार हो गये। इसराइलके अमूर्त निराकार यहोवासम्बन्धी आवाज़ बियाबांमे गूँजकर चुप हो गई, मिस्रके इखनातूनके एकेश्वरवादका सिद्धान्त भी दुश्मनोंकी बाढमें दम घुट कर मर गया। चारों ओर इन्सानी देवताओंका दबदबा था जो इन्सानकी तरह राग और बैर करते थे, प्यार और

दुश्मनी और प्रलयकी धमकियोंसे आदमीको डराकर उसपर अपनी सत्ता कायम रखते थे ।

भारतमें भी मूरतोंको गढने या ढालनेका ताता कभी न टूटा । सिन्ध-की घाटीके मोहनजोदडो और पंजाबके हडप्पाकी गहरी सभ्यताके ज़मानेसे आजतक लगातार इस देशमे मूरते बनाई और पूजी जाती रही हैं । पिछले ५ हजारसालोंका इतिहास इसका गवाह है कि बीच-बीचमे यद्यपि हमलोकी चोटसे पत्थर और धातुकी मूरतें भी बिलबिला उठी है, उनका बनाना और पूजा जाना कभी रुका नही है ।

सिन्धकी घाटीकी मूरतोंकी कहानी बडी पुरानी है, ईसासे २–३ हज़ार साल पहलेकी, आजसे कोई ४–५ हज़ार साल पहलेकी । साँचेमें गीले चूने और मिट्टीको डालकर ढालनेकी कला तबके आदमीने सीख ली थी । खानोको खोदकर धातुओको निकालने और उन्हें साफ कर डालनेका हुनर भी जाना जा चुका था । खूबसूरत अङ्गोवाली शक्लोंकी उभरी हुई मुहरें जो सिन्धके उन पुराने नगरोंसे मिली है वे उस ज़मानेकी कलाकी कहानी कहती हैं । शेर और हाथी, गैंडे और हिरन, भेड और बकरी, आदमी और पेड-पौधोंकी तस्वीरें इन मुहरोंपर जो उभारकर बनी है वे आज भी अपनी खूबसूरती और बनावटमें एकता और बेजोड है । इनमे जो साँड वाली मुहर है उसमे शिराओंका उभार और ताकतका अटाव कुछ ऐसा है कि देखने वाले उसकी सजीवतासे दङ्ग रह जाते है । वैसी कोई चीज़ कलाके मैदानमें मिस्र और ईराककी समकालीन सभ्यतामें नही बनी । तभीकी नर्तकीकी एक काँसेकी मूरत कमरपर हाथ रखे नाचकी मुद्रामे जो खडी हैं वह कलाकी सादगीमें लासानी है । सिर और हाथ-पैरोंके बगैर पत्थरकी एक धड कुछ ऐसी दम-खम लिये हुए है कि लगता है नाचके वेगमे मूरत-का रोम-रोम थिरक रहा है ।

ईसासे करीब डेढ-दो हज़ार साल पहले सिन्धकी सभ्यताका अन्त हो

गया, और गो ऋग्वेदके आर्योकी एक नई सभ्यताका साया देशको मिला, कलाका विकास करीब-क़रीब रुक ही गया। अगले हज़ार साल तक देशमे मूरते शायद बनी ही नही। सिकन्दरके हमलेके पहलेकी कुछ हाथकी बनी मिट्टीकी मूरतें ज़रूर मिली है, पर उनके पहले और सिन्धकी सभ्यताके पीछे कलाके इतिहासमें एक बडी चौडी खाई है जिसमे मूरतोका बिलकुल अभाव है। सिकन्दरके हमलेके बाद, सम्राट् अशोकके पहले और पीछे, मिट्टीके ठीकरे साँचेमे ढाल पका कर बनाये जाने लगे थे जिनपर उभरी हुई शक्ले सुन्दर लेबाससे सजी होती थी और ज़ियादातर पूजनेके काममे आती थी। उस ज़मानेको मौर्यकाल कहते थे, क्योकि उन दिनो उत्तर भारतपर मौर्य राजाओका राज था, तभी चन्द्रगुप्त और अशोकने राज किया। अशोकने एक ही पत्थरके जो अनेक विशाल खम्भे बनवा कर उन-पर अपनी प्रजाके पढनेके लिए उपदेश खुदवाये। वे खम्भे ईरानी दाराओंके खम्भोकी नकलमे बने थे, पर बेशक थे वे उनसे भी खूबसूरत। उनके ऊपरी सिरेपर हाथी साँड आदि जानवरोकी मूरतें बनी थी। इसी प्रकारकी सारनाथकी एक लाटपर अशोकने चार, पीठ-से-पीठ लगे, सिंह बनवाये थे, जो आज भी वहाँके अजायबघरमें रखे हैं। उन्हींकी तस्वीर आज हमारी भारत सरकारकी मुहर है। उन शेरोकी शकल इतनी सजीव है, उनकी शिराओका उभार इतना सही है कि देखनेवाला दाँतो तले उँगली दबा लेता है। अशोकके इन खम्भोपर जो एक तरहकी चमकदार पालिश है वह ईरानी कलावन्तोकी देन मानी जाती है। वैसी कोई चीज़ न तो अशोकके ज़मानेसे पहले भारतमें बनी और न पीछे और वह पालिश सदाके लिए गायब हो गई। अशोकसे कुछ ही पहले पच्छिमी पजाब और सिन्धपर ईरानी दाराओकी हुकूमत सदियो रही थी। अशोककी इन चमकती लाटोंके पहलेकी बस दो-चार पत्थरकी बनी बेहद भोडी मूरतें मिली हैं। मौर्योका ज़माना ईसासे क़रीब १८५ साल पहले खत्म हो गया।

नया ज़माना शुग राजाओका था जो ब्राह्मण थे और बौद्ध मौर्योके

खिलाफ बगावतकर देशके राजा हुए थे। कलामे तब एक नई शैली और उससे भी बढकर, एक नये भरे-पुरे युगका आरम्भ हुआ। मिट्टी और पत्थरके ऊपर शक्लें बडी खूबसूरतीसे उभारी जाने लगी, और मिट्टीके ठीकरोपरकी खाली ज़मीन फूलोंसे भर दी जाने लगी। उस ज़मानेकी सबसे मारकेकी बात यह है कि मूरतोका एक बडे पैमानेपर बनना शुरु हुआ जो अगली सदियोंमें लगातार चलता रहा। शुगकालकी मूरतोमे आदमीकी शक्लें, मौर्यकालकी ही शक्लोकी तरह, सामनेमे कुछ चौडी और चिपटी होती थी पर उनके पहनावेमे फर्क आ गया था। पगडीमे सामने दो-दो गाँठें होने लगी थी और धोतीका तिकोना पैरोंके बीच ज़मीन चूमता होता था। कानोमें अक्सर गोल बालियाँ होती थीं और औरते सिरपर चिपटे गहने, कलाइयोपर कुहनी तक चूडियां और पैरोमे कडे पहनती थी। धोतियाँ अक्सर घुटनो तक ही पहनी जाती थी जिनमें पीछे लाग कसी होती थी। कधोंसे लोग चादर, जिसे उत्तरीय कहते थे, लटका लेते थे। साँची और भरहुतके स्तूप तो शायद अशोकके ज़मानेके है पर उसके चारो ओर दौडती रेलिगें इसी शुगकालकी हैं। गज़बकी मूरतोकी दौलत बिखर पडी है उन रेलिगोपर। अशोककी डाल झुकाती यक्षियाँ, सुशील खडे यक्ष, वेगवान घोडे, गुजलक भरते हाथी, कुण्डली भरते घडियाल और पख मारते सुपर्ण सचेत और सजीव पत्थरमे कलावन्तोने अचरजके हुनरसे उभारे हैं। सांचीकी रेलिगोके ऊपर कटाव-खिचावका काम इतना सुन्दर है जिसका बयान नही किया जा सकता। जुलूमके जुलूस पत्थरमे छेनीसे काटकर उभार दिये गये हैं और उनमे बनी शक्लें, लगता है, जैसे अब बोली कि तब बोली। खासकर रेलिगोके बीच-बीच चारो ओर जो तोरण-द्वार बने हैं उनके एकके ऊपर एक चढे तोरण कटावके काम और मूरतोकी ज़िन्दादिली और ताज़गीमें लासानी है। कठोर पत्थरमें काम ऐसा लगता है जैसे हाथी-दाँतमें हुआ है। और मज़ेकी बात यह है कि साँचीके पासकी ही प्राचीन-कालकी विदिशाके हाथीदाँतके कारीगरोने शायद इन रेलिगोको बनाया था।

वह विदिशा (आजका भिल्सा) पहले मगधके नये सम्राट् उन शुंगोंकी जमींदारीका केन्द्र थी जो मौर्योंसे मगध छीन तब उसे भोग रहे थे और उनका राजा पुष्यमित्र पाटलिपुत्रकी गद्दीपर था। यह सही है कि महर्षि पतंजलिके साथ-साथ पुष्यमित्र भी मौर्यों और बौद्धोंके ब्राह्मण-विद्रोह-का नेता था और उसने पटनेसे जलंधर तकके बौद्ध विहारों और मठोंको जलाकर एक-एक भिक्षुके सिरके बदले सोनेके सौ-सौ दीनार बाँटे थे, और इस प्रकार भारतके इतिहासने पहली बार मजहबी कट्टरता और असहिष्णुताका परिचय दिया था, पर राजकी बागडोरें सँभाल लेने और उसे शत्रुओंसे निरापद कर लेनेके बाद वह भी सदाके हिन्दुस्तानी कायदेके मुताबिक धर्मोंकी तरफ़दारीके ऊपर उठ गया था। बौद्ध-धर्मको सबसे अधिक क्रियाशीलताका जुग शुंगोंके राजमें ही आया जिससे जाहिर है कि साँची और भरहुतकी कलाके फलने-फूलनेमें शुंग राजाओंने न केवल अपनी सुरक्षा दी बल्कि सहायता भी की।

ईसासे पहले दूसरी सदीमें ही आमू दरियाकी घाटी बलख या बाख्त्री-से हिन्दुस्तानपर ग्रीकोंके हमले शुरू हो गये थे और देखते ही देखते उन्होंने काबुल सिंध और पंजाबपर कब्जा कर लिया था। उनके राजा देमेत्रियस्ने तो पाटलिपुत्र तक धावे मारे थे और नतीजा यह हुआ था कि पंजाब और सिंधमें ग्रीकोंके अनेक नगर और नगरोंमें उनके अनेक मुहल्ले बस गये थे, जहाँ उनकी अपनी कलाकी बेलें लगीं, अपने नाटक खेलनेके लिए रंगमंच बने, अपने ज्योतिषकी गणनाएँ होने लगीं। इनमें सबसे महत्त्वकी बात उनकी कला-सम्बन्धी थी। कोई तीन ही सौ साल पहले एथेंस और दूसरे ग्रीक नगरोंकी मूर्तिकला चोटीपर रही थी और उसकी एक खासी कलम बाख्त्रीमें एशियाई ग्रीकोंने लगाई थी। उन्होंने बाख्त्री और ग्रीससे स्वदेशी कलाकार बुला भेजे और उनसे पंजाबकी अपनी नई बस्तियोंमें कलाके क्षेत्रमें एक नया प्रयोग शुरू किया। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। ग्रीक भारतमें अधिकतर हिन्दू या बौद्ध धर्म अंगीकारकर देशके समाजमें

घुलते-मिले जा रहे थे, पर कला-सम्बन्धी उनकी रुचि कुदरतन यूनानी थी और उन्होने यूनानी शैलीका प्रयोग कलाके मैदानमे किया। कोरने और उभारनेके विषय तो भारतीय और बौद्ध ही बने रहे पर उनको कोरा या उभारा ग्रीक कलावन्तोने। यह ग्रीक शैली या टेकनीकका प्रयोग भारतीय धर्मकी जमीनपर था। प्रयोग सफल हुआ और एक नई शैली मूर्तिकलामे निकल आयी, जो गान्धार शैली कहलाई। गान्धार शैली इसलिए कि जिस इलाकेमे उस शैलीका विकास हुआ उसका नाम गन्धार था और उसकी राजधानी तक्षशिला थी। उसके दूसरे नाम हिन्दू-ग्रीक और ग्रीक-रोमन पडे। हजारो-हजारो मूरतें गाधार शैलीमे बनकर मथुरासे बामियान तक इस देशके विदेशी आस्थावानोकी पूजा पाने लगी। बुद्धके जीवनके अनेको दृश्य पत्थरकी पटियोपर उभार दिये गये। उन उभरे दृश्योकी शक्लोकी दमखम, रूपरेखा और वेशभूषा योरोपीय थी। उसी गान्धार कलाने पहले-पहल बुद्धकी मूरत कोरी जिसकी हजारो नकले देशके हर भागमें बनकर तैयार हो गयी।

गान्धार शैलीकी मूरतोकी सबसे बडी राशि ईसवी सन्‌की पहली दूसरी सदियोमे कुषाण राजाओकी हुकूमतमे बनी। कुषाण राजाओकी राजधानी तो थी पेशावर, पर पूरबमें उनके दो बडे केन्द्र, मथुरा और मिर्जापुर, थे। मथुरामे शक और कुषाण राजाओकी आदमकद मूरतें देवकुल गाँवसे मिली हैं जिससे जाहिर है कि वहाँ इन राजाओकी एक मूर्तिशाला कायम थी। इसीसे बादमें उस गाँवने अपना नाम भी पाया। इन्ही मूरतोमे एक कुषाण राजाओमे सबसे महान् कनिष्कको है, सिरकटी मूरत, अचकन, शलवार और घुटनोतक पहुँचनेवाले जूतोके लेबाससे लैस। कुषाणोके जमाने-की भारतकी मूर्तिकला, खासकर पत्थर और मिट्टीकी मूरते, रूप और सख्यामें बडे महत्त्वकी है। बुद्ध, बोधिसत्त्वो और बौद्ध धर्म तथा पुराणके अनेकानेक छोटे-बडे देवताओकी अनन्य मूर्तियाँ, मथुरा, सारनाथ और अमरावतीमे पत्थरमे कोरी और धातुमें ढाली गई। जैसे ईसाइयोमे प्रच-

लित है कि ईसाने कहा था कि ससारके सारे आदमियोका पाप मै अपने सिर लेता हूँ वैसे ही और उनसे भी पहले वोधिसत्त्वकी कल्पना करते समय कहा गया कि जब तक एक जीव भी विना निर्वाणके रह जायगा तव तक वोधिसत्त्व निर्वाण न लेंगे। इस प्रकारके विचारोका बौद्ध धर्मके जिस सम्प्रदायने प्रचार किया उसको महायान कहते है। वह बुद्ध या अर्हतोंकी दुनियासे भिन्न था जिसकी कोशिश वस अपने ही भवसागर पार करने तक सीमित थी। इसीसे उसे हीनयान या तुच्छ नाव कहने लगे थे। ससार-के सभी प्राणियोको चढाकर भवसागर पार करानेवाले बौद्ध सम्प्रदायका नाम इसीसे महायान पड़ा। बुद्धको निजी देवता माना गया और पहली वार उनकी मूरत बनाई गई। बुद्धने स्वय अपनी मूरत बनानेका निषेध कर दिया था जिससे उनकी उपस्थिति प्रकट करनेके लिए कलामें उनके छत्र या खडाऊँ या हाथ-पैरो या वोधि-वृक्षकी शकलें वना या उभार ली जाती थी। अव नये सम्प्रदायने जो भगवान् बुद्धको अपना निजी देवता मान लिया तो पूजाके लिए उनकी मूरतोका वनना भी स्वाभाविक था और हज़ारो मूर्तियाँ खडी, बैठी या उपदेश करती वनकर तैयार हो गयी।

पर महायानका असल देवता तो दयाका सागर और दुनियावी जीवो-का हमदर्द वोधिसत्त्व था। वोधिसत्त्वकी कल्पना बिलकुल नयी थी और वह उस पुरुषका नाम था जिसका, समय आनेपर, बुद्ध हो जाना लाज़मी था। वोधिसत्त्व बुद्धकी बुद्ध होनेसे पहलेकी स्थितिका नाम था। सो नये सम्प्रदायमें वोधिसत्त्वकी मूरतोकी वाढ-सी आ गयी और उनका केन्द्र भी अधिकतर मथुरा वनी। वोधिसत्त्व और बुद्धकी मूरतोमें ज़ियादातर लेवास का फर्क है। बुद्ध सन्यासी थे और वोधिसत्त्व घरवारी होते थे। इसीसे बुद्ध भिक्षुओ या सन्यासियोका लेवास त्रिचीवर पहनते थे और वोधिसत्त्व गृहस्थ और अधिकतर राजकुमारके वेशमे रहते थे, पगडी और गहने पहनते थे। बुद्ध सिर मुडाये होते थे, तीन कपडे—नीचे अन्तर्वासक (तहमत), ऊपर उत्तरासग, और सबसे ऊपर सघाटी—पहनते थे। यही लेवास कुषाण

कालके बुद्ध और बोधिसत्त्वकी मूरतोपर मिलता है। कुषाणोके युगमे भारतकी मूर्तिकलामे ये दो नयी बाते हुई—एक तो ग्रीक या यूरोपीय टेकनीकका भारतीय कलामे उपयोग और दूसरी बुद्ध और बोधिसत्त्वकी मूरतोका निर्माण।

पहले लिखा जा चुका है कि कुषाणकालकी कलाका मरकज़ मथुरा थी। वहाँ बौद्धो और जैनो दोनोके स्तूप बने जिन्हें रेलिंगोसे घेर दिया गया। इन रेलिंगोपर भी साँची और भरहुतके स्तूपोकी रेलिंगोकी ही तरह सैकडो-सैकडो छोटी-बडी खूबसूरत मूरतें उभार दी गई। इनमे सबसे खूबसूरत मूरतें यक्षियोकी है जो रेलिंगोके खम्भोपर अनेक शक्लोमे उभारी गई हैं। इनमे कोई वीन बजा रही है, कोई नाच रही है, कोई झरने तले नहा रही है, कोई नहाकर बालोसे जल निचोड रही है, जिसकी बूँदोको मोतियोंके धोखेसे निगलनेके लिए हस दौड पडते है, कोई तोता और पिजडा लिये हुए है, कोई चिराग, और कोई अशोकको ठोकर मारकर या बकुलपर शराबका कुल्ला फेंककर उनमे फूल लानेकी कोशिश कर रही है। गरज़ कि असलियत और कल्पनामें जिन्दगीकी जितनी मूरते हो सकती हैं उन सबका निर्वाह इन मूरतोमें हुआ है। अधिकतर ये नगी है और मर्दकी पीठपर खडी है। मर्द बौनेकी शक्लमें जमीनपर औंधा पडा दिखाया गया है, जिसकी आँखें निकली पडती है, जुबान लटकी जा रही है, फिर भी चेहरेपर एक अजीब खुशीकी रौनक बरस रही है। ज़ाहिर है कि कलावन्तोको यह दिखाना मजूर है कि मर्द किस कदर अपनी वासनाओंके केन्द्र औरत के मुकाबले बौना है और जो वह उसके भारसे कुचला जा रहा है वह अपनी हालतको नियामत ही मानता है और उससे फ़ख्र हासिल करता है।

कुषाणकालकी कलामें जैन मूरतोका आगमन भी एक नयी बात है। जैन तीर्थकरोकी मूरतें भी बुद्धकी मूरतोकी तरह होती है, फर्क बस इतना होता है कि जहाँ बुद्ध कपडे पहनते है वहाँ जैन नगे रहते हैं। जैसे मथुरा

उत्तर भारतमे कुषाण कलाका केन्द्र थी वैसे ही दकनमें कृष्णाकी घाटीमे अमरावती भी विशेष महत्त्वकी थी। वहाँ भी उन्ही दिनो पुराने स्तूपोंके चारो ओर रेलिंगे दौडाई गई और स्तूपके तनपर संगमरमरकी पट्टियाँ जड़ दी गयी। इन पट्टियोपर बड़ी खूबसूरत आदमी और जानवरोकी मूरते खीची और उभारी गई है। आदमियोके पतले ऊँचे शरीर तो बस देखने ही लायक हैं।

कुषाणकालकी पत्थरकी मूरतोंकी पहचान कई बातोंके जरिये की जाती है। एक तो शक्लका आकार बजाय चिपटेके कुछ अण्डाकार हो आता है, जो सर्वथा अण्डाकार नहीं। चेहरेमे गोलाई अधिक होती है, चिपटापन कम। बुद्धके पैरोंके तलवे सर्वथा मासल होते हुए भी लकडीकी शक्लके दीखते है। नारीका केश-विन्यास बदल जाता है। सामने ललाटके ऊपर वालोंकी सजावटमे एक तरहकी गोलावट होती है जिसमे बीचसे माँग पीछेकी ओर जाती है, और पीछे अधिकतर चोटियो या वेणियोमे बाल गूँथ लिये जाते हैं। गहनोकी सजावट पहलेके युगकी अपेक्षा कुछ कम हो जाती है। मर्दोंकी पगड़ीसे शुंगकालकी दोनो गाँठे गायब हो जाती है और उनकी जगह अकेले पत्तेकी शक्लकी सजावट ले लेती है। धोती प्राय आजकी तरह ही एक पैरपर चुन्नटदार दूसरेपर कसी हुई पहनी जाती हैं।

कुषाणकाल और गुप्तकालके बीच देशमे राजनीतिक क्रान्ति होती है जो गुप्तोंके युग तक क्रियाशील रहती है। पदमपवाँया और कन्तितके नाग राजा विदेशियोंसे विद्रोह करते हैं और कुषाणोंसे भारत-भूमि छीन लेनेकी कोशिश करते है। कुषाणोंके पूरवी इलाकोंके मरकज़ मथुरा तक उनके हमले होते हैं और कुषाण राजाओंको पच्छिमी पजाब और काबुलकी ओर सरक जाना पडता है। नाग लोग अपनी पीठपर शिवकी मूरत धारण करते हैं जिससे वे 'भारशिव' कहलाते हैं और जब-जब वे अभी तक विदेशी समझे जानेवाले कुषाणोकी भूमि छीनते हैं तब-तब अश्वमेध करते

हैं, और जब काशीमें ऐसे अश्वमेधोंके नहानकी संख्या दस हो जाती है तब काशीके उस घाटका महातम स्वर्गकी तरह बढ जाता है जिसे दशाश्व-मेध कहते हैं। ईसाकी तीसरी सदीके अन्तमें भारतके इतिहासमें गुप्त राजा प्रबल होते है और समुद्रगुप्त उत्तरसे दक्खिन तककी ज़मीन रौंद डालता है। तब उसका बेटा चन्द्रगुप्त शकोंको मालवा और गुजरातसे निकालकर उस राष्ट्रीय विद्रोहका अन्त करता है जिसका आरम्भ भारशिव नागोंने किया था। देशकी हर तरहसे तरक्की होती है और भारतीय इतिहासका सुनहरा युग हर मैदानमे चमक उठता है। अजन्ता और बाघकी गुफाओंमें दीवारें नयनाभिराम चित्रोंसे भर दी जाती है जिनकी नकल दूर-दूरके बाहरके देश करते हैं।

मूरतें एक नई दमखमके साथ कोरी और सिरजी जाती हैं। अब तक रूपकी सुन्दरता कल्पनाके आदर्शसे सँवारी जाती थी अब इसानकी हुबहू शख्सियत मूरतमे कोरने और ढालनेकी कोशिश होती है। चिपटा चेहरा गोलाकारसे अण्डाकार हो आता है, सही आदमी जैसा। और असलकी नकल की जाती है। रूप कल्पनासे नही वास्तविकके नवसृजनमे निखर उठता है। स्वय मूर्तिकलामे राष्ट्रीय क्रान्ति होती है और गान्धार शैलीके बुद्धकी सघाटी या ऊपरी पहनावेकी चुन्नटें धीरे-धीरे गायब हो जाती है, जिस्मानी लकीरें लेबाससे बाहर फूट निकलती है, लेबासकी धारियाँ जिस्ममें खो जाती हैं। बाल घुँघराले रखनेकी प्रथा चल पडती है और जिनके बाल घुँघराले नही होते वे बने हुए घूँघरदार केश सिरपर धारण करते हैं। कन्धोपर लटकनेवाले इस प्रकारके घूँघरदार बाल गुप्तकालकी मूरतोकी खास पहचान है। तबकी हज़ार-हज़ार मिट्टीकी मूरतें इन्ही असल या बनावटी घुँघराले बालोंसे सजी उत्तर भारतकी खुदाइयोमे मिली हैं, जिनसे हमारे अजायबघर भरे पडे हैं। पीछेसे चिपटी इन मिट्टीकी मूरतोको दीवारोंपर आजके चित्रोंकी तरह टाँग दिया करते थे। रूपकी खूबसूरतीके साथ गुप्तकालके कलावन्तोंने अपनी सुरुचिको भी खूब ही निखारा था।

गहनोका इस्तेमाल गुप्तयुगके पहले भी वहुत रहा था और पीछे तो उनसे जिस्म ढक ही जाने लगा, पर गुप्तकालके नागरिकोने आभूषणको रूपका सही अलकार वनाया, स्वय अलकारकी स्तुति न की। सुरुचिसे चुने हुए कमसे कम गहने पहने जाने लगे और इन्हीसे तवकी मूरते सजे गई।

मिट्टी और धातुकी ढली मूरतोके अलावा पत्थरकी मूरतोने तो कलाके मैदानमे जहान जीत लिया। सगतराशकी छेनीमे जैसे कला जादू वनकर वैठी और मूरतोके अचरजके नमूने कलावन्त सिरजते चले गये। मथुरा और सारनाथ तवकी कलाके केन्द्र थे जहाँ एकसे एक सुन्दर मूरतोका सृजन हुआ। ससारके डरे जीवोको निर्भय करती अभय मुद्रामे खडी मथुरा की प्रसिद्ध वुद्धकी मूर्ति ससारके पारखियोके लिए आज भी दर्शनीय अचरज है। ऐसे ही सारनाथकी वुद्धकी ध्यान मुद्रामे वैठी मूरत रुचि और दमखममे वेजोड है। गुप्तकालकी ऐसी सुन्दर मूर्तियोको गिन सकना कठिन है। हर युगमे मूर्तियाँ वनी और उनकी भरी सख्यामे थोडे-वहुत खूवसूरत नमूने मिल ही जाते है, पर अनन्त सख्यामे खूवसूरत मूरतोकी इतनी वहुतायत कभी नही देखी गयी जितनी गुप्तकालमे। धातुकी ढली मूरतोकी भी एक वडी अदद गया जिलेसे मिली थी जिनकी सुघराई असाधारण है। धातु ढालनेकी कलामे तो भारत तव इतना कुशल हो गया था कि देहलीके पास मेहरौलीकी कुतुवकी लाटकी छायामे खडी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यकी लोहेकी लाट एक हैरतकी चीज़ वन गई है। उसमे कुछ ऐसा लोहा लगा है कि पन्द्रह सदियोसे धूप और पानीमे खडी उस लाटमे कही जग न लगी।

भारतकी मूर्तिकलाका अगला युग मध्ययुग कहलाता है। इसका विस्तार ६०० ई० से १२०० ई० तक है। कलाके इतिहासकारोने इस युगके भी दो हिस्से कर लिये है—(१) पूर्व मध्यकाल और (२) उत्तर मध्यकाल। अफसोस कि उन युगोसे सुरुचि और संयमकी खूवसूरती उठ गई। इसमे शक नही कि उन युगोमे भी अनेक वार कलाकारोने जिस्मकी

ख़ूबमूरती पत्थर या धातुमे ढालकर रख दी पर गुप्तकालकी मूरतोकी सफाई अब देखनेको नही मिलती। गहनोकी भरमार हो आती है और देवताओंके शरीर उनसे ढक जाते है। अनेक बार शक्लोका तीखापन सगमरमर और धातुके अनुकरणमे सम्पन्न होता है, और लखनऊके सग्रहालयमे रखी सिंहनाद अवलोकितेश्वरकी तरहकी अचरजकी मूरतें जब तब कलाकारकी छेनीसे निकल पड़ती है, पर ऐसी मूरतोकी सख्या बस इनीगिनी ही है। कलाके क्षेत्रमें हिन्दू देवी-देवताओंकी बाढ-सी आ जाती है और अवतारोकी मूरतें बार-बार कोरी जाती है। वैष्णव और शैव सम्प्रदायकी मूरतोंसे मन्दिर भर जाते है।

९ वी सदीके बाद विशेप विस्तार मन्दिरोके बाहर-भीतर कटी मूरतोका होता है। वैसे तो बडे पुराने ज़मानेसे, अजन्ता, एलोरा, कार्ले, कन्हेरी, भाजा आदिकी गुफाओमे खूबमूरत मूरते कटती आ रही थी, और गुप्तकालमे तो उदयगिरिकी गुफामे पृथ्वीका उद्धार करते वराहकी मूरत चट्टानमे काटकर भाव और रूप दोनोकी सगतराशने चोटी छू ली, और ७वी सदीके मामल्लपुरम्के मन्दिरकी चट्टानी दीवारपर कवि भारविके काव्य "किरातार्जुनीय"के दृश्य काटकर कलावन्तोने कलाके क्षेत्रमे एक नयी दुनियाकी सृष्टि की। पर मध्यकालके पिछले खेवेकी मूरतें ज़ियादातर ईट-चूनेके मन्दिरोपर बनी है जो अपनी भगिमामे अनेक बार लासानी हो उठती है। भुवनेश्वर और कनारक, खजुराहो और दिलवाडाके मन्दिरोकी बाहरी काया अनेक अभिराम और सजीव मूरतोंसे सजी है जिनका कलाके इतिहासमे अपना स्थान है। सुर-सुन्दरियो और काल्पनिक व्यालोकी भगिमाओंसे मन्दिरोंके कलेवर सज उठते है और जिस्मानी दमखममें एक नया राज़ खुल पडता है। भुवनेश्वरके एक मन्दिरपर प्रेमपत्र लिखती नारीके शरीरका भग उतना ही गज़बका आकर्षक है जितना उसके चेहरेकी बनावटमे जगी सकुचाती नारीकी मानवीय सुन्दरता। और कनारककी भेदभरी असामाजिक मूरतोकी कहानी तो निराली है, उतनी ही निराली

जितनी उनकी जिस्मानी शख्सियत निराली है, उनकी भाव भगिमा और सजीवता निराली है।

दक्खिनके मन्दिरोपर मूरतोकी यह दुनिया और भी घनी सिरजी गई। पर बेशक उनका महत्त्व तनकी एकाकी सुघराई या भावोकी एकातिक गरिमामे नही, उनकी अनेकता और बहुलतामे है। पर वही बात नि सन्देह दक्खिनकी धातुकी मूरतोके सम्बन्धमे सही नही है। धातुकी मूरतें सचमुच वहाँ कुछ ऐसी ढाली गई जिनकी सहजता और अनुपात आजके कलाकारको हैरतमे डाल देते है। इन धातुकी मूरतोमे सबसे प्रसिद्ध और अचरजकी मूरत नटराजकी है जो ससारकी कलाके इतिहासमे अमर हो गई है। नटराज शिव बडे वेगसे कालपुरुपके ऊपर नाच रहे हैं, जिससे शून्य वातावरण जैसे घना होता गया है, जैसे ऊर्जा (एनर्जी) से द्रव्यकी घनता बढती जा रही है। प्रतीकके रूपमे यह मूरत नि सन्देह बेजोड है—सबको मारनेवाला काल जमीनपर औंधा पडा है और उसके ऊपर चढी जिन्दगी जगके शिव या कल्याणके रूपमे नाच उठी है।

भारतकी सिलसिलेवार मूर्तिकलाकी कहानी अब बारहवी सदीके बाद प्राय खत्म हो जाती है। उसके बाद भी मन्दिरोका निर्माण होता है, उन मन्दिरोमे मूरतें भी बनाकर पधराई जाती है, १२ वी-१४ वी सदीसे १८ वी सदी तक लगातार, पर उन मूरतोमें अब न तो मौर्यकालकी शालीनता है न कुषाणकालकी जिन्दगी, न गुप्तकालकी सुरुचि, न मध्यकालकी दमखम।

यूरोपीय असरसे २० वी सदीमें भारतकी चित्रकला प्रभावित हुई। मूर्तिकला भी उस असरसे वचित न रह सकी। नई शैलियोका प्रभुत्व जैसे चित्रकलापर छाया वैसे ही मूर्तिकलाकी जमीनमें भी पच्छिमकी अनेक कलमे लगी और आज भारतीय मूर्तिकलाकी गो अपनी परम्परा उतनी न रही, उसके नये प्रयोग बेशक दिलचस्प हैं।

विदेशोंमें भारतीय संस्कृतिका अध्ययन : १९ :

कुछ विश्वविद्यालयो और सरकारोंके निमन्त्रणसे इधर दस महीनोंसे विदेशोंमें घूमता रहा हूँ। इस सिलसिलेमें मुझे अनेक अमरीकी और यूरोपीय देशोका भ्रमण करना पड़ा है। उन्नीस सितम्बर सन् पचास और दस जून सन् इक्यावनके बीच मैंने अमरीकाके संयुक्त राष्ट्र और कैनेडा, यूरोपके इंग्लैंड, नार्वे, स्विडन, डेनमार्क, हालैंड, बेल्जियम, फ्रांस, स्विट्ज़रलैंड, इटली, यूगोस्लाविया और ग्रीस तथा अफ्रीकाके मिस्र आदि देशोका भ्रमण किया।

निमन्त्रणोका उद्देश्य मुझसे भारतीय संस्कृतिके ऊपर कुछ सुनना था और मेरा अपना उद्देश्य इतिहास और संस्कृति सम्बन्धी अपने विचारोका विकास करना था। मानववादी राष्ट्रेतर इतिहास और संस्कृतियोंके अन्तरावलम्बनपर इधर प्रायः दस वर्षोंसे लिखता रहा हूँ। इस दृष्टिकोणको सहानुभूतिपूर्वक समझनेवाले साथियोंकी बड़ी आवश्यकता थी और इन आमन्त्रणोंसे इस दिशामें मैंने लाभ भी काफ़ी उठाया।

इसके अतिरिक्त मेरा एक अभिप्राय विदेशोमे स्थापित भारतीय संस्कृतिपर अनुसंधान करनेवाली संस्थाओंको देखना-समझना भी था। अनेक विदेशोंमें भारतीय कला, इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति आदिकी खोज और छानबीन आज सौ-डेढ़-सौ वर्षोंसे हो रही है। पर उनमें परस्पर किसी प्रकारका आदान-प्रदान नहीं, न सार्थक सम्पर्क ही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अनेक देशोमे एक ही विषयपर एक ही दिशामें खोज होती रही है। किसीको यह पता नहीं कि कहाँ कौन किस विषय

पर खोज कर रहा है। अनेक बार लोगोने एक ही विषयपर दोहरा काम किया है।

इसमे सन्देह नही कि इस प्रकारके चिन्तनसे भी एक लाभ होता है, यानी पिछली चीजोकी जाँच हो जाती है और उनकी सचाईपर प्रकाश पडता है। परन्तु अधिकतर इससे समय और शक्तिका अपव्यय ही होता है। और इस प्रकारकी दोहरी खोज कुछ जानबूझकर स्वेच्छासे नही हुई बल्कि न जाननेके कारण हुई। कोई सस्था ससारमे इस दिशामे काम करनेवालोकी शोधोकी परस्पर जानकारी करानेवाली नही जिससे शोधकी दिशाएँ और क्षेत्र बाँट लिये जायँ। इससे इस क्षेत्रमे भी कुछ कार्य करना आवश्यक था, जिससे मेरा बाहर जाना हुआ।

भारतीय सस्कृतिके सम्बन्धमे काम करनेवाली सस्थाओका विदेशोमे एक जाल-सा बिछा हुआ है। और एक लम्बे अरसेसे ये संस्थाएँ बडे परिश्रमसे हमारी सस्कृतिका अध्ययन करती रही है। यह सही है कि इनका दृष्टिकोण सदा सराहनीय नही रहा, परन्तु अपने अथक अध्यवसाय और उससे बढकर अपनी खोज-पद्धतिसे तो निश्चय इन्होने हमारी संस्कृतिका असाधारण उपकार किया है और उसके अध्ययनके लिए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है। इस काममे अनेक देशो, बीसियो सस्थाओ, पचासो पुराविदोका योग रहा है।

मै इस समय केवल उन्हीकी चर्चा करूँगा जिनके सम्पर्कमे मुझे अपने इस प्रवासमें काम करनेका अवसर मिला। ये सस्थाएँ विशेषकर तीन प्रकारकी—विश्वविद्यालय, सग्रहालय, विद्वत्परिषद् हैं।

अनेक विश्वविद्यालयोमें भारतीय भाषाओ और सस्कृतिका अध्ययन-अध्यापन हो रहा है यद्यपि उसकी स्थिति इस काल उत्साहवर्धक नही है। अमरीका और यूरोपके विश्वविद्यालयोमे इस अध्ययनकी मात्रा और गुण दोनोमे काफी अवनति हुई है। हारवर्डका प्राचीन विश्वविद्यालय कभी भारतीय सस्कृतिके अध्ययनका केन्द्र था। वहाँ कभी प्रबल मेधावी

लेन्मानने संस्कृत साहित्यके अनेक रत्नोका प्रकाशन किया था। उस पण्डितकी चलाई प्राच्य सिरीज़ आज नगण्य हो गई है, यद्यपि अब भी वहाँ भारतीय इतिहास और संस्कृतिके विभाग कायम है।

येल विश्वविद्यालयमें भी प्रोफेसर एडजर्टन, जिन्होने डा० सुकथणकर को भारतमे महाभारतका पाठ शुद्ध करनेमे सहायता की थी, अच्छा काम कर रहे है। शिकागो, बकले आदिमें भी संस्कृतिके अध्ययनका खासा इन्तज़ाम है यद्यपि उसकी विशेष सराहना नही की जा सकती। इधर फिलाडेल्फियामे डा० नार्मन ब्राउनकी अध्यक्षतामे पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालयका दक्षिण-पूर्व एशियाका विभाग भरापुरा है। उसके पास द्रव्यकी प्रचुरता है। काश मेधा और लग्नका भी उसमे योग होता।

यूरोपमे अनेक देश अपने दिवगत पुराविदो द्वारा आरम्भ किये कार्यको यथासम्भव बढा रहे है, यद्यपि यह कार्य वस्तुत यथासम्भव ही है। आक्स-फोर्ड और केम्ब्रिजमे यद्यपि वयोवृद्ध क्रमश एफ० डब्ल्यू० और ई० जे० टामसोका दूरस्थ योग है परन्तु लगता है वहाँ अथवा एडिनबरामे अब मैक्समूलर, मैक्डोनल और कीथ के दिन नही लौटेंगे। केंब्रिजमे डा० बेली अब भी सुदृढ है यद्यपि लन्दनके प्राच्य अध्ययन विभागका कार्य शिथिल पड गया है, फिर भी इस दिशामें कार्ड्रिंग्टन और मार्टिमर ह्वील्टरका कार्य सराहनीय है। मुझे अपने कार्यमें इनसे, दोनो टामसो और ब्रिटिश म्यूज़ि-यमके डा० बार्नेटसे पर्याप्त सहायता मिली। विशेपकर इतिहास जगत्के उस अद्वितीय नक्षत्र डा० ट्वायन्बीसे।

नार्वेके ओस्लो विश्वविद्यालयमे इस दिशामे सराहनीय कार्य हुआ है। प्रो० मार्गेनस्टर्ने हिन्दी-संस्कृतके अध्यक्ष हैं, स्टेनकोनोके स्थानापन्न। पहली मुलाकातमे इन्होने मुझसे हिन्दीमे ही बात की। यह मुझे अच्छा लगा, क्योकि अधिकतर हिन्दी-संस्कृत पढानेवाले विदेशी विद्वान् इस संबधमे कावा काट जाते है। स्टेनकोनो द्वारा स्थापित इण्डियन इन्स्टिटयूटके मार्गे-नस्टर्ने अध्यक्ष है। उनको भारतसे विशेष शिकायत यह है कि हिन्दीकी

पुस्तके नही मिल पाती। यह शिकायत मुझसे अनेक विद्वानोने अनेक देशोमें की। अच्छा होता यदि हम इन सस्थाओको भेजी जानेवाली पाठ्य-पुस्तकोके सम्बन्धमे, विशेषकर विदेशी एक्सचेजके सम्वन्धमें, कुछ रियायत करे।

स्टाकहोल्मके पास स्विडनका विख्यात विश्वविद्यालय उपशाला है जहाँ भारतीय विद्याओंका अध्ययन होता है। इसके अध्यक्ष अव कोपेनहेगेन विश्वविद्यालयमे डा० टुक्सनका स्थान लेने जा रहे हैं। डा० टुक्सन अत्यन्त वृद्ध हैं। रोगशय्यापर ही वे मुझे मिले और गिरती अथवा गिरी हुई भारतीय सास्कृतिक शोधकी स्थितिपर दु ख प्रकट किया। कहा भी कि डेन्मार्कमे भारतके विषयमें वडी जिज्ञासा है और इस सववमे एक सस्था काम भी कर रही है, परन्तु खेद है कि भारत इस दिशामे विशेप सयत्न नही। मुझे इस संस्थाके अनेक कार्यकर्त्ताओंसे वादमे मिलनेका सुअवसर प्राप्त हुआ।

हालैण्डमे लाइडनका विश्वविद्यालय भारतीय विद्याओके अध्ययन-अध्यापनमे विशेष सतर्क है। वौद्ध धर्मके प्रसिद्ध विचारक कर्न यहीके थे, और उनके कर्न-इन्स्टीट्यूटमें शोधका अच्छा कार्य हो रहा है। भारतीय पुरातत्त्वके प्रकाण्ड पण्डित सुवुद्ध फोगलका सम्वन्ध दोनोंसे है। भारतीय राजदूत डा० मोहन सिंह मेहताने लाइडनके अनेक विद्वानोको अपने घरपर मुझसे मिलनेको निमन्त्रित किया और उनसे मालूम हुआ कि कर्न-इन्स्टीट्यूटका नये सिरेसे संगठन हुआ है।

फ्रान्समे भारतीय सस्कृतिके आज भी अनेक विद्वान् है। फूशे तो अत्यन्त वृद्ध हो चुके है, परन्तु अव भी उनकी जिज्ञासा प्रवल है। मुझे उनके घरपर ही मिलनेका अवसर मिला। मैडम फूशेको भारतीय वस्त्र-स्थितिका असाधारण ज्ञान है। सारवौन विश्वविद्यालयमें दिवगत सिलवा-लवीके स्थानापन्न डा० रनू है, जिनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। डा० जूल

व्लाक वृद्ध होते हुए भी अभी दृढ है। इन लोगोंके साथ भारतीय शोधके मम्वन्धमे अनुकूल चर्चा हुई।

जिनीवा और व्यर्न आदिमें भी भारतीय ज्ञानका अनुशीलन किसी-न-किमी रूपमे जारी है। पर इम दिशामे विशेष प्रयाम रोम विश्वविद्यालयके सस्कृत विभाग और भारतीय इन्स्टीट्यूटमे हुआ है। दोनोके अध्यक्ष डा० तूची हैं। इन्होने अपने कार्यकर्त्ताओके साथ मेरा स्वागत किया और इस्तम्बुलमे होनेवाले ओरिएण्टल काग्रेसमे प्राच्य अनुसन्धान सम्बन्धी मेरे प्रस्तावका समर्थन करनेका वचन दिया।

युगोस्लाविया और ग्रीसमे भारतीय सस्कृति सम्बन्धी कोई परिषद् नही। मैने जब उनके विश्वविद्यालयोमे अपने व्याख्यानमे बताया कि तीसरी सदी ईसा पूर्वके भारतीय सम्राट् अशोकने उनके देशमे पशु-मानव चिकित्सा-के केन्द्र बनवाये, तब मेरे श्रोताओको बडा कुतूहल हुआ।

यूगोस्लावियामे भारतके प्रति अत्यन्त सहानुभूति है। किसी देशमे भारतके विषयमे जाननेकी इतनी उत्कण्ठा मैंने नही देखी जितनी वहाँ। उम देशके पाँचो विश्वविद्यालयोंमें बोलनेका मुझे सौभाग्य हुआ और मैंने वहाँके अध्यापकोको भारतके प्रति अत्यन्त जागरूक पाया। मैंने युगोस्लावियाके मन्त्रियोंसे विश्वविद्यालयोमे सस्कृत हिन्दी पढानेकी व्यवस्थापर बात-चीतकी और उन्होने शीघ्र-से-शीघ्र इस दिशामे प्रयत्न करनेका वचन दिया।

सयुक्त राज्य अमेरिकामें प्राच्य विद्या सम्बन्धी शोधमें न्यूयार्कके प्रसिद्ध एशिया इन्स्टिट्यूटने प्रशसनीय कार्य किया है। विएनाके प्रसिद्ध पण्डित डा० गाइगर वही हैं और अवस्ता तथा वेदोपर आज भी सतर्कतासे कार्य करते जा रहे है। मुझे इस सस्थामे अनेकबार व्याख्यान देनेका अवसर मिला। एक ऐसी ही सस्था सैन्फ्रान्सिस्कोमें भी स्थापित होने जा रही है।

विद्वत्परिषदोके अतिरिक्त विश्वविद्यालयो और अजायबघरोमें भी

भारतीय मूर्तिचित्रण कलाओंका अध्ययन जारी है। न्यूयार्कके मेट्रोपोलिटन म्यूज़ियममे अमरावती आदिकी कुछ मूर्तियाँ और राजपूत, मुगल कलमके कुछ चित्र सुरक्षित है। अभाग्यवश इनका केटलग नही बना है। न्यूयार्क विश्वविद्यालयके आर्ट इस्टिट्यूटमें भी भारतीय मूर्त्ति-कलाका शिक्षण होता है। परन्तु इस दिशामे प्रशसनीय कार्य बोस्टन म्यूज़ियममे हुआ है जिसको उस परम मेधावी भारतीय कुमारस्वामीकी सेवाएँ प्राप्त थी।

यूरोपमे भी इगलैडके ब्रिटिश म्यूजियम और पेरिसके म्यूजियमोमे भारतीय कलाओंके सग्रह है। इन सग्रहालयोमे आज भी विशेष लगनके साथ भारतीय पुरातत्त्व और कलाका अध्ययन जारी है, यद्यपि निस्सन्देह पुरानी जिज्ञासा अब कुछ कमज़ोर पड़ गई है।

इस सदीके दूसरे चरणमे भारतीय सस्कृति तथा शोधके क्षेत्रमे विशेष कार्य नही हुआ है। वास्तवमे इस बीच इस दिशामे कार्य कम हुआ है और भारतकी ही भाँति विदेशोमें भी विद्वत्ताका ह्रास हुआ है। सस्कृतिकी चर्चा तो निश्चय थोडी-बहुत होती रही है परन्तु उसका विशुद्ध अनुशीलन, व्याख्या और विश्लेषण बहुत कम हुआ है।

विश्वविद्यालयोमें भी भारतीय दर्शनोकी जो पाठ्यक्रमसे पृथक् चर्चा होती है वह सर्वथा अदार्शनिक अर्थात् अतर्क्य होती है। पुरानी विवेकहीन पद्धतिसे काम हो रहा है और जग लगी उखडी लफ्फाज़ी दर्शनका स्थान ले रही है। संस्कृतिकी चर्चा, विश्लेषणात्मक सस्कृतिकी चर्चा, कही नही है।

भारतीय सस्कृति कितनी उदार, कितनी व्यापक, कितनी प्रगतिशील रही है, इसकी दृष्टि लोगोको बहुत कम हो पाई है। विविध जन-धाराओंका योग इतना किसी देशकी सस्कृतिको नही मिला जितना भारतको मिला है और इसी कारण भारत अपनी सार्वदेशिक सस्कृतिके सस्कारसे शान्तिके पथपर चल रहा है। इस ओर विचारकोका ध्यान कम गया है। किस प्रकार कोरी, भ्रान्त और रिक्त राष्ट्रवादिताका अपने सास्कृतिक आचरणसे

नदियो पार भारतने प्रतिवाद किया है यह आवश्यक सत्य जितना लोगोके ध्यानमे आना चाहिए उतना नही आया है ।

भारतीय सस्कृतिपर विदेशी पीठोके कार्यको समन्वित करनेके अतिरिक्त इस भ्रमणसे मेरा एक उद्देश्य और था। वह था आधारभूत सास्कृतिक एकताके विश्लेषण और अध्ययनके लिए भारतमे एक खोज-पीठ स्थापित करना । अधिकतर देशोने, जिन्होने मध्यपूर्वकी सस्कृतिका अध्ययन किया है, भारतको उस अध्ययनके दायरेसे बाहर रखा है । मुझे उन सस्थाओके सामने यह स्थापित करते कठिनाई न हुई कि समकालीन भारतको उस दायरेसे बाहर रखना उन देशोके इतिहासपर ही एकाशत परदा डालना है । इस स्थितिको समझकर शिकागो ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट-ने भारतको भी अपने अन्वेषण क्षेत्रमे स्थान देना स्वीकार किया और हर्षकी बात है कि स्वदेश लौटनेपर उनके भेजे बहुमूल्य प्रकाशन मुझे उपलब्ध हुए ।

पूर्वी देशोमें इस चर्चामे अधिक लाभ हुआ । लेक-सक्सेसमें ही अरब-लीगके मन्त्री श्री अज्ज़ाम पाशासे मेरा साक्षात् हुआ था और उन्होने एशिया इन्स्टिट्यूटके एशियामे होनेकी सार्थकतापर ज़ोर दिया । अपनी लीगकी ओरसे उन्होने मुझे सातो अरब देशोमे भ्रमण करनेको आमन्त्रित किया । बढती गर्मीके कारण मै अन्य अरब देशोमे तो तब न जा सका परन्तु मिस्रमें कुछ दिन ज़रूर बिताये । मिस्रने भारत-मिस्रके सास्कृतिक सम्बन्धको दृढ करनेमे बडी दिलचस्पी दिखाई । सस्कृतियोका अन्तरावलम्बन उस अरब देशको बहुत रुचा ।

और यह उचित ही था । ससारके इतिहासमे स्वय अरबोका सास्कृतिक दान कुछ कम नही । कुछ कठमुल्ले यूरोपीय इतिहासकारोका मत है कि पोतिएकी लडाईमें जो अरब हार गये तो यूरोपका सर्वनाश होते-होते बच गया । पर वे इस बातको भूलते है कि साथ ही यूरोप उनके स्पर्शसे साक्षर भी हो गया क्योकि जहाँ प्रकाशके प्रति पोपने पीठ कर ली थी वहाँ

ग्रीस और रोमके ज्ञानपर गर्व करनेवाले यूरोपियनोको ग्रीस और रोमका ज्ञान भी अरबोने ही दिया। सुकरात और अफलातूनका ज्ञान, वर्वर कहलाने वाले उन्ही अरबोने यूरोपके लिए बचा रखा और कालान्तरमे उसका प्रचार हिन्दुओंके गणित, मगोलोंके ज्योतिप और चीनियोंके कागज़के साथ अपने स्पेनके विद्यापीठ अलहमरासे किया। ज़बर-अल-तारीक (जिसका नाम जिब्राल्टरमे आज भी सुरक्षित है) की स्पेनविजय कुछ यूरोपियनोंके लिए अभाग्यका सूचक है परन्तु है वह उस प्रकाशकी क्षीण रेखा जिसमे अफलातून और अरस्तू आलोकित हुए।

इसी मानव सास्कृतिक तथ्यकी खोज और प्रचार इतिहास पीठोका इष्ट होना चाहिए। परन्तु अभाग्य वश कुछको छोड अधिकतर अमेरिका और यूरोपकी खोज सस्थाएँ इस दिशामे मौन है। आइन्स्टाइन, आल्डस हक्सले, टवायन्वी आदि चिन्तक भी इस दिशामे जाग्रत है और भारतीय समन्वयको बडी आशाकी दृष्टिसे देख रहे है।